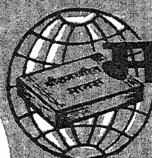
मानस और विज्ञान

डॉ॰ रामलषन सचान



मानस संगम

कानपुर

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् ।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवा: ।।

—मानस ७/१३०/श्लोक २



धर्म, विज्ञान के बिना अन्धा है । और विज्ञान धर्म के बिना पंगु ।

—एलबर्ट आइन्स्टीन



अणु-युग बनें धरा जीवन हित
स्वर्ग सृजन का साधन,
मानवता ही विश्व सत्य
भू राष्ट्र करें आत्मार्पण !

—सुमित्रा नन्दन पंत

मानस और विज्ञान

['मानस का आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन' शीर्षक से कानपुर विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबंध ।]

●

लेखक

डॉ० रामलषन सचान

एम० ए०, पी-एच० डी०

●

प्रकाशक

बद्रीनारायण तिवारी

संयोजक

मानस संगम

श्री प्रयागनरायण मंदिर (शिवाला)

कानपुर-२०८००१

३०० प्रतियाँ विद्वानों एवं साहित्यकारों के लिए उपहार स्वरूप ।

पुस्तक : मानस और विज्ञान

लेखक : डॉ० रामलषन सचान

प्रकाशक : बद्रीनारायण तिवारी
संयोजक
मानस-संगम
प्रयाग नारायण शिवाला कानपुर–१

मुद्रक : आराधना ब्रदर्स
१२४/१५२ सी ब्लाक, गोविन्दनगर–कानपुर

आवरण मुद्रक : कुप्को प्रिण्टर्स एण्ड कारटनमेकर, चुन्नीगंज कानपुर–फोन–४३१९०

संस्करण : प्रथम; मार्च, १९८४

मूल्य : रु० ६०.०० (साठ रुपये मात्र)

---

* MANAS AUR VIJNAN
* Dr R. L. SACHAN
* MANAS SANGAM KANPUR–1
* ARADHANA BROTHERS GOVIND NAGAR, KANPUR
* EDITION : FIRST, MARCH, 1984.
* PRICE : RS. 60. 00 (SIXTY ONLY)

आदरणीय डॉ० जे० डी० शुक्ल

को

सादर, सविनय

प्रकाशकीय अनुलेख

मानसकार ने मानस का फल घोषित करते हुए इसको विज्ञान और भक्ति-प्रद कहा है "पुण्यं पाप हरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्तिप्रदं" कदाचित् मानसकार की यह अपेक्षा रही होगी कि मानस से प्रथम विज्ञान उपलब्ध हो तथा तदनुक्रम में भक्ति । अथवा यह कहें कि विज्ञान की उपलब्धि की परिणति भक्ति में हो। संयोग ही कहा जायेगा कि प्रारंभ तुलना एवं भक्ति से हुआ और विज्ञान अनुगामी होकर प्रस्तुत कृति में उपलब्ध हो सका । मानस शोध के प्रथम एवं द्वितीय शोध-कार डॉ० तेस्सोतोरी एल० पी० तथा डॉ० कारपेण्टर जे० एन० यद्यपि विदेशी विद्वान थे तथा उनसे अपेक्षा थी कि वे मानस के विज्ञान पक्ष को उद्घाटित करेंगे किन्तु उन्होंने भी "राम चरित मानस और वाल्मीकि रामायण" तथा ' 'तुलसीदास का धर्मदर्शन'' जैसे विषय अपनी शोध के लिए अपनाकर 'तुलना एवं भक्तिप्रद' रूप को ही अग्रसर किया । ये दोनों हिन्दी के प्रथम एवं द्वितीय शोध-प्रबंध थे जो फ्लोरेंस वि० वि० इटली एवं लन्दन वि० वि० से क्रमशः सन् १९११ एवं १९१८ में स्वीकृत हुए थे ।

कई दशकों के पश्चात् मानस के 'विज्ञानप्रद' स्वरूप को उद्घाटित करने का सुप्रयास डॉ० रामलषन सचान के द्वारा सम्पन्न हुआ । उनकी और उनके निर्देशक डॉ० ब्रजबासी लाल श्रीवास्तव की इस शोध परक सूझबूझ को अतएव भूरि–भूरि साधुवाद प्राप्त हुआ ।

यों तो 'मानस संगम' नगर के मोतीझील स्थित दर्शनीय, प्रेरक स्थल' तुलसी उपवन' में डॉ० सचान के वाक्यों को अन्य देश-विदेश के मनीषियों के साथ शिला-लेख पर अंकित कर गौरवान्वित हो चुका है किन्तु अब उनकी इस कृति के प्रकाशन दायित्व को प्राप्त कर वह अपने अभीष्ट में अग्रसर होने के लिए एक अभिनव चरण प्रस्तुत कर सका है ।

विज्ञान पक्ष को हृदयगंम करने में ही भक्ति की दृढ़ता समाहित हैं, यह तथ्य कदाचित् मानस के आधुनिक सन्दर्भ में उजागर हो रहा है । हमें विश्वास है कि मानस एवं हिन्दी के अनुशीलन के क्षेत्र में यह सन्दर्भ नयी पीढ़ी को एक दिशा दे सकेगा । इस कृति के प्रकाशन से निश्चय ही संगम को गौरव प्राप्त हुआ है । एतदर्थ प्रकाशक की ओर से यशस्वी कृतिकार को हम साधुवाद देते हैं । तथा संगम की

अपेक्षानुसार आशा करते हैं कि वह अब 'भक्ति प्रद' पक्ष की ओर अग्रसर होंगे तथा राम–भक्ति के अधिकारी बनेंगे।

इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के प्रकाशनार्थ शासकीय आर्थिक अनुदान के रूप में प्राप्त सहायता हेतु उत्तर प्रदेश के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अभिरुचि वाले राज्य-पाल महामहिम श्री चन्द्रेश्वर प्रसाद नारायण सिंह एवं व्यक्तिगत आर्थिक सहयोग के लिए डॉ० सचान के अभिन्नमित्र, सम्प्रति दुबई में कार्यरत अभियन्ता श्री गजराज सिंह सचान के प्रति हम परम कृतज्ञ हैं।

महीयसी महादेवी वर्मा, डॉ० मुंशी राम शर्मा 'सोम' राष्ट्रकवि डॉ० सोहन लाल द्विवेदी, डॉ० राम कुमार वर्मा तथा स्व० डॉ० विश्वनाथ गौड़, डॉ० रणधीर श्रीवास्तव, डॉ० मिथिलेश कुमारी मिश्र विज्ञान की विविध शाखाओं के विद्वान डॉ० जी० एन० बाजपेयी, डॉ० कृपाशंकर जी एवं श्री सीताराम सचान का हार्दिक आभारी हूँ क्योंकि इनकी शुभ सम्मतियों से ग्रन्थ एवं मानस संगम गौरवान्वित हुआ है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी-जगत हमारे इस प्रकाशन का स्वागत करेगा और इस ग्रन्थ का उचित समादार होगा।

–बद्रीनारायण तिवारी

चैत्र, कृष्णपक्ष,
पञ्चमी, दिन बुधवार,
विक्रमाब्द २०४०



प्रयाग महिला विद्यापीठ

(महिला विश्वविद्यालय)

डा० महादेवी वर्मा
एम० ए०, साहित्य वाचस्पति
उप-कुलपति

१७ वीं अक्तूबर १९८१
~~१०६/१५३, हीवेट रोड~~,
इलाहाबाद

तिथि ....

'मानस और विज्ञान' पढ़कर प्रसन्नता हुई। विषय की मौलिकता तो असंदिग्ध है ही लेखक का अध्ययन, अध्यवसाय तथा वैज्ञानिक विवेचना भी विषय के अनुरूप ही है। मानस का अध्ययन करनेवाले अनेक विद्वान हैं और उनमें से अनेक का ध्यान ऐसी कल्पनाओं दृष्टान्तों में व्याप्त ज्ञान विज्ञान, मनोविज्ञान आदि विवेचनाओं की ओर गया होगा। परन्तु उस दृष्टिकोण से इस विषय की आलोचनात्मक विवेचना हुई है ऐसा मुझे ज्ञात नहीं है।

लेखक के प्रति मेरी शुभकामनायें –

महादेवी

मुंशीराम शर्मा 'सोम' ९/७० आर्यनगर, कानपुर-२
पी-एच० डी०, डी० लिट्० दिनांक २७. ५. १९८१

डॉ० रामलषन जी सचान एम० ए०, पी-एच० डी० का शोध-प्रबंध "मानस का आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन" कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। उन्होंने मानस परायण के साथ आधुनिक विज्ञान की विविध विधाओं का भी सम्यक अध्ययन किया है।

साहित्य का सामान्य विद्यार्थी वैज्ञानिक खोजों में नहीं पड़ता। परन्तु जिज्ञासा तो मानव मन की अन्तर निहित प्रवृत्ति है, भले ही वह सुप्तावस्था में पड़ी हो। कभी न कभी यह सुप्तावस्था भंग होती है और मानव ज्ञान विज्ञान के लिये आतुर हो उठता है। डॉ० सचान जी के शोध प्रबंध को पढ़कर ऐसे व्यक्तियों की जिज्ञासा परितृप्त होगी और वे भी आधुनिक विज्ञान की खोजो से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

विज्ञान संबंधी यह प्रकाश देने के लिये सचान जी को प्रथमत: स्वयं शोध-सामग्री उपलब्ध करनी पड़ी है। इस दिशा में उन्होंने जो परिश्रम लिया है, वह भी अध्येताओं के लिये अनुकरणीय है। मानस में विज्ञान की इन उपलब्धियों को खोज लेना और भी दुष्कर कार्य है।

डॉ० सचान जी ने अपने शोध कार्य के अनकूल इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है जो अपने दृष्टिकोण में मौलिक है।

शोध कर्ता ने जिस अध्यवसाय के साथ अपना कार्य पूरा किया है वह वस्तुत: श्लाघनीय है। मानस पर अनेक शोध कार्य हुये है परन्तु यह कार्य उन सब से पृथक है। और मानस के गौरव में अभिवृद्धि करने वाला है।

मैं डॉ० सचान जी को उनके मौलिक प्रबंध पर भूरि-भूरि साधुवाद देता हूँ। परम प्रभु उन्हें इस अनुसंधान क्षेत्र में आगे बढ़ावे और कीर्ति प्रदान करें।

(ह०) मुंशीराम शर्मा

राष्ट्रकवि, पद्मश्री श्री सोहन लाल द्विवेदी

डा. रामलखन सचान का शोध प्रबंध —
भारतीय विज्ञान हिन्दी जगत में, अकेला
शोध प्रबंध है, जिसमें आधुनिक विज्ञान
की दृष्टि से भारतीय का गहन अनुशीलन
किया गया है।

ग्रन्थ की अनुक्रमणिका ही मात्र विहंगदृष्टि से
अवलोकन करने से ही इसकी विशालता
का बोध होता है और ज्यों ज्यों पृष्ठ पलटिए
आप उतने ही मन गहरे उतरता जाता है।
उनकी उपलब्धि पर प्राचीन एवं नवीन
दोनों भारतीय आर्ष साधना की जीत है।
श्रम साधना की कृति की कृतकार्यता की।
कृति का अभिनन्दन तथा इसके शोधकर्ता
को सफलता पर हार्दिक आशीर्वाद।

सोहनलाल द्विवेदी
[illegible]

डॉ० विश्वनाथ गौड़
एम० ए०, पी-एच०, डी०,
शास्त्री, साहित्याचार्य,
भू० पू० अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
वी० एस० एस० डी० कालेज, कानपुर

३३/१६४, गया प्रसाद लेन
कानपुर-१
दिनांक-१६-१०-१९८१

डॉ० राम लषन सचान के द्वारा कानपुर विश्व विद्यालय की हिन्दी विषय में पी-एच०, डी० उपाधि के लिये प्रणीत शोध प्रबन्ध "मानस का आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन" के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। लेखक ने शोध की अनुमति के लिये जब यह विषय विश्वविद्यालय की शोध-समिति के समक्ष प्रस्तुत किया था। संयोग से उस समय मैं स्वयं हिन्दी शोध समिति का संयोजक था। विषय की प्रसंग-भूमि को लेकर मैंने साहित्य की परम्परागत संकीर्ण रूढ़ियों से हट कर इस पर विचार किया और मुझें लगा कि मानस को काव्य शास्त्र की सीमाओं में ही नहीं बाँधना चाहिये और देखना चाहिये कि काव्येतर दृष्टियों से भी मानस जैसे दिव्य महाकाव्य की उपपन्नता से क्या नई उपलब्धियाँ होती हैं। यह समझकर मैंने शोध समिति से विषय को स्वीकृत करने की संस्तुति की। आज कार्य के पूर्ण हो जाने पर मुझे पूर्ण संतोष हो रहा है कि लेखक का और मेरा विचार तथा साहस पूर्ण कदम सफल सिद्ध हुए।

डा० सचान ने आधुनिक विज्ञान की विविध शाखाओं की उपलब्धियों के बीज सफलता पूर्वक मानस में खोज निकाले हैं और विज्ञान की तत्-तत् शाखाओं के प्रतिष्ठित विद्वानों ने भी इसे प्रमाणित कर अपनी स्वीकृति की मुद्रा इस पर दी है।

मानस पर यह शोध कार्य सर्वथा नवीन और मौलिक है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मानस पर, इसी प्रकार की अन्य दृष्टियों से भी विचार करने की प्रेरणा अध्ययन कर्त्ताओं को मिलेगी और साथ ही मनुष्य की ज्ञान-राशि में एक नया अध्याय जुड़ेगा।

ह० विश्वनाथ गौड़

डा० राम कुमार वर्मा

'साकेत'
४ प्रयाग स्ट्रीट, इलाहाबाद २११००२

आशीर्वचन

भक्ति, दर्शन और साहित्य की त्रिवेणी पर रामचरितमानस प्रयाग की भाँति चिरकाल तक स्थित रहेगा, इसमें सन्देह नहीं। मानस पर अनेक दृष्टियों पर शोध और आलोचना होती रही है। उसके वैज्ञानिक पक्ष पर आलोचकों और साहित्य मनीषियों का ध्यान कम गया है।

हर्ष और सन्तोष की बात है कि मेरे प्रशिष्य डा. रामलखन सच्चिदानन्द ने मानस के वैज्ञानिक पक्ष पर बड़ी गंभीरता से शोध कार्य किया है। जहाँ कानपुर विश्वविद्यालय ने उस पर पी-एच. डी. की उपाधि प्रदान की है, वहाँ उ. प्र. शासन ने इस शोध-ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ पर्याप्त अनुदान भी दिया है। इसी से इस ग्रन्थ के महत्त्व और उपादेयता का प्रमाण मिलता है।

डा. सच्चिदानन्द बड़े व्युत्पन्न और प्रतिभावान व्यक्ति रहे हैं। उनके शोध की दिशा बड़ी ही युक्तिसंगत और विश्वसनीय रही है। उनके प्रयत्नों से मानस के दृष्टिकोण में एक नयी दिशा का उद्घाटन हुआ है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारतीय साहित्य में इस ग्रन्थ का स्वागत होगा और डा. सच्चिदानन्द मानस के विविध दृष्टिकोणों के प्रति अधिक जिज्ञासाशील होंगे। उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए मेरी शुभ कामनाएँ हैं।

साकेत, इलाहाबाद।
१९-२-'८४

रामकुमार वर्मा

डा० ब्रजवासीलाल
एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट
कुलपति



Phone : { 1561, 1307
टेलीफोन { 1579, 1578

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी.
BUNDELKHAND UNIVERSITY, JHANSI.

संदर्भ............

दिनांक 25-5-1980

प्रमाणित किया जाता है कि श्री रामलखन सचान एम०ए० ने कानपुर विश्वविद्यालय द्वारा पत्रांक सं० का०वि०/शोध/29-3/73-74; दिनांक 9-1-1974 के अंतर्गत स्वीकृत शोध विषय "मानस का आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन" पर मेरे निर्देशन में कार्य किया तथा शोध प्रबंध प्रस्तुत किया।

ब्रजवासीलाल
25/5/80
कुलपति

DR. R. P. SRIVASTAVA
M. A. (Hindi, Eng., Eco.) ph. D.
Deptt. of Hindi, D.A.V. College, Kanpur
Chief Editor "KOMA"

BHARTI BHAWAN.
128/63–D, Kidwai Nagar,
KANPUR–208011

27–9–81

डॉ० रामलखन सचान का शोध-प्रबन्ध 'मानस का आधुनिक विज्ञान के परिपेक्ष्य में अनुशीलन' साहित्य-क्षेत्र में एक विशेष सराहनीय कार्य है। अनुसंधान के गुणों से विभूषित यह शोध-प्रबन्ध हिन्दी-शोध-क्षेत्र में नवीन द्वार उन्मुक्त करता है। ऊपर से परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली ये ज्ञान शाखायें भीतर से किस सीमा तक सम्बन्धित हैं और गोस्वामी तुलसीदास के मानस में यह सम्बन्ध कितना स्पष्ट था अनुसंन्धित्सु के इस प्रामाणिक प्रयास से इस पर सम्यक प्रकाश पड़ता है।

रणधीर श्रीवास्तव

डॉ० जी० एन० वाजपेयी
एम० डी० (मेडीसिन)
प्रोफेसर
जी० एस० वी० एम० मेडिकल कॉलेज
कानपुर

फोन : ४५५००

शरद पूर्णिमा
वि० संवत् २०३८

महर्षि वेदव्यास प्रणीत श्रीमद्भागवत के समान सन्त तुलसीदास रचित श्री रामचरित मानस एक अलौकिक ज्ञान राशि का भण्डार हैं। स्वयं गोस्वामी जी ने 'सत्यं परम् धीमहि' के सदृश "नौ फुर होय जो कहेउं सब, भाषा मनिति प्रभाउ' सिद्धान्त को चरितार्थ किया है।

'मानस' का आधुनिक विज्ञान-संपत्ति से ओत प्रोत होना तुलसीदास के महान स्वाध्याय का द्योतक है। प्राचीन तथा वर्तमान चिकित्सा पद्धतियों का कतिपय स्थानों में उल्लेख तथा समन्वय जिस आधार शिला पर 'मानस' में किया गया है उससे यह प्रत्यक्ष है कि मानस कालीन चिकित्सा प्रणाली परिपक्व थी और उसमें शोध कार्य का स्थान निहित था।

डॉ० रामलषन सचान द्वारा यह शोध-ग्रन्थ उनकी जिज्ञासा तथा विज्ञान के प्रति श्रद्धा का अविस्मरणीय प्रयास किया है। स्वान्तः सुखयहमने इस शोध ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ने और समझने का प्रयास भी किया। इसका प्रकाशन अवश्य ही वैज्ञानिक अनुसंधान में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

एतदर्थ हमारी यह धारणा और भी दृढ़ हो गयी कि मानस का प्रस्तुत अनुशीलन जन मानस की ओर अग्रसरित होना चाहिए जिससे 'पिबतमानसं रस मालयम्' की भावना में उत्तरोत्तर बृद्धि हो।

शुभम्
ह० ज्ञानेन्द्रनाथ वाजपेयी

Telephone : 40066 Ext : 297
Telegram : Technology Telex : 032-296
INDIAN INSTITUTE OF TECHNOLOGY KANPUR
INDUSTRIAL & MANAGEMENT ENGINEERING PROGRAMME
Dr. Kripa Shanker IIT POST OFFICE
Assistant Professor KANPUR-208016, U. P. (India)

September 28, 1981

A Review Of Manas Ka AAdhunik Vigyan Ke Paripekshya Mean Anusheelaw By Dr. Ram Lakhan Sachan

From time immemorial man has striven to bulid an organized body of knowledge for conducting his short term as well as long term affairs. The knowledge has been inventoried in different kinds of literature to suite different levels of applications at different points in time. We are, undoubtedly, proud of being born in a land which, infact could be conceived as an ocean, ocean of knowledge. RAM CHARIT MANAS has occupied an important place amongst several works of pride.

One of the recent impacr of westernization has been to divide the literature into two : one what now goes under so called modern science, and the other consisting of relatively old works which is being left implicitly to be understood as merely episode. The thesis by Dr. Ram Lakhan Sachan entitled, 'Manas Ka AAdhunik Vigyan Ke Paripekshya Mein Anusheelan' is quite eye-opening in this regard.

In his thesis, Dr. Sachan has beautifully brought to the light various concepts of modern science contained in 'Manas'. Analysis of certain aspects of 'Manas' in focus of modern areas of sciences such as biology. medicine, basic sciences, climatology, aerodynamics etc. would definitely restore the enormous respect aud pride in 'Manas' by the students of modern science today and also in days to come.

I feel that publication of the tbesis would be an important step towards promotion of science and technology through the richest literature, 'Manas'.

-(Sd) Kripa Shanker

TELEPHONE : 523321 extn. 247
TELEGRAMS : BARC-BOMBAY,
CHEMBUR

Mod. Labs.
TROMBAY
BOMBAY-400085

GOVERNMENT OF INDIA

BHABHA ATOMIC RESEARCH CENTRE

Health Physics Division

HPD/SRS/81/1977 August 18, 1981

Sub : **Comments on Thesis**

Dear Dr. Sechan,

With reference to your letter dated june 3, 1981, I herewith offer my comments on your thesis titled 'Manas Ka Adhunic Vigyan Ke Paripekshya Men Anushilan'.

It is very interesting and pleasant to go through your thesis written in good literary language yet simple enough to be understood even by scientific personnel. Many imaginary misconceptions prevailing in the minds of the people have been erased successfully. It is beautifully illucitated that the composition of Ram's Sena was not of animals as commonly known but of human beings of different race and names. Similarly Nishichars were also proved to be human beings with strange outfits aud costums like many tribes existing even today.

The ample illustrations are available in the thesis to prove that the highly advanced scientific achievements in the fields of medicine Physics, Chemistry Meteorology and Engineering were in practice without which Tulasi Das could not have described them so well in the Manas.

The efforts to bring literature and science together are commendable. Many seientific phenomena are nicely explained in the thesis with few exceptions. Manas can be looked now from an entirely new angle presented in the thesis.

With best wishes

Yours Sincerely
(S. R. Sachan)
Scientific officer (SD)

Dr. R. L. Sachan, M. A. Ph. D.
9/117, Pukhasayan, Kanpur (U. P.)

प्राक्कथन

आज हमारी आस्था का सबसे बड़ा केन्द्र विज्ञान है। अस्तु चाहे तथ्यान्वेषण हो या तथ्याख्यान, हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नवीन अनुमानों, प्रयोगों, प्रमाणों एवं व्याख्याओं के द्वारा तथ्यों में निहित सत्य को विहित बनाने की प्रक्रिया अपनानी पड़ती है, अन्यथा शोधकार की विवेचना एवं निर्णय शक्ति और साहित्यिक प्रतिपादन प्रभाव शाली होते हुए भी विवेच्य विषय हमारी आस्था का केन्द्र नहीं बन पाता।

मानस के तथ्यों को इसी सिद्धान्त के अनुकूल व्याख्यायित करने का प्रयत्न करते हुए नव ज्ञात वैज्ञानिक तथ्यों एवं उपलब्धियों के परिपेक्ष्य में पुरानी मान्यताओं का अनुशीलन इस शोध प्रबन्ध में किया गया है जो अतीत की महत्ता को स्थापित करने तथा भविष्य के लिए प्रेरणायें प्रदान करने की दिशा में एक प्रयत्न मात्र है। इससे साहित्यि चिन्तन में गति आवेगी या नहीं इसका निर्णय तो अध्येता ही कर सकेंगे।

आभार प्रदर्शन—शोधकार्य का संपादन निर्देशक, अन्यान्य विद्वान एवं शुभ चिन्तकों के निर्देशन एवं सहयोग से संपन्न होता है। सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन एवं आभार प्रदर्शन मात्र औपचारिकता न होकर नैतिक दायित्व एवं सुखद कृतित्व होता है। वस्तुतः कृतिकार की कृति आशीर्वाद शुभाशंसा एवं सद्भावना का ही सुफल होती है।

श्रद्धेय डॉ० व्रजबासी लाल श्रीवास्तव भू० पू० प्राचार्य दयानन्द वैदिक कालेज उरई एवं भू० पू० कुलपति बुन्देल खण्ड वि० वि० झाँसी से इस प्रयास के लिए प्रेरणा प्राप्त हुई है और उन्होंने इस दिशा में मेरा पथ प्रदर्शन किया है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन मात्र से संतोष नहीं हो सकता। उनके विद्वता पूर्ण कुशल निर्देशन में साहित्य की कुछ सेवा कर सका तो उनकी प्रसन्नता एवं प्रशंसा का भाजन होकर आत्म संतोष प्राप्त कर सकूँगा। उनके चरणों में नतमस्तक होने का सौभाग्य मिलता रहे, मेरी तो यही लालसा है। निसंदेह यदि उनका प्रेम, उत्साह वर्धन एवं सश्रम कुशल निर्देशन न मिलता तो यह कार्य मुझ जैसे अल्पज्ञ से पूरा भी न होता।

स्व० डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, स्व० फादर कामिल बुल्के एवं स्व० डॉ० विश्वनाथ गौड़ को पुस्तक प्रकाशन के समय श्रद्धाञ्जलिअर्पितकरते हुए साभार स्मृत किया जाता हैं। इन प्रकाण्ड पंड़ितों ने अपने उपयोगी सुझावों से विशेष रूप से लाभान्वित

किया है।

इनके अतिरिक्त अन्यान्य शुभ चिन्तक* तथा उन समस्त लेखक जिनकी कृतियों से इस कार्य में सहायता ली गयी है अथवा जिनसे अन्यथा किसी भी प्रकार का सहयोग प्राप्त हुआ है, हमारी कृतज्ञता ज्ञापन के अधिकारी हैं। तथा उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ। उनके सहयोग के बिना यह शोध प्रबंध इस रूप में प्रस्तुत न हो सकता था। शोध प्रबन्धों के क्षेत्र में मेरा यह लघु प्रयास कहाँ तक सफल है, इसका निर्णय तो सुधी समीक्षक ही कर सकेंगे।

शोधार्थी की तो यही विनम्र कामना हो सकती है कि यह बाल प्रयास गुरुजनों का किंचित मनमोद कर सके–

गोस्वामी जी के शब्दों में क्षमा याचना करना चाहूँगा–

छमिहहि सज्जन मोरि ढिठाई।
मुनिहहि बाल बचन मन लाई॥ मानस १।८।४

पुनश्च कृति के प्रकाशन में जिनकी कृपा स्नेह एवं सौजन्य से विशेष रूप से योग क्षेम का अधिकारी हुआ हूँ, उन महानुभावों के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति निवेदन करना अपना आवश्यक एवं अपेक्षित दायित्व मानता हूँ। वास्तविकता भी यह है कि पुस्तक का प्रकाशन लेखक की शक्ति सामर्थ्य के वशवर्ती नहीं होता। उसके लिए अनेक महानुभावों का योग अनिवार्य होता ही है।

इस कृति के प्रकाशन की प्रेरणा मूलत: श्रद्धेय डॉ० जनार्दन दत्त शुक्ल अवकाश प्राप्त आई० सी० एस० से प्राप्त हुई। उन्होंने इस कृति की पाण्डुलिपि का बड़ी लगन से अनुशीलन किया और अपने स्नेह, सौजन्य से लेखक को भाव विभोर बना दिया तथा विशेष रूप से प्रकाशनार्थ प्रोत्साहित किया। उनके साथ निम्न लिखित विद्वानों ने भी अपनी शुभ सम्मतियां एवं आशीर्वचन प्रदान कर लेखक को प्रकाशन के लिए प्रेरित किया। परीक्षकत्रय समादरणीय डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना, प्रोफेसर हिन्दी विभाग, राजस्थान वि० वि० जयपुर सम्मान्य डॉ० नगेन्द्रनाथ उपाध्याय, रीडर हिन्दी विभाग, बनारस हिन्दू वि० वि० एवं विदुषी डॉ० सुधाकर इन्द्रा जोशी, रीडर हिन्दी विभाग, जोधपुर वि० वि० जोधपुर।

महीयसी महादेवी वर्मा, माननीय डॉ० सोहन लाल द्विवेदी राष्ट्रकवि, श्रद्धेय डॉ० रामकुमार वर्मा, पूज्यपाद डॉ० मुंशीराम जी शर्मा तथा स्वा० डॉ० विश्वनाथ जी गौड़, परम आदरणीय डॉ० जी० एन० बाजपेयी, डॉ० रणधीर प्रसाद श्री वास्तव डॉ० कृपाशंकर जी, श्री सीताराम सचान आदरणीया डॉ० मिथिलेश कुमारी मिश्र।

इन सभी महानुभावों के प्रति कृताञ्जलि नमन एवं अभिवंदन करता हूँ।

---

* देखिये इसी शोध प्रबन्ध के पृ० २४० पर

इनके द्वारा कृत सराहना मेरा सौभाग्य है।

उ० प्र० शासन तथा महामहिम चन्द्रेश्वर प्रसाद नारायण सिंह राज्यपाल उ० प्र० के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने बड़ी कृपा करकृति के प्रकाशनार्थ रु० ४५००।- का अनुदान स्वीकृत किया। आर्थिक योग के अंतर्गत अपने स्नेही स्वजन श्री गजराज सिंह सचान प्रोसेस कण्ट्रोल इंजीनियर दुबई यू० ए० ई० के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने रु० ३००० ।- कीं राशि अनुदान की अपेक्षा एवं प्रकाशन की व्यबस्था हेतु उपलब्ध कराई।

प्रकाशक मानस संगम कानपुर के संयोजक श्री बद्रीनारायण तिवारी का हार्दिक आभारी हूँ जिन्होंने स्नेह, सद्भाव एवं आत्मीयता के साथ इस प्रकाशन को अपनाया और संगम की प्रकाशित रचना का गौरव प्रदान किया। रामकथा के माध्यम से हिन्दी के प्रचार-प्रसार के प्रति उन जैसा समर्पित व्यक्तित्व अप्रतिम एवं अलभ्य है। उनके अन्तर की दैवी शक्ति साधना बन गई है। वह दिन रात इस शुभ संकल्प में संलग्न हैं और एक पुण्य कार्य का सोत्साह संपादन कर रहे हैं।

मुद्रक आराधना ब्रदर्स एवं आवरण मुद्रक कृप्को प्रिण्टर्स एण्ड कारटन मेकर के व्यवस्थापकों एवं कर्मचारियों के प्रति भी आभार प्रदर्शन करना मैं अपना दायित्व मानता हूँ।

फाल्गुन शुक्लपक्ष अष्टमी — —रामलषन सचान

दिन रविवार संवत २०४० — ११.३.८४

अनुक्रम

परिशिष्ट—१

———

विषय-प्रवेश

यदि भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का अवलोकन किया जाय तो ज्ञात होगा, कि हमारे देश में विज्ञान की स्थिति अन्य देशों की अपेक्षा अच्छी थी। नक्षत्र विज्ञान एवं गणित, औषधि एवं रसायन तथा धातु विज्ञान के क्षेत्रों में विशेषरूप से भारत का योगदान सबसे अधिक था। कालान्तर में विज्ञान की अवनति हुई तथा १५वीं शताब्दी से तो विज्ञान की स्थिति का चिन्तनीय ह्रास हुआ। इसके कारण विदेशी सरकार तथा देशवासियों के लिए विज्ञान की शिक्षा की सुविधा का अभाव था। मैकाले की शिक्षा नीति ही वस्तुत: प्रमुख कारण थी।

हमारे प्राचीन साहित्य में विज्ञान के तत्वों, तथ्यों, नियमों-सिद्धान्तों तथा उपलब्धियों का साहित्यिक निरूपण विद्यमान है। इसमें वर्णित कथानकों, संवादों कवि-कथनों एवं घटनाओं आदि का आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन किया जा सकता है तथा इस प्रकार प्राचीन वैज्ञानिक ज्ञान का रहस्योद्घाटन हो सकता है। इस रहस्योद्घाटन से साहित्य की क्षमता ही नहीं, प्रत्युत नवीन वैज्ञानिक खोजों के लिए साहित्य से भी प्रेरणायें उपलब्ध हो सकेंगी। हम इस माध्यम से भी कदाचित् उत्साहवर्धक वैज्ञानिक खोज एवं चिन्तन में प्रवृत्त होने के लिए दिशा पा सकें और मानव जीवन को सुखी तथा समृद्धशाली बनाने के लिए कुछ कर सकें। इसी दिशा में एक विनम्र प्रयास के रूप में "मानस का आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन" शोध-प्रबन्ध, "मानस और विज्ञान" शीर्षक से प्रस्तुत किया जा रहा है।

विषय की प्रेरणा:– मैं सत्र १९६६–६७ में डी० वी० कॉलेज, उरई का बी० एड० का छात्र था। तुलसी जयन्ती के अवसर पर कॉलेज के प्राचार्य डॉ० बी० बी० लाल के विशिष्ट भाषण का आयोजन था। व्याख्यान में तुलसी पर हुए शोध कार्य की विस्तृत चर्चा की गई। यह चर्चा जीवन का सन्देश सिद्ध हुई और कृषि स्नातक होते हुए भी, हिन्दी में एम० ए० करके शोध करने का संकल्प बन गई।

नि:संदेह ज्ञान की पिपासा मनुष्य को अज्ञात की ओर ही आकर्षित नहीं करती प्रत्युत लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही धरातलों को, जाज्वल्यमान नक्षत्र की भाँति प्रदीप्त कर अपने ही प्रकाश से प्रकाशित कर देती है। जिस प्रकाश में मानव,

ईश्वर की श्रेष्ठतम रचना को समझने के लिए अपने गन्तव्य की खोज में आगे बढ़ता है तथा अपने मार्ग को प्रशस्त करता है। जिज्ञासा एवं कुतूहल का समाधान मानव मस्तिष्क की सहज एवं स्वाभाविक प्रक्रिया है जो ज्ञानराशि का आलोक बिखेर देती है।

एक अन्य सन्दर्भ भी उल्लेखनीय है। मैंने भौतिक विज्ञान के 'प्रकाश' प्रकरण में यह सिद्धान्त पढ़ा कि समतल दर्पण के समक्ष वस्तु जितनी दूरी पर रखी जाती है उसका प्रतिबिम्ब दर्पण के पीछे ठीक उतनी ही दूरी पर बनता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के संदर्भ में प्रकाश के परावर्तन के नियमों[1] के अनुकूल प्रतिबिम्ब बनने की प्रक्रिया, ज्यामितीय प्रमाणों[2] के परिप्रेक्ष्य में भी देखी। उधर बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' के 'उद्धवशतक' एवं अन्यत्र व्यक्त साहित्यिक अभिव्यक्तियों में भी कुछ ऐसा ही बिम्ब बनते देखे—

ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि प्रिय प्रान-मूरि,
त्यौं-त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं। छ० ८०

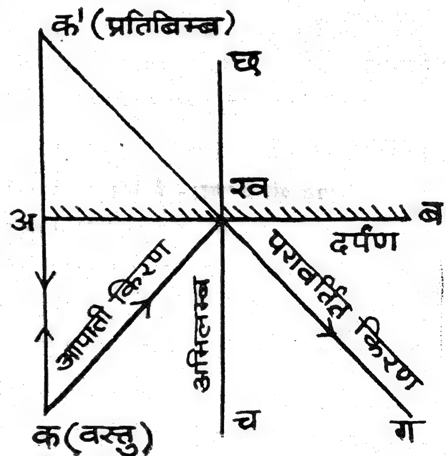
अथवा

सन्तत प्रिय प्यारे बसत मो हिय दर्पन माँहि।
धँसत जात त्यों-त्यों सखी ज्यों-ज्यों ही बिलगाहि॥

१– (क) आपातीकिरण, अभिलम्ब और परावर्तित किरण तीनों एक ही तल पर होते हैं।

(ख) आपातीकोंण और परावर्तन कोंण बराबर होते हैं।

२. △अ ख क और △अ ख क' में
∵ ∠ अ क ख = ∠ अ क' ख
(परावर्तन के नियमों, शीर्षाभिमुख एवं एकान्तर कोणों के अनुसार)
तथा ∠ अ ख क = ∠ अ ख क'
(परावर्तन के नियमों, शीर्षाभिमुख तथा कोटिपूरक कोणों के आधार पर)
और भुजा अ ख उभयनिष्ठ है।
∴ △ अ ख क ≡ △ अ ख क'
∴ भुजा अ क = अ क'



स्पष्टतः प्रकट हुआ कि दर्पण के उक्त नियम की ही साहित्यिक रूप में सुन्दर प्रस्तुति हुई है।

उक्त साहित्यिक संदर्भ में अत्यन्त सुन्दर भाव-व्यंजना है। कितने ही अलंकारों (अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश, रूपक, परिकर एवं विषम) की सुन्दर छठा है, गोपियों के वाक्चातुर्य तथा बुद्धि के चमत्कार का परिचय भी है पर वैज्ञानिक दृष्टि से पर्यालोचन करते हुए हम इस तथ्य को नहीं नकार सकते कि अन्यथा वैज्ञानिक सत्य ही उद्घाटित हुआ है जो इस सुन्दर अभिव्यक्ति का मूलाधार एवं प्रेरणा स्रोत है। डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने भी उक्त साहित्यिक भावाभिव्यंजना की वैज्ञानिक महत्ता को स्वीकार करते हुए लिखा है कि 'विज्ञान के प्रकाश एवं प्रतिबिम्ब संबंधी सिद्धान्त को लेकर सुन्दर भावव्यंजना की गई है।'[1]

तुलसी के प्रति जाग्रत रुचि, रत्नाकर जी की उक्त सुन्दर भावव्यंजना, विद्वानों एवं शुभचिन्तकों का उत्साहवर्धन ही इस स्वीकृत विषय के प्रेरणा स्रोत सिद्ध हुए।

साथ ही इस विषय पर कार्य करने के लिए निम्नलिखित संदर्भो से भी आत्मविश्वास जाग्रत हुआ।

१—डॉ० भगवती सिंह की निम्नलिखित टिप्पणी तथा तदनुकूल शोधार्थियों से उनकी अपेक्षा—'आज हमें अपने जीवन के चारों ओर विज्ञान की विजय दुन्दुभि के स्वर सुनाई दे रहें हैं। यह स्वर अपनी समग्रता में इतने तीक्ष्ण व त्वरित गामी हो गए हैं कि प्राचीन परम्परा की गोद में पली हुई भारतीय संस्कृति और कला अब अवाक् और स्तब्ध-सी दीख पड़ती है। विज्ञान का प्रभुत्व हमारी मानसिक विचारणा के क्षेत्र में भी है। साहित्य रचना और समीक्षा के प्रांगण में भी वह परिव्याप्त है। आधुनिक दृष्टिकोण मे लिखी जाने वाली नवीन प्रयोगों की रचनाओं और उनकी समीक्षाओं का महत्व है, वहीं प्राचीन महाकवियों की कृतियों का नई एवं प्राचीन कसौटियों पर मूल्यांकन अपेक्षित हैं।'[2]

२—स्वामी विवेकानन्द द्वारा भारत तथा विदेशों में दिये गये व्याख्यानों के संदर्भगत अंश जिसमें उन्होंने कहा था—'आधुनिक विज्ञान के नवीनतम आविष्कार जिसकी (हिन्दू धर्म) केवल प्रतिध्वनि मात्र है।'[3]

---

१. उद्धव शतक भाष्य, भाष्यकार डॉ० शिवबालक शुक्ल, ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर संस्करण १९७७, पृष्ठ १४४ से उद्धृत।

२. तुलसी की काव्य कला, लेखक डॉ० भगवती सिंह, प्रथम संस्करण, भूमिका।

३. हिन्दू धर्म (स्वामी विवेकानन्द) अनुवादक स्व० द्वारकानाथ तिवारी, छठा संस्करण, पृ० ५।

३. तुलसी परिशीलन (स्मृति ग्रन्थ) की शुभांशसा में लिखे स्व० सुमित्रानन्दन पंत के वाक्य–'रामचरित मानस में जो शाश्वत तत्व संगृहीत हैं उन्हें युग के अनुरूप नये अनुसंधानों का परिधान पहनाना हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिए अनिवार्य रूप से महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।'[1]

४. डॉ० विष्णुकान्त शास्त्री का कथन–'आधुनिक सन्दर्भ में तुलसी की प्रासंगिकता का विचार तुलसी के प्रति ही नहीं अपने युग के प्रति भी सर्जनात्मक निष्ठा का प्रमाण देना होगा।'[2]

५. तुलसी की काव्यचेतना से गहन साक्षात्कार करके आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में जांचने-परखने तथा उसके सर्वग्राही स्वरूप को प्रतिष्ठित कर जन चेतना के सम्मुख प्रस्तुत करने का सामूहिक प्रयास करने वाले बाबूलाल गर्ग का कथन–'उसके (मानस के) सार्वभौमिक एवं शाश्वत अवदान का युगानुकूल व्याख्यान एवं पुनर्मूल्यांकन की अपेक्षा है।'[3]

६. डॉ० सुखवीर सिंह का सुझाव– 'इस संबंध में हमारा विनम्र सुझाव है कि भारत की प्राचीन एवं तत्कालीन उपलब्धियों पर तुलसीदास जी का उतना ही अधिकार है जितना किसी भारतीय का अपनी वस्तु पर हो सकता है। अपनी ही वस्तु का परिष्कार एवं परिवर्द्धन करके यदि उसका उचित उपयोग कर लिया जाय तो वह आरोप का विषय नहीं, प्रशंसा का विषय होता है।[4]

दृष्टि भेद, वैचारिक विभिन्नता तथा एकता में अनेकता और अनेकता में एकता के जिस सिद्धान्त का गोस्वामी तुलसीदास जी ने प्रतिपादन किया है वह हमारे शोध प्रयास की दिशा एवं दृष्टि को अन्यथा स्वीकार करता है–

जिन्ह कें रही भावना जैसी।[5]
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥१/२४०/२

---

१. तुलसी परिशीलन (स्मृति ग्रन्थ), सम्पादक बाबूलाल गर्ग, प्रथम संस्करण; शुभांशसा से उद्धृत।
२. वही, तुलसी परिशीलन, शुभांशसा से उद्धृत।
३. वही, तुलसी परिशीलन, प्राक्कथन, पृ०–१२।
४. रामचरित मानस की पाश्चात्य समीक्षा लेखक डॉ० सुखवीर सिंह, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली–७, प्रथम संस्करण, पृ० ९५।
५. श्री रामचरित मानस (सटीक, सचित्र, महीन टाइप), मझला साइज गो० तुलसीदास जी विरचित, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस गोरखपुर, चौदहवाँ संस्करण। १/२४०/२ में प्रथम अंक सोपान या काण्ड

हमारे विश्वविद्यालयों में मानस के विभिन्न पक्षों को लेकर अनेकानेक विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से शोध कार्य किए है, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि अभी भी शोध कार्य के लिए अन्यान्य दृष्टिकोण शेष हैं । गो० तुलसीदासजी इस प्रकार के विभिन्न दृष्टिकोणों से किए जाने वाले अध्ययन-अनुशीलनों से सहमत हैं–

हरि अनंत हरि कथा अनंता ।
कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब संता ।। १/१३९/३

'मानस का आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य के अनुशीलन' विषय अभी तक अछूता रहा है तथा इस विषय पर कार्य करने की अपेक्षा है ।

विषय की मौलिकता एवं उपादेयता :–'मुख्य रूप से विचारों और भावों को नवीन रूप में प्रस्तुत करने की कला (शैली) में ही मौलिकता रहती है न कि स्वयं विचारों और भावों में'[१] इस दृष्टि से, प्रस्तुत शोध-प्रबंध, अपने दृष्टिकोण, दिशा एवं अभीष्ट में मौलिक है । राजशेखर[२] एवं एक अन्य विद्वान,[३] बेसिल क्लार्क[४]

द्वितीय, दोहा या सोरठा संख्या एवं तृतीय अंक चौपाई संख्या प्रकट करता है जो उस दोहा या सोरठा के पश्चात् आती है ।

चौपाई की ठीक संख्या जानने के लिए अंक को दो गुना कर दें । यह संख्या दूने से एक कम भी हो सकती है ।

गोस्वामी जी ने रामचरित मानस की रचना का प्रारम्भ 'संवत सोरह सौ एकतीसा' १/३३/२ से स्वीकार किया है जो ईसवी सन् १५७४ ठहरता है। कहा जाता है कि दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिन में यह ग्रन्थ पूर्ण हो गया था ।

१. विचार प्रवाह लेखक डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रथम संस्करण, पृ० १०२ ।

२. नास्त्यचौरो कवि जनः नास्त्य चौरो वणिग्जनः ।
स नन्दति बिना वाच्यं यो जानाति निगूहितम् ।।
–काव्य मीमांसा

न तो कोई कवि ही ऐसा है जो चोरी न करता हो और न कोई वणिक ही ऐसा है जो चोरी न करता हो । फिर भी वही निन्दा से बचकर आनन्द मानता है जो छिपाना जानता है ।

३. पूर्ण मौलिकता प्रच्छन्न साहित्यिक चोरी के अलावा कुछ नहीं है ।
All originality is but undetected plagiarism.
–'Comparative Philology of Indo-Aryan Languages.'
–Jahangir Dar

4. Copying of the work of an other man is plagiarism. Copying the work of many is research.
–History of airships. 1961, Page–29.

तथा एस० एल० एन० सिन्हा[1] ने अपने-अपने तरीके से मौलिकता के उपयुक्त स्वरूप का समर्थन किया है तथा शोध-अपेक्षाओं के अन्तर्गत विश्वविद्यालयों का भी मौलिकता से इसी प्रकार का अभीष्ट रहा है।

अभी तक मानस का प्रमुख रूप से धार्मिक एवं साहित्यिक ग्रन्थ के रूप में ही अधिक अनुशीलन हुआ है, जिससे उसका वैज्ञानिक स्वरूप, धर्म एवं साहित्य की ओट में छिपा रहा है। अब युगीन परिस्थितियों की माँग है कि मानस का वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं स्वरूप भी सामने लाया जाय। जिससे इस रचना को आधुनिक परमाणु-युग की नवीन कही जाने वाली खोजों के परिप्रेक्ष्य में भी देखा सा सके।

इस शोध कार्य से मानस का वैज्ञानिक पक्ष प्रकाश में आवेगा तथा उसके पात्र, घटनाक्रम आदि सभी को नई उद्भावना के अन्तर्गत देखा जा सकेगा। इस दृष्टि से यह अध्ययन मौलिक प्रयास है तथा अनुसंधान के लिए अपेक्षित अर्हताओं की पूर्ति करता है।

आशा है यह विनम्र प्रयास हिन्दी में ऐसी पुस्तकों के निर्माण एवं प्रकाशन को भी प्रेरित करेगा जिनमें कवियों द्वारा वैज्ञानिक उपलब्धियों की चर्चा की गई होगी या साहित्यिक रूप में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया होगा।

---

1. Presentation of given material in an unique manner is called research.

–From seminar Lecture 'research Attitudes and Techniques' delivered By S. L- N. Simha, Director (I. F. M R.) Madras. under Refresher Programme for college Teachers B. H. U. Varanasi, 20th July 1974.

अध्याय १

विज्ञान का स्वरूप : एक सैद्धान्तिक विवेचन

१.१. विज्ञान शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ—आँग्ल भाषा में प्रयुक्त साइन्स (Science) शब्द का आधार लैटिन धातु साइन (Scine) है जिसका अर्थ भी 'जानना' पहचानना या पहचान कर अलग करना आदि होता है। इस लैटिन शब्द साइण्टिया (Scientia) बना है जिसका अर्थ 'ज्ञान' है। इसी लैटिन शब्द से विभिन्न भाषाओं में विज्ञान के समानार्थी शब्द बने हैं जैसे—इटैलियन, साइन्जा (Scienza) पुर्तगाली, साइन्सिया (Sciencia), स्पेनिश, सिन्सिया (ciencia) तथा एँग्लो फ्रेंच (Science) आदि।[1]

विज्ञान का व्युत्पत्ति[2] परक अर्थ होता है विशेष रूप से जाना हुआ।

१.२. विज्ञान शब्द का प्रयोग—आँग्ल भाषा में साइन्स शब्द का प्राचीनतम प्रयोग १४ वीं शताब्दी के मध्य में मिलता है पर तब यह शब्द आधुनिक अर्थ में 'साइन्स' न होकर मात्र ज्ञान के अधिक समीप था। इसके लगभग ३५० वर्ष पश्चात् सत्रहवीं सदी के अन्तिम चरण में 'साइन्स' शब्द अपने आधुनिक अर्थ के समीप आया और कला से अलग या भिन्न अर्थ में इसका प्रयोग होने लगा।

भाषा में ज्ञान शब्द विज्ञान से पुराना है किन्तु साहित्य में इसका प्रयोग संभवतः शाख्यायन श्रौत सूत्र के पूर्व नहीं मिलता। विज्ञान का प्राचीनतम प्रयोग अथर्ववेद में मिलता है। अपने प्रारम्भिक अर्थ की दृष्टि से 'ज्ञान' 'विज्ञान' में कोई अन्तर नहीं है। आज सामान्यतः ज्ञान का जो अर्थ गृहीत होता है प्रारम्भिक काल

---

१. शब्दों का अध्ययन : डॉ० भोलानाथ तिवारी, प्रथम संस्करण, पृ० २१८–१९।

२. वि+ज्ञान से विज्ञान शब्द बनाता है। 'वि' एक उपसर्ग है जिसका अर्थ है 'विशेष' किन्तु 'ज्ञान' शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान न दें तो स्पष्टतया प्रतीत होता है कि यह शब्द संस्कृत की 'ज्ञा' धातु में ल्युट् प्रत्यय लगाने से ज्ञा+ल्युट हुआ तथा ल्युट के स्थान पर 'अन्' हो जाने से 'ज्ञान' शब्द की निष्पत्ति हुई जिसका अर्थ है 'जाना हुआ' यह कर्तृ वाचक संज्ञा है।

में 'ज्ञान' और 'विज्ञान' दोनों से प्रायः वही अर्थ अभीष्ट था, किन्तु क्रमशः दोनों के अर्थ में विकास हुआ और ज्ञान का प्रयोग सामान्य ज्ञान के अतिरिक्त धर्म ज्ञान अथवा आत्म ज्ञान आदि के लिए होने लगा। दूसरी ओर विज्ञान का प्रयोग धीरे-धीरे बुद्धि, प्रतिभा, विवेक, दक्षता, व्यवहार और संगीत आदि के लिए भी होने लगा। विज्ञान ने अपने अर्थ का विकास दो रूपों में करना प्रारम्भ किया। एक तो पारलौकिक रूप में, जिधर ज्ञान जा रहा था और दूसरे लौकिक रूप में जिधर चलकर उसे साइंस का समानार्थी बनना था। पारलौकिक अर्थ में भी विकसित होकर 'विज्ञान' धीरे-धीरे ज्ञान से भी आगे बढ़ गया।[१]

ज्ञान भी अज्ञान का पुत्र है। कहीं 'अज्ञान' ने भूल का रूप धारण करके ज्ञान को जन्म दिया तो कहीं आश्चर्य और जिज्ञासा बनकर। आश्चर्य और जिज्ञासा भी अज्ञान के प्रच्छन्न रूप हैं। जिसे जानते हैं, उसे देखकर न तो आश्चर्य हो सकता है और न उसे जानने की उत्सुकता ही हो सकती है। ऐसा लगता है कि ज्ञान अज्ञान से लड़ते-लड़ते जब कुछ थक सा गया तो उसने अपनी सहायता के लिए विशेषार्थी उपसर्ग 'वि' को बुला लिया और तब उत्पन्न हुआ 'विज्ञान' (विशेष ज्ञान)। निश्चय ही ज्ञान की तुलना में तिहरे पौरुष (वि+ज्ञान+ल्युट) का प्रतीक यह विज्ञान अज्ञान और अन्ध विश्वास आदि से अधिक शक्ति से लड़ रहा है।[२]

१.३. विज्ञान शब्द का विकास—गोस्वामी तुलसीदास तक विकासक्रम में 'विज्ञान' का अर्थ ज्ञान या विशेष ज्ञान मिलता है। दर्शन ग्रन्थों में इसका प्रयोग धीरे-धीरे आत्मा का अनुभव, आत्मा के स्वरूप का ज्ञान और स्वयं आत्मा के लिए भी हुआ है, फिर भी इसका विकास यहीं तक नहीं रुका। विज्ञान शब्द इतना महत्वाकांक्षी सिद्ध हुआ कि धीरे-धीरे वह 'ब्रह्म'[३] के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा। यह प्रमुखतः आस्तिक दर्शनों में ही नहीं प्रत्युत नास्तिक दर्शनों में भी कम पूज्य नहीं रहा। बौद्ध धर्म का विज्ञानवाद इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

विज्ञान शब्द के विकास का दूसरा पथ लौकिक था। महाभारत तथा मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में इसके विकास की पहली सीढ़ी मिलती है जहाँ यह सांसारिक ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन ग्रन्थों में इस दिशा में उसके विकास की दूसरी सीढ़ी सुश्रुत में मिलती है। वहाँ वह आज के 'साइन्स' शब्द के बहुत निकट है। इसके पश्चात् उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के बाद यह शब्द आज के युग के

---

१. वही, शब्दों का अध्ययन, पृ० २१९।

२. वही, शब्दों का अध्ययन, पृ० २२०।

३. हिन्दी शब्द सागर, सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दर दास, प्रथम संस्करण।

अत्यन्त महत्वपूर्ण शब्द 'साइंस' का पर्याय बना। आज विज्ञान सबसे बड़ा है। धन-सुख-शक्ति आदि विश्व में जो भी उच्चतम आकांक्षित वस्तुयें हो सकती हैं, सब उसकी मुट्ठी में हैं।

१.४. **विज्ञान की परिभाषा**–व्यक्त सत्य का ज्ञान ही 'विज्ञान' कहलाता है। प्रकृति के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन करके उनका सूक्ष्म विश्लेषण करना, तथ्यों का एकत्रीकरण, पर्यवेक्षण, निरीक्षण और परीक्षण द्वारा सत्यापन करके किसी निश्चित निष्कर्ष तक पहुँचना विज्ञान माना जाता है। इस सन्दर्भ में कतिपय विद्वानों के मन्तव्य दृष्टव्य हैं–

आविष्कृत सत्यों तथा प्राकृतिक नियमों पर आधारित क्रमबद्ध व्यवस्थित ज्ञान, विज्ञान कहलाता है।[१]

विज्ञान, प्रायोगिक प्रेक्षणों का वह संचित और अनवरत क्रम है जो ऐसी धारणाओं और सिद्धान्तो को जन्म देता है जो आगामी प्रेक्षणों के प्रकाश में अनवरत संशोधित होते जाते हैं।[२]

जो, निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प और अव्यय (सदैव विकार रहित एक स्वरूप) ज्ञान है, वही विज्ञान है और इतर ज्ञान, सबके सबअज्ञान हैं।[३]

सृष्टि के व्यक्त पदार्थों की जड़ में एक ही मूल द्रव्य है और उसी के जानने का नाम विज्ञान है।[४]

अज्ञान और गलत धारणाओं से भी ज्ञान की प्राप्ति होती है।[५]

प्रकृति में जो सत्य है उसी का क्रमानुसार सुगठित एवं सुव्यवस्थित ज्ञान विज्ञान है।

---

१. मानक हिन्दी कोष, सम्पादक रामचन्द्र वर्मा, प्र० सं०।

२. विज्ञान शिक्षण: डॉ० आनन्द भूषण एवं श्री आनन्द किशोर श्रीमाली, संस्करण १९७३, पृ० ४ से उद्धृत।

३. विज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं पदव्ययम्।
अज्ञानमितरत्सर्वम् ...। २।९३
–कूर्मपुराण कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ७४६ से उद्धृत

४. सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धिसात्त्विकम्। १८।२०
–श्रीमद्भगवदगीता से उद्घृत।

5. Science possession of knowledge as distinguished from ignorance or misunderstanding.
–We bsters's third new International dictionary of the English Language. Un abridge–d–Editor in chief Philip Bacock–

किसी कारण की खोज में परिकल्पनाओं पर आधारित निरीक्षणों एवं परीक्षणों के द्वारा मालूम किये गये तथ्यों का क्रमबद्ध ज्ञान, विज्ञान कहलाता है।

विज्ञान से यह ज्ञात होता है कि सृष्टि के नाना व्यक्त और उनके भिन्न-भिन्न प्रकार, किस प्रकार अलग-अलग निर्मित हुए।[१]

विज्ञान मनुष्य का भौतिक सृष्टि के प्रति व्यवस्थित ज्ञान है।[२]

"Science-knowledge gained and verified by exact observation and correct thinking, especially as methodically formulated and arranged in a rational system, also the sum of Universal knowledge."[3]

"Science is an accumulated and systematized learning, in general usage, restricted to natural phenomenon.[4]

"Science-a word which, in its broadest sense, Is synonymous with learning and knowledge (Lat scientia from scire, to learn) accordingly it can be used in connection with any qualifying adjuctive, Which shows what branch of learning is meant. But in gen ral usage a more restricted meaning has been adopted, which differentiates science from other branches of accurate knowledge for our purpose, Science may be defined as ordered knowledge of natural phenomenon and of the relations between them, thus, it is a short trm for "Natural Science" and as such is used here in confirmity with a general modern convention."[5]

इस प्रकार विज्ञान शब्द के अन्तर्गत निम्नलिखित पक्ष समाहित हैं—

रूप—क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अभिव्यक्ति।

प्रक्रिया—निरीक्षण एवं परीक्षण जो परिकल्पनाओं पर आधृत होंगे।

---

१. सृष्टि क्रम एवं विकासवाद, डॉ० आनन्द प्रकाश सिन्हा, पृ० १।

२. विज्ञान शिक्षण, पृ० ३ पर अशोक कपूर की परिभाषा।

3. Funk and Wagnalls: New Standard Dictionary of English Language.

—Editor-I sack, Funk.

4. "Science" The columbia encyclopedia IIIrd edition P. 1990.

5. The Encyclopaldia Britannica, Fourteenth Edition vol. 20.

अस्मिता–प्रकृति की सत्यता ।

प्रकियागत परिकल्पना–व्यक्त पदार्थों के मूल में किसी एक मूल द्रव्य की संभावना ।

प्रस्तुत अनुशील के अन्तर्गत मानस के तथ्यों का वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में निरीक्षण एवं परीक्षण किया गया है । इन परीक्षणों को क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है । महात्मा तुलसीदास की प्रक्रियागत परिकल्पना यह प्रतीत होती है कि व्यक्त पदार्थों के मूल में मूल द्रव्य 'राम' एवं 'राम नाम' है । इस ओर यथा स्थान संकेत किया गया है । इसको प्रमुख अभीष्ट बन.ना प्रस्तुत अनुशीलन के लिये न तो अपेक्षित हैं न संभव ही । वस्तुतः इस प्रकार का अनुशीलन एक पृथक् विषय के अन्तर्गत आवेगा जो दर्शन के लिए अधिक उपयुक्त होगा ।

'मानस का आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन' विषय पर शोध कार्य करने के पूर्व यह आवश्यक एवं अपेक्षित है कि विषय की अपेक्षाओं एवं सीमाओं तथा उसके क्षेत्र को निर्धारित कर लिया जाय । इसी दृष्टि से यहाँ विषय से संबधित शब्दों को स्पष्ट करने की अपेक्षा हुई है ।

(क) **मानस**–महात्मा तुलसीदास कृत रामचरित मानस की मूल प्रति अथवा प्रामाणिक प्रति के प्रति विशेष आग्रह नहीं किया गया है, न इसकी चर्चा करने अथवा इस प्रकार के विवाद में पड़ने की आवश्यकता समझी गयी है । शोध की दृष्टि से मानस की तथ्यात्मक सामग्री प्रमुखतः अपेक्षित है । भाषिक सूक्षमतायें गौण रूप से अथवा नगण्य रूप में ही किसी स्तर पर विचारणीय रहेंगी । तथ्यात्मक सामग्री साधारणतया सभी प्रतियों में समान है । गीताप्रेस गोरखपुर की प्रतियाँ विशेष रूप से सुलभ हैं । अतएव गीताप्रेस गोरखपुर के "श्री रामचरित मानस" संस्करण सं० २०२२ को[१] अध्ययन अनुशीलन का आधार बनाया गया है ।

(ख) **आधुनिक**–शोध विषय के अन्तर्गत 'आधुनिक' शब्द के प्रयोग का भी अभीष्ट है–

१–प्राचीन विज्ञान का परिप्रेक्ष्य नहीं लिया गया है । यों प्राचीन विज्ञान–दृष्टि अन्यथा अवान्तर रूप में स्वतः ही उद्‌घाटित हुई है तथा यह सुखद अनुभूति इस अनुशीलन की एक विनम्र उपलब्धि कही जायेगी कि तथाकथित भ्रान्त धारण कि विज्ञान आधुनिक ही है, प्राचीन काल में नहीं था, निर्मूल है । अपनी प्राचीन विज्ञान–दृष्टि को उजागर और उद्‌घाटित कर उसके परिप्रेक्ष्य में अध्ययन-अनुशीलन प्रारम्भ करना चाहिए ।

---

१. देखिए, विषय–पृ० ४, पादटिप्पणी का सन्दर्भ–१ ।

२–"आधुनिक" शब्द से विषय को सीमित भी किया गया है। आधुनिकतम विज्ञान का परिप्रेक्ष्य लेने की बात नहीं कही गयी है जो विश्व के नित नये वैज्ञानिक अन्वेषणों के सन्दर्भ में किसी प्रकार संभव ही नहीं होता।

(ग) **परिप्रेक्ष्य**–शब्द भी विषय को सीमाओं की परिभाषित एवं सीमित करता है। यह अभीष्ट नहीं रहा कि "मानस" को विज्ञान की संहिता सिद्ध किया जाय न यह प्रयत्न किया गया कि मानस के तथ्य विज्ञान की सारभूत उपलब्धियाँ हैं। परिप्रेक्ष्य से यही आशय रहा है कि मानस के तथ्यों को वैज्ञानिक परिकल्पनाओं के सन्दर्भ में भी देखा जा सकता है जिसके पीछे निश्चित रूप से प्राचीन विज्ञान की सुदृढ़ उपलब्धियाँ रही होंगी।

विषय का पद क्रम भी निश्चित दिशा निर्देशिक है जिसके कतिपय शब्दों को कोष्ठक में रखकर इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–मानस का (आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में) अनुशीलन अर्थात् अभीष्ट मानस का अनुशीलन है। आधुनिक विज्ञान का नहीं।

इस प्रकार शोध प्रबन्ध के स्वीकृत विषय का अर्थ संक्षेप में निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है, कि मानस के किसी पदार्थ, वस्तु, मत, मूल्य आदि का, आधुनिक बिज्ञान के नियमों, सिद्धान्तों एवं उपलब्धियों की दृष्टि से अनुशीलन करते हुए विचार, चिन्तन, मनन या समीक्षा करना जिससे वैज्ञानिक दृष्टि से भी वह ग्राह्य एवं प्रतिपादित हो सके।

१.५. **विज्ञान की शाखाएँ**–विज्ञान को वस्तु–अध्ययन की दृष्टि से दो प्रमुख भेदों में विभक्त किया जा सकता है, प्रथम निर्जीवों का विज्ञान एवं द्वितीय सजीवों का विज्ञान। निर्जीव विज्ञान को हम आगे तीन उपशाखाओं में विभक्त कर सकते हैं–

१–भौतिक विज्ञान–विज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत हम द्रव्य और ऊर्जा तथा उनके परस्पर अदान–प्रदान का अध्ययन करते हैं।

२–रसायन विज्ञान–पदार्थों की रचना तथा उसमें होने वाले परिवर्तनों के अनुसंधान एवं उसके सुव्यवस्थित ज्ञान को रसायन विज्ञान कहते हैं।

३–जलवायु विज्ञान–विज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत हम किसी स्थान की वर्षा, वायु एवं तापमान आदि का क्रमबद्ध, सुगठित एवं सुव्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करते हैं।

इसी प्रकार सजीव विज्ञान को भी दो प्रमुख उपशाखाओं में विभाजित कर सकेते हैं–

१—**चिकित्सा विज्ञान**—विज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत मानव के शरीर का क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करते हुए आधि—व्याधियों के लक्षणों एवं परीक्षणों द्वारा निदान एवं औषधियों या शल्य चिकित्सा द्वारा उनके उपचार का अध्ययन किया जाता है।

२—**जीव विज्ञान**—जीव विज्ञान सजीवों के बारे में वास्तविक अनुभवों, प्रेक्षणों द्वारा उपलब्ध तथ्यों या सत्यों पर आधारित क्रमबद्ध ज्ञान है। इसमें समग्र जीव जगत आ जाता है।

इसके भी आगे चलकर जन्तु विज्ञान एवं वनस्पति विज्ञान दो अन्य उप—भेद हो जाते हैं। यहाँ शोध विषय की दृष्टि से इतने विभेद ही अभिप्रेत हैं।

१.६. विज्ञान का उद्देश्य—यों तो जितनी भी विज्ञान की शाखायें हैं, वे सब अपने अलग—अलग अनेक उद्देश्य रखती प्रतीत होती हैं जैसे भौतिक विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य है प्रमुख भौतिक शक्तियों (ताप, विद्युत, प्रकाश, चुम्बकत्व एवं ध्वनि आदि) का अध्ययन एवं उनके प्रयोग का क्रियान्वयन। इसी प्रकार रसायन विज्ञान का उद्देश्य है पदार्थ और उनकी क्रियाओं का उपयोग जबकि जीव विज्ञान का उद्देश्य है जीवों के बारे में प्रेक्षण एवं परीक्षणों द्वारा तथ्यों पर आधारित ज्ञान और उसका उपयोग करना। विज्ञान की भिन्न-भिन्न सहस्त्रों शाखाएँ उपशाखायें अपने पृथक-पृथक उद्देश्य रखती हैं, किन्तु इन सब पर समग्र रूप से विचार करें तो ज्ञात होगा कि इन सभी शाखा-उपशाखाओं का एक मात्र उद्देश्य है नानत्व में एकत्व की प्रतीति।

जब विज्ञान ननत्व से एकत्व पर आ जाता है तो उसके पश्चात् आगे कोई कृतित्व शेष नहीं रहता। रसायन शास्त्र जिस दिन उस तत्व, जिससे सब तत्वों की रचना हुई है, प्राप्त कर लेगा; उस दिन उसकी क्रियाशीलता भी निःशेष हो जायेगी। भौतिक शास्त्र जिस दिन एक शक्ति को, जिससे समस्त प्रकार की शक्तियाँ या ऊर्जाएँ निकली हैं, खोज लेगा, वहीं अपनी खोज की इति श्री समझ लेगा।[1]

इस प्रकार जीव विज्ञान जिस दिन यह जान लेगा कि जीव के शरीर की रचना में प्राणों का संचार करने वाला एक तत्व क्या है, वह दिन उसकी अन्तिम उपलब्धि का माना जायेगा। अस्तु, बिज्ञान की अन्तिम सीमा है अनेकत्व में एकत्व की स्थापना और एकत्व के अनेकत्व में दर्शन।

१. ७. वैज्ञानिक एवं विज्ञान के तत्व—विज्ञान वेत्ता को वैज्ञानिक की संज्ञा

---

१. वैदिक विचारधारा एवं विज्ञान; डॉ० आनन्द प्रकाश सिन्हा, कैलाश प्रिंटिग वर्क्स, मालीव नगर गोड़ा, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ७।

से अभिहित किया जाता है। हिन्दी शब्द सागर[१] में 'विज्ञानी' के तीन अर्थ दिये हैं–

१–वह जिसे किसी विषय का अच्छा ज्ञान हो।

२–वह जो किसी विज्ञान का अच्छा वेत्ता हो।

३–वह जिसे आत्मा तथा ईश्वर आदि के स्वरूप के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान हो।

इस प्रकार वैज्ञानिक शब्द 'तत्वज्ञ' एवं 'विज्ञान का अच्छा वेत्ता' दोनों ही अर्थ प्रकट करता है।

यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो विज्ञान के निम्नांकित तत्व है–

१–**अनुभव**–इन्द्रियों द्वारा मानव को जो ज्ञान होता है, उसे अनुभव कहा जाता है। यह अनुभव इन्द्रियों[२] द्वारा होता है।

२–**कल्पना**–की वह शक्ति है जो परोक्ष विषयों का रूप, चित्र, कारण आदि सामने ला देती है अर्थात् बुद्धि की वह शक्ति जिसके द्वारा संभावित या असंभावित का अनुभव हो सके। कोई नई बात सोचना भी कल्पना का विषय है।

३–**निरीक्षण**–किसी वस्तु की तत्वान्वेषणी दृष्टि से जाँच पड़ताल करना निरीक्षण कहलाता है।

४–**परीक्षण**–प्रमाणिकता हेतु निरीक्षण द्वारा प्राप्त तथ्यों की परीक्षा करने की क्रिया को परीक्षण कहते हैं।

५–**प्रयोग**–उन परिकल्पनाओं के द्वारा जो सबसे अधिक सही जान पड़ती है, सत्य को सिद्ध या प्रस्तुत करना, प्रयोग कहलाता है।

६–**परिणाम**–परीक्षणोंपरान्त जो तथ्य या निष्कर्ष निकलता है, उसे परिणाम कहते हैं।

७–**नियम**–परिणामों के आधार पर जो सत्य या तथ्य प्रकाश में आता है, वह नियम कहलाता है।

८–**सिद्धान्त**–इन प्रयोगों पर आधारित परिणामों से यदि परिकल्पना का

---

१. हिन्दी शब्द सागर; सम्पा०, डॉ० श्यामसुन्दरदास, काशी नागरी प्रचारणी, सभा, चौथा भाग।

२. मन सहित इन्द्रियों की संख्या (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अर्थात् आँख, कान, जिह्वा, नाक और त्वचा तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ अर्थात् हाथ, पाँव, वाक्, गुदा और उपस्थ) ग्यारह हैं।

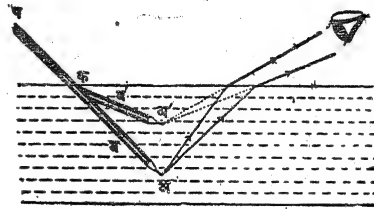
समर्थन होता है, तो वह एक व्यापक कथन या सिद्धान्त बन जाता है ।

९–**परिकल्पना**–तर्क के लिए किसी सम्भावित सत्य की कल्पना कर लेना, परिकल्पना कहलाता है । इसे इस प्रकार भी परिभाषित कर सकते हैं 'सम्भावित सत्य की वह विवेक संगत अटकल जिससे किसी घटना के कारण या कार्य का अनुमान लगता है, परिकल्पना कहलाती है ।

१०–**सत्य**–सत्य ही विज्ञान का प्राण है । यह सर्वव्यापी और श्रेष्ठ होता है । सार्वभौमिकता इसका प्रधान गुण है ।

विज्ञान के उपर्युक्त तथ्यों का स्पष्टीकरण करने के लिएवर्तन नियम[1] का एक उदाहरण ले सकते हैं ।

यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि जल में पड़ी हुई पेंसिल तिरछी दिखाई देती है । (देखिए चित्र–२) यदि इस अनुभव की सत्यता खोजने के लिए कुछ परिकल्पनायें करें । जैसे–



चित्र–२

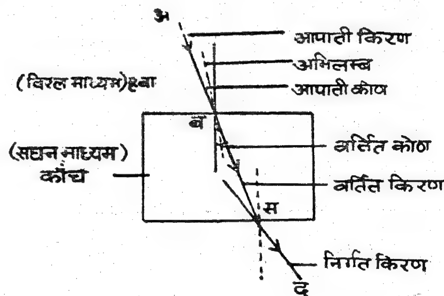
(१) या तो पेंसिल पानी में डालने पर तिरछी और बाहर करने पर सीधी हो जाती है (२) या पानी की किसी विशेषता के कारण ऐसा होता है । (३) या प्रकाश के गुण के कारण ऐसा होता है । (४) या आँखों में ही ऐसा कोई दोष है ।

१–वर्तन का नियम (१) जब प्रकाश की किरण विरल माध्यम से सघन माध्यम में जाती है तो अभिलम्ब की ओर झुक जाती है ।

२–जब सघन माध्यम से विरल माध्यम की ओर जाती है तो अभिलम्ब से दूर हट जाती है ।[१]

३–आपाती, किरण अभिलम्ब तथा वर्तित किरण एक ही तल में होते हैं ।

४–एक ही रंग की किरण के लिए और दिये हुए माध्यम के लिए अपाती कोण के ज्या और वर्तन कोण के ज्या का अनुपात नियत होता है । इस नियतांक को दूसरे माध्यम का (पहले माध्यम की अपेक्षा) वर्तनांक कहते हैं । देखिये चित्र–३



चित्र–३

उक्त परिकल्पनाओं में सर्वाधिक सत्य परिकल्पना की खोज प्रयोगों द्वारा करते हैं। प्रथम तो प्रयोग करके यह निरीक्षण करते हैं कि पेंसिल पानी से डालने पर तिरछी नहीं होती है और न बाहर निकालने पर सीधी होती है इसी प्रकार परि-कल्पना संख्या २ और ४ का भी प्रयोगों द्वारा निरीक्षण एवं परीक्षण करते हैं और उन्हें गलत सिद्ध करते हैं। इसके उपरान्त सर्वाधिक सत्य परिकल्पना संख्या ३ पर प्रयोग करते हुए इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यही परिकल्पना सत्य है। इसी तरह के कई प्रयोग करके हम देखते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि यह घटना प्रकाश के एक नियम, 'वर्तन' के कारण घटती है यही नियम व्यापक कथन बनाकर 'सिद्धान्त' बन जाता है।

१. ८. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण**–किसी वस्तु का क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करके परिकल्पना के सहारे किसी निश्चित सत्य का अन्वेषण कर लेना ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण कहलाता है मूल तत्व के रहस्य को सम्यक प्रकारेण जानना ही वैज्ञानिक का धर्म है। इसी लिए वह किसी विशिष्ट निर्णय की उपलब्धि के निमित्त वैज्ञानिक पद्धति को प्रयोग में लाता है। इसमें पाँच प्रमुख सोपान हैं–

१–समस्या का पहचाना और उसकी ठीक-ठीक व्याख्या करना।

२–प्रारम्भिक प्रेक्षणों तथा पहले से ज्ञात तथ्यों को एकत्र करना।

३–एकत्र ज्ञान के आधार पर कारण की खोज में अनुमान या परिकल्पनाओं का अनुशीलन करना।

४–तत्तपश्चात् उन परिकल्पनाओं में से सर्वाधिक सही जान पड़ने वाली परिकल्पना पर आधारित प्रयोग करना।

५–पुनश्च अन्त में प्रयोगों के परिणामों के आधार पर तर्क संगत निष्कर्ष निकालना।

यदि प्रयोगों पर आधारित परिणामों से परिकल्पना का समर्थन होता है, तो वह एक व्यापक कथन या सिद्धान्त की घोषणा करता है। इस प्रकार सार्वभौमिक सिद्धान्त की प्रार्दुभूति होती है। सिद्धान्त का शाब्दिक अर्थ है जो अन्त तक सिद्ध रहे अर्थात् ऐसी बात जो त्रिकाल में भी मिथ्या न हो सके। इसीलिए विज्ञान उपासनीय कहा गया है। विज्ञान से ही इस लोक और परलोक का रहस्य जाना जा सकता है। विज्ञान साक्षात् ब्रह्म है। यह जानकर विज्ञान की उपासना करना चाहिए।

---

१. विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति इमञ्च
लोकमुखाञ्च विज्ञानं ब्रह्मेति उपासते। ऋग्वेद ७/७/१/२

इस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर तर्क संगत निष्कर्ष निकालने वाले व्यक्ति का दृष्टिकोण वैज्ञानिक दृष्टिकोण माना जाता है ।

१. ९. **विज्ञान एवं शास्त्र**– विज्ञान के दूसरे पथ पर जिसे लौकिक पथ कह सकते है, मुख्यत: दो प्रतिद्वन्द्वी थे एक 'विद्या' और दूसरा 'शास्त्र' । विद्या के यों तो कई आधारों पर कई भेद किये गये हैं किन्तु प्रमुख भेद दो हैं 'परा' और 'अपरा' । इसमें 'परा' का क्षेत्र पारलौकिक है अर्थात् उसमें ब्रह्मज्ञान आदि आता है किन्तु 'अपरा' विद्या का क्षेत्र पूर्णत: लौकिक है और इसमें आयुर्वेद धनुर्वेद आदि १४ या १८ विद्यायें आती हैं । कहना न होगा कि 'अपरा' विद्या, साइन्स के अर्थ में विज्ञान की प्रतिद्वन्द्वी थी ।

इस क्षेत्र में विज्ञान का दूसरा प्रतिद्वन्द्वी था 'शास्त्र' प्राचीन साहित्य में धर्मशस्त्र, नाट्यशास्त्र तथा चिकित्सा शास्त्र आदि रूपों में साइंस के अर्थ में शास्त्र का प्रयोग मिलता है । मूलत: शास्त्र का सम्बन्ध साइंस या विज्ञान से नहीं था और न होना चाहिये, क्योंकि शास्त्र शब्द शास् धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ शासन करना, आज्ञा देना या दण्ड देना आदि होता है, इसीलिए शास्त्र के प्राचीन प्रयोग, नियम 'आज्ञा' आदि, अर्थो में मिलते हैं । भौतिक शास्त्र, राजनीति शास्त्र, भाषा शास्त्र तथा रसायन शास्त्र आदि रूपों में शास्त्र शब्द विज्ञान का प्रतिद्वन्द्वी है । 'भौतिक' 'रसायन' जैसे अन्य शब्दों के सहारे यह किसी प्रकार साइंस का अर्थ देता है, पर केवल साइंस के अर्थ में विज्ञान का प्रतिद्वन्द्वी बनने की इसमें शक्ति नहीं है ।

१. १०. **विज्ञान और साहित्य**– विज्ञान और साहित्य दोनों मानव समाज की महान उपलब्धियाँ हैं । दोनों ने मनुष्य के कल्याण में योगदान किया है । यद्यपि दोनों की मूलत: प्रकृति भिन्न है, किन्तु दोनों एक दूसरे के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं, दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

साहित्य भाषा के माध्यम से रचित वह सौन्दर्य या आकर्षण से युक्त रचना है जिसके अर्थ बोध से सामान्य व्यक्ति को आनन्द की अनुभूति होती है ।

इस प्रकार साहित्य जीवन से भिन्न नहीं है, वरन् वह उसका ही मुखरित रूप है । वह जीवन के महासागर से उठती हुई उच्चतम तरंग है । मानव जाति के भावों, विचारों, संकल्पो की आत्मकथा साहित्य के रूप में प्रसासित होती है । साहित्य जीवन-विटप का मधुमय सुमन है । वह जीवन का चरम विकास है, किन्तु जीवन के बाहर उसका अस्तित्व नहीं । उसमें पाचन, वृद्धि, गति, आदि जीवन की सभी क्रियायें मिलती हैं । अंगी, अंग से भिन्न गुण वाला नहीं होता । इसलिये जीवन की मूल प्रेरणायें ही साहित्य की मूल प्रेरक शक्तियाँ हैं । जो वृत्तियाँ जीवन की और

सब क्रियाओं की मूल स्रोत हैं, वे ही साहित्य को भी जन्म देती हैं ।"[1]

अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ साहित्य शास्त्र में डॉ० रामकुमार वर्मा ने स्पष्ट रूप से लिखा है– साहित्य राष्ट्र की तपस्या है । वह जीवन के अनन्त प्रयोगों की सिद्धि है और समस्त संवेदनाओं का सार रूप है । वह केवल 'आज' का मनोरंजन नहीं है, वरन् 'कल' का संबल भी है । अत: उसमें जीवन का ऐसा परिष्करण या ऊर्जस्वीकरण है जिससे मनुष्य को भविष्य में बल मिल सके ।[2]

साहित्य और विज्ञान की इन परिभाषाओं[3] के अनुसार साहित्य का प्रमुख तत्व सौन्दर्य हैं और विज्ञान का प्रमुख तत्व व्यवस्था एवं क्रमबद्धता । साहित्य का लक्ष्य आनन्द है और विज्ञान का लक्ष्य सत्य या तथ्य से परिचय । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि साहित्य भावना प्रधान है तथा विज्ञान बुद्धि प्रधान । साहित्य व्यक्ति निष्ठ होता है और विज्ञान वस्तुनिष्ठ। इस प्रकार विज्ञान प्रयोग और प्रमाण को प्रधानता देता है और साहित्य अनुभव या अनुभूति को । विज्ञान का मुख्य कार्य किसी तथ्य का विश्लेषण है और साहित्य का है सृजन ।

नि:सन्देह विज्ञान में ज्ञान की प्रधानता है और साहित्य में कल्पना और भावना की प्रमुखता रहती है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि विज्ञान पूर्ण रूप से कल्पना शून्य होता है और साहित्य ज्ञान शून्य होता है । विज्ञान की खोज का प्रारम्भ ही कल्पना से होता है । प्रत्येक विज्ञान में परिकल्पना लेकर चलना पड़ता है । परिकल्पना में यह मान लिया जाता है कि विश्व में नियमितता है, जिसे मनुष्य चाहे तो खोज सकता है । वैज्ञानिक प्रयोगों के द्वारा इस नियमितता की खोज करता है । इस प्रकार वैज्ञानिक अनुसंधान में परिकल्पनायें प्रथम स्थान ग्रहण करती हैं और वैज्ञानिक इन्हीं परिकल्पनाओं को सम्भावित सत्य मानकर आगे बढ़ता है । इसी प्रकार साहित्य केवल भावना या कल्पना नहीं हैं इसका ज्ञान से घनिष्ठ संबंध है । व्यवस्थित विचारों के अभाव में साहित्य का कोई मूल्य नहीं हो सकता । विज्ञान प्रकृति के रहस्यों की खोज करता और साहित्य उन रहस्यों का चित्रण करता है, उन्हें दिशा देता है । विज्ञान जीवन का अध्ययन करता है और साहित्य जीवन को रूपायित करता है । दोनों जीवन और प्रकृति से सम्बन्धित हैं । इसीलिए परस्पर अन्योन्याश्रियता भी हैं । जहाँ यह अन्योन्याश्रयता छिन्न हुई वहीं विज्ञान मानव का संहारक बन जाता है और साहित्य मात्र कल्पना रहकर मानवता का उन्मूलक ।

---

१. सिद्धान्त और अध्ययन, डॉ० गुलाबराय, पृ० ४० ।

२. साहित्य शास्त्र, डॉ० रामकुमार वर्मा, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० सं० १९६८, पृ० ११ ।

३. अध्याय–१ का १.४ ।

१. ११. **मानस एवं विज्ञान**– आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में मानस अध्ययन के लिये यह अपेक्षित है कि ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित शब्दों के सम्बन्ध में मानस की मान्यता से परिचित हुआ जाय। अवलोकनीय है, विज्ञान, और विज्ञानी की मानस में आवृत्ति और अर्थ-सत्ता।

विज्ञानौ १ बार, विज्ञान २ बार, बिग्यान १९, बार बिग्याना ९ बार, बिग्यानी ९ बार तथा बिग्यान कर, बिग्यान धन, बिग्यानमय, बिग्यान रूप, बिग्यान रूपिणी, बिग्यानधाम का प्रयोग एक एक बार किया गया है।[1]

मानस में इन शब्दों का अर्थ परिवर्तन विशेष रूप से अवलोकनीय है।

सुक सनकादिभगत मुनि नारद।
जे मुनिबर बिग्यान बिसारद।१।१७।३

की व्याख्या करते हुए मानस पीयूष[2] में कहा गया है कि विज्ञान वह अवस्था है जिससे आत्म वृत्ति परमात्मा में लीन हो जाती है। सब में समता भाव हो जाता है, तीनों गुणों एवं तीनों अवस्थाओं से परे तुरीयावस्था आ जाती है। जीव परमानन्द में मग्न रहता है। सारा जगत ब्रह्ममय दिखाई देता है।

---

१. मानस शब्द सागर-बद्रीदास अग्रवाल, प्रकाशक काशीप्रसाद १९५५ कलकत्ता–६ में दिये गये आवृत्ति संदर्भ।

विज्ञानौ– १।श्लोक ४
विज्ञान– ४। श्लोक १, ७।१३०। श्लोक २
बिग्यान– १।१७।५, १।३६।९, १।११०।१–२, १।११५।६
१।१६०।१, १।१७५।५
२।१५६, ३।१३८क, ३।४४।४, ४।२९।४, ६।७९।८
७।४८।७, ७।५३, ७।७१।३, ७।८४।७, ७।८९।३
७।९३।२, ७।११७।१३
बिग्याना– १।८३।७, ३।१०।२६, ३।१५।३, ३।४५।५
७।३०।७, ७।८३।१, ७।९४।५, ७।१०३।२
७।११४।५
बिग्यानी– १।८९।१, १।२३६।३, ७।४५।३, ७।५३।३
७।१०२।१, ७।१२०।१, ७।११०।छ.१, ७।११५।४
७।१२३।३
अन्य– ६।१२०।छ. २, ३।३१।छ. २, ७।११७घ
७।१२२।४, ७।११७.ख, ४। श्लोक १

२. मानस पीयूष, खण्ड–१, अंजनी नन्दन शरण पृ० २७९

धरम अरथ कामादिक चारी ।
कहब ग्यान बिग्यान बिचारी ॥ १।३६।५

की व्याख्या करते हुए विज्ञान का अर्थ दिया गया है हृदय में पड़ी हुई जड़-चेतन की ग्रन्थियों का छूटना ।[1]

श्री सूर्यप्रसाद मिश्र ने अनुभव को विज्ञान कहा है । वे ज्ञान-विज्ञान को पृथक्-पृथक् नहीं मानते ।[2]

'ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना । धीरज धरम ग्यान बिग्याना ।'[3] की व्याख्या करते हुए आध्यात्मिक ज्ञान को विज्ञान कहा गया है ।[4]

अन्यत्र सर्वात्मभाव को विज्ञान कहा गया है ।[5]

शास्त्रजन्य ज्ञान का अभ्यास करते-करते अखण्ड ज्ञान के अनुभव को भी विज्ञान कहा गया है ।[6]

बिनु बिग्यान कि समता आवइ ।
कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ ॥ मानस ७।८९ख।२

के अनुसार, विज्ञान होने पर जीव सबको ब्रह्म रूप में देखने लगता है अथवा अपनी ही आत्मा को सबमें और सबमें अपने को ही देखता है । उसकी दृष्टि में दूसरा रह ही नहीं जाता । इसी से विषम भाव कहीं नहीं रह जाता । सबमें समभाव हो जाता है ।[7] इसी सन्दर्भ में अधोलिखित दोहा भी अवलोकनीय है ।

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहि जगत–केहि सन करहि बिरोध । ७।११२ ख

अन्यत्र[8] योग साधना से विशेष ज्ञान प्राप्त कर ईश्वर का ध्यान करना ही विज्ञान कहा गया है ।

१– मानस पीयूष खण्ड १, अंजनी नन्दन शरण, प्रकाशक मोतीलाल जालान, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० ५६१ ।
२– वही पीयूष सप्तम सं० सं० २०२५ पृ० ५५८ ।
३– मानस १।८३।४।
४– मसस पीयूष खण्ड २, पंचम संस्करण सं० २०२४ पृ० २८२ ।
५– मानस पीयूष खण्ड ५, पृ० ३६२ ।
६– मानस पीयूष खण्ड ७, पंचम संस्करण, सं० २०३०, पृ० २७४ ।
७– मानस पीयूष खण्ड ७, पृ० ४५०–५१
८– मानस पीयूष, खण्ड–७, पृ० ४५०–५१ पर,

सुद्ध सत्व समता बिग्याना ।
कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ॥ ७।१०३।१ की व्याख्या

इस तरह से व्याख्याकारों ने मानस में प्रयुक्त 'बिग्यान' शब्द के, भिन्न-भिन्न स्थलों पर, भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं । कहीं ब्रह्मज्ञान कहीं, आध्यात्म ज्ञान, कहीं अनुभव तो कहीं तत्वज्ञान ।

किन्तु जब उपर्युक्त चौपाइयों पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हैं तो स्पष्ट पता चलता है कि विज्ञान का अन्तिम उद्देश्य नानात्व में एकत्व प्राप्त करना ही है क्योंकि विज्ञान एक ही तत्व की दृष्टि से जड़–चेतन की व्याख्या कर रहा है ।

यदि मानस में प्रयुक्त इकतीस बार 'बिग्यान' और १५ बार 'बिग्यानी' शब्दों का एक ही अर्थ 'विशेष ज्ञान, या विशेष ज्ञान वाला, किया जाय तो किसी भी अर्थ में व्यवधान नहीं पड़ता और यह अर्थ विज्ञान की परिभाषा के अनुकूल भी पड़ता है ।

मानस के कई ऋषि और मुनि आधुनिक विज्ञान से साम्य रखने वाले ज्ञान-विज्ञान के वेत्ता थे । तथा इनकी विज्ञान में विशेष गति थी जैसे श्रृंगी ऋषि, विश्वामित्र एवं अगस्त्य आदि । अतएव इनको वैज्ञानिक कहा जाना किसी प्रकार असंगत न था ।

करि भोजन मुनिवर बिग्यानीं ।
लगे कहन कछु कथा पुरानी ॥ १।२३६।३

यहाँ 'बिग्यानी' आधुनिक विज्ञान के अर्थ को व्यक्त करने में पूर्ण रूपेण सक्षम है ।

राम–लक्ष्मण ने वशिष्ठ के पश्चात् प्रमुख रूप से विश्वामित्र, अगस्त्य आदि से युद्ध विज्ञान की शिक्षा पाई थी जो आधुनिक विज्ञान के अर्थ को ध्वनित करती है । इसीलिए तुलसी ने राम एवं लक्ष्मण को 'विज्ञान' का 'धाम' कहा है यथा–

'कुन्देदीवर सुन्दरावति बलौ-विज्ञानधामावुभौ' ।
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौगोविप्रवृन्दप्रियौ ।
मायामानुष रूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ ।
सीतान्वेषण तत्परौ पथिगतौ भक्ति प्रदौ तौ हि नः । मानस–४ श्लोक १

इसी प्रकार जटायु और नारद भी राम को विज्ञान की घन मूर्ति और विज्ञान विशारद कहते हैं ।

'गोविंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनी धर ॥ ३।३१।छ०–२

तथा

पुनि सादर बोले मुनि नारद ।
सुनहु राम बिग्यान विसारद । ३।४४।२

भुशुंडि जी भी राम को 'बिग्यान रूप' कहते हैं—

सोइ सच्चिदानंद घन रामा।
अज बिग्यान रूप बल धामा ।। ७।७१।२

हनुमान आकाश मार्ग से गमन कर सकते हैं, समुद्र लांघ सकते हैं। अतएव उन्हें जामवन्त 'बिग्यान' की खान कहते हैं। और तुलसी विशुद्ध विज्ञान सम्पन्न कहकर वंदना करते हैं।

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना।
का चुप साधि रहेहु बलवाना ।।
पवन तनय बल पवन समाना।
बुधि बिबेक बिग्यान निधाना ।। ४।२९।२

तथा

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
बन्दे बिशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ।। १ श्लोक–४

इसी प्रकार जब विभीषण रावण की नाभि के पीयूष कुण्ड जैसे वैज्ञानिक रहस्य को उद्घाटित करता है तो उसे वैज्ञानिक रहस्य के वेत्ता कहने में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ?

'नाम बिभीषन जेहि जग जाना।
विष्नु भगत बिग्यान निधाना ।।' १।१७५।३

तुलसी के 'बिग्यान' और 'बैग्यानिक' शब्द, आधुनिक विज्ञान और वैज्ञानिक का अर्थ देने के साथ अपने अन्य अर्थों, तत्वज्ञान, ब्रह्म ज्ञान, अनुभव, परमात्मज्ञान एवं इनके वेत्ता, को भी बड़ी सशक्तता से ध्वनित करते हैं। इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए आधुनिक प्रचलित शब्द विज्ञान और तुलसी द्वारा प्रयुक्त बिग्यान, में मात्र रूप भेद माना गया है। उच्चारण एवं अर्थ भेद नहीं।[1] इस प्रकार साहित्यकार के मानस में वैज्ञानिक और वैज्ञानिक के मानस में साहित्यकार बैठा ही रहता है।

निश्चय ही तुलसीदास जी आधुनिक 'विज्ञान' शब्द की ही व्याख्या करते हैं तथा इस प्रकार तुलसी का 'बिग्यान' या 'बिग्यानी' आधुनिक विज्ञान और वैज्ञानिक का पर्याय कहा जा सकता है। साथ ही बिज्ञानी शब्द को तुलसीदास जी साहित्य से प्रतिबंधित करना भी नहीं भूलते। राम, काकभुशुंडि जी को अपना सिद्धान्त सुनाते हुए विज्ञानी को अपना सर्वप्रिय भक्त घोषित करते हैं।

---

१. मानस वाग्वैभव, डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन' पृ० १९३–१९४।

"सब मम प्रिय सब मम उपजाए।
सबते अधिक मनुजमोहि भाए ॥
तिन्ह महुँ द्विज द्विज महुँ श्रुतिधारी ।
तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी ॥
तिन्हमहँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी ॥
ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी। ७।८५।३

वे विज्ञानी को सर्वज्ञ, तत्त्वज्ञ, पण्डित और गुणज्ञ से भिन्न कहते हैं–

सोइ सर्वग्य तग्य सोइ पंडित।
सोइ गुन गृह बिग्यान अखडित ॥ ७।४८।४

१.१२. **मानस में वैज्ञानिक तथ्य एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण**–(१) सत्य–श्री सीताराम सत्य हैं। उनकी कथा कहना, उनका यशगान करना 'सत्य' की व्याख्या करना है–

सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें ॥ १।८।६

–श्री सीतारामीय बाबा हरिहर प्रसाद जी कृत 'रामायणपरिचर्या परिशिष्ट प्रकाश' सं० १९५५ के अनुसार इस अर्द्धाली का अर्थ है–'सत्य जो श्री सीताराम जी हैं उनका यश कोरे क़ागज पर लिखता हूँ।'

तुलसी ने मानस में सत्य को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म भी घोषित किया है। वे राम के माध्यम द्वारा सुमंत्र से कहते है–

"धरमु न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बखाना। २।९४।३

नि:सन्देह सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। वेद शास्त्र और पुराणों में भी इसकी महिमा का वर्णन किया गया है। इसी सत्य के महत्व का प्रतिपादन तुलसी ने राजा दशरथ से कैकेयी के वरदान प्रकरण में कराया है–

सत्य मूल सब सुकृत सुहाए।
बेद पुरान बिदित मनु गाए ।। २।२७।३

वास्तव में सत्य ही समस्त उत्तम, सुन्दर एवं सुकृतों की जड़ है।

यहीं पर महाराज दशरथ असत्य की नि:सारता घोषित करते हुए कहते हैं–

नहिं असत्य सम पातक पुंजा।
गिरि सम होंहि किकोटिक गुंजा ।।२।२७।३

अस्तु, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तुलसी मानस में वैज्ञानिक तथ्य 'सत्य' को अत्यधिक महत्व देते हुए उसे स्वीकार करते हैं।

२–**परिकल्पना**–तुलसी राम के ईश्वरत्व की खोज के लिए दो परिकल्पनायें सती के माध्यम से कराते है, वे हैं–

१–क्या राम नर है ?

२–क्या राम नारायण हैं ?

सती के मन में राम के प्रति यह दोनों परिकल्पनायें होती हैं किन्तु यहाँ तुरन्त ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं होता कि वह इसका निर्णय कर सके ।

"अस संसय मन भयेऊ अपारा ।
होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा ।। १।५०।२

उपर्युक्त दोनों परिकल्पनाओं के सम्बन्ध में वे लिखते हैं–

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज, अमल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद ।। १।५०

विष्नु जो सुर हित नर तनु धारी ।
सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ।।
खोजइ सो कि अग्य इव नारी ।
ग्यान धाम श्रीपति असुरारी ।। १।५०।१

इसी प्रकार इन्हीं सन्देहात्मक परिकल्पनाओं को भरद्वाज ऋषि परम ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनि के सामने प्रस्तुत करते है ।

नाथ एक संसउ बड़ मोरे ।
करगत बेद तत्त्व सब तोरे । १।४४।४

तथा

सोयि राम महिमा मुनिराया ।
सिव उपदेस करत करि दाया ।।
राम कवन प्रभु पूछउँ तोही ।
कहिय बुझाइ कृपानिधि मोही ।।
एक राम अवधेश कुमारा ।
तिन्ह कर चरित बिदित संसारा ।।
नारि बिरहँ दुख लहेउ अपारा ।
भयउ रोषु रन रावनु मारा ।। १।४५।४

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि ।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि ।। १।४६

इसी प्रकार का प्रश्न हनुमान राम से स्वयं पूछते हैं–

की तुम तीनि देव महँ कोऊ ।
नर-नारायन की तुम्ह दोऊ ।। ४।०।५

३–निरीक्षण एवं परीक्षण–यद्यपि शिव जी ने निर्गुण ब्रह्म के सगुण अवतार राम पर अपना निर्णय दिया कि वे नारायण हैं किन्तु सती के सन्देह को दूर करने के लिए (परिकल्पनाओं की सत्यता के लिए) उन्हें निरीक्षण और परीक्षण करने को कहते हैं–

जौं तुम्हरे मन अति संदेहू ।
तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥ १।५१।२
जैसें जाइ मोह भ्रम भारी ।
करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी ॥ १।५१।२

और सती अपनी परिकल्पनाओं का निरीक्षण और परीक्षण करने के लिए प्रस्थान करती हैं–

चलीं सती सिव आयसु पाई ।
करहिं बिचारु करौं का भाई । १।५१।२

सती द्वारा परीक्षण इस प्रकार सम्पन्न होता है–

पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि, धरि सीता कर रूप ।
आगें होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नर भूप ॥ १।५२

इस परीक्षण में लक्ष्मण तो सीता समझ कर आश्चर्य चकित हो गए किन्तु राम ने सती को प्रणाम कर पिता समेत अपना नाम बताया और जैसे ही राम ने कहा कि बृषकेतु, शिव जी कहाँ हैं ? आप यहाँ वन में अकेली किस लिए फिर रही हैं ? इसी प्रश्न के साथ परीक्षा पूरी हो जाती है । राम के उक्त गूढ़ वचनों को सुनकर सती शिव जी के पास भय सहित प्रस्थान करती हैं ।

लछिमन दीख उमा कृत बेषा ।
चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा ॥ १।५२।१
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू ।
पिता समेत लीन्ह निज नामू । १।५२।४
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू ।
बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू । १।५२।४

राम बचन मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति संकोच ।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदय बड़ सोच ॥ १।५३

४–परिणाम– इस परीक्षण के उपरान्त परिणाम यह निकलता है कि राम को सर्वव्यापक रूप में देखकर जब सती शिव जी के पास पहुँचती हैं तो वह भय के कारण शंकर जी के पूछने पर भी राम के प्रभाव को समझ कर परीक्षण विधि नहीं बताती हैं और शिव जी द्वारा बताये गये राम के स्वरूप को ही स्वीकार कर लेती हैं । यथा–

सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ।
भयबस सिव सन कीन्ह दुराऊ ।।
कछु न परीछा लीन्ह गुसाईं ।
कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं ।। १।५५।१

इस परिणाम का पुन: प्रयोग एवं परीक्षण राम कथा की प्रस्तुति में होता है और तब कहीं सती तथ्य की सैद्धान्तिक सत्यता एवं प्रामाणिकता से संतुष्ट होती है–

"सुनि सब कथा हृदय अति भाई ।
गिरिजा बोली गिरा सुहाई ।। ७।१२७।४
नाथ कृपाँ मम गत संदेहा ।
राम चरन उपजेउ नव नेहा ।। ७।१२७।४

सती की संतुष्टि जन मानस की संतुष्टि है । यही कारण है कि तुलसी के राम 'नर' नहीं नारायण' हो गये हैं, और नारायण के रूप में अवतार हैं, आराध्य हैं ।

मानस की यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण आधृत सिद्धि ही उसकी विश्व व्यापी प्रसिद्धि का कारण है ।

अध्याय २

मानस में व्यक्त संस्कृति एवं समाज का वैज्ञानिक स्वरूप

२. ०. **संस्कृति और समाज**–किसी देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का मूलाधार शिक्षा है। शिक्षा समाज और संस्कृति को जहाँ प्रभावित करती है वहाँ साथ ही साथ वह भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। निःसन्देह संस्कृति समाज का वह स्वच्छ दर्पण है जिसमें राष्ट्र का युगीन वातावरण, परिवेश एवं तत्कालीन साहित्यिक विधाओं का समुच्चय और अतीत प्रतिबिम्बित हो उठता है।

भारतीय संस्कृति का जो साधना पक्ष है, तप उसका प्राण है। तप का तात्पर्य है तत्व के साक्षात् दर्शन करने का सच्चा प्रयत्न। जो कही-सुनी बात हो उसका स्वयं अनुभव करना तप है। तप हमारी संस्कृति का मेरुदण्ड है। तप की शक्ति के बिना भारतीय संस्कृति में जो कुछ ज्ञान है, वह फीका रह जाता है। तप से ही यहाँ का चिन्तन सशक्त और रसमय बना है।[1]

व्यक्ति का समष्टि रूप समाज है। समाज और संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज के उन्नयन के लिए क्रान्ति अपेक्षित होती है। सुश्री महादेवी वर्मा के मतानुसार क्रान्ति युग की प्रवर्तिका है अवश्य, परन्तु उसका कार्य प्रवाह को एक दिशा से रोककर दूसरी में ले जाने के समान है। इसी से उसे पहले लिखा हुआ मिटाना पड़ता है। सीखा हुआ भुलाना पड़ता है और बसा हुआ उजाड़ना पड़ता है। इसीलिए सुव्यवस्थित समाज विकास मार्ग में रुक-रुक कर अपने गन्तव्य और दिशा की परीक्षा करना आवश्यक समझते हैं।[2]

---

१. साहित्यिक निबन्ध संग्रह-सम्पा० डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७४, में पृ० ९६ पर श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, के लेख 'भारतीय कला का अनुशीलन' से उद्धृत।

२. वही, पृ० १२४ पर, लेख 'समाज और व्यक्ति' से उद्धृत।

समाज में ही संस्कृति का स्वरूप मुखरित होता है। संस्कृति समाज सापेक्ष है। डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम' के अनुसार–'संस्कृति इस प्रकार विचार तथा कर्म दोनों क्षेत्रों को सींचती तथा पल्लवित करती रहती है। विचार और कर्म ही ऐसे साधन है जो या तो हमें कल्याण की ओर अग्रसर कर दें या निष्कृति की मध्यधारा में डुबो दें। सुसंस्कृत व्यक्ति के विचार तथा आचरण में एकता होती है। असंस्कृत मानव की कथनी-करनी में वैषम्य रहता है।[1]

प्राचीन कालीन तपोवनो में व्यक्ति श्रम का उपासक बनकर तत्वदर्शी गुरुओं के सम्यक् निर्देशन में अपने व्यक्तित्व का निखार करता था, जिससे समाज की सर्वागींण उन्नति संभव होती थी। इस प्रकार जाति, समाज और संस्कृति की त्रिवेणी मिलकर समग्र मानव जाति को अपने अभीष्ट लक्ष्य की ओर ले जाने में सहायक बनी।

२. १. **संस्कृति के प्रेरक स्थल आश्रम**–किसी देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का मूलाधार शिक्षा है। सांस्कृतिक विकास के लिए यदि हम अपने देश की प्राचीन शिक्षा प्रणाली पर विचार करें तो विदित हो जाता है कि प्राचीन समय में आश्रम ही शिक्षा के केन्द्र थे। यह आश्रम राष्ट्र के कोने-कोने में स्थित थे। हमारे प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के केन्द्र तथा हमारी सुदृढ़ शिक्षा व्यवस्था के प्रमाण स्वरूप यह आश्रम विशेष रूप से उल्लेखनीय एवं स्मरणीय हैं।

मानस में शिक्षा की ज्योति प्रज्ज्वलित करने वाले इन्हीं आश्रमों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है जहाँ राम ने ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की थी।

इन आश्रमों के अधिष्ठाता ऋषि और मुनि थे। इन आश्रमों के नाम उनके प्रमुख आचार्यों के नाम पर ही थे। मानस में जिन आश्रमों का संकेत दिया गया है, वह निम्नांकित हैं–

२. १. १. **श्रृंग ऋषि आश्रम**–यह विहार में कौशिकी नदी के तट पर स्थित भागलपुर जिले के सिंहेश्वर स्थान के समीप था। रामायण[2] और महाभारत[3] में

---

१. साहित्यिक निबन्ध संग्रह–पृ० १३४ पर, लेख 'संस्कृति और साहित्य एवं कला' से उद्धृत।

२. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण, प्रथम भाग, प्र० सं० सं० २०१७ मुद्रक तथा प्रकाशक, हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस गोरखपुर, बा० का० सर्ग ९, १०, ११ एवं १२।

३. महाभारत, वनपर्व अध्याय–१११।

इसका संक्षिप्त वर्णन मिलता है। शृंग ऋषि विभाण्डक मुनि के पुत्र थे। रोम पाद की पुत्री शान्ता उनकी पत्नी थी। महाराज दशरथ के लिए इन्होंने पुत्रेष्ठि यज्ञ किया था और ऐसी औषधि तथा रीति प्रस्तुत की थी जिसके सेवन से दशरथ की रानियों को चार पुत्र राम-लक्ष्मण-भरत तथा शत्रुघ्न प्राप्त हुए। ये अपने युग के महान आचार्य थे। चिकित्सा शास्त्र में इनका अद्भुत प्रवेश था। महाभारत काल में भी इस आश्रम की व्यवस्था ठीक थी। युधिष्ठिर बनवास काल में लोमस के साथ इस आश्रम पर पधारे थे। आश्रम में दस हजार छात्र सभोज, सवस्त्र एवं निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते थे।[1]

तुलसी के मानस में शृंगी ऋषि के आश्रम का विवरण तो नहीं दिया गया है किन्तु उनके पुत्र प्राप्ति के योग की चर्चा अवश्य है।

एक बार राजा दशरथ के मन में ग्लानि उत्पन्न हुई कि मेरे पुत्र नहीं है। राजा तुरन्त ही गुरु वशिष्ठ के घर गए और विनय पूर्वक अपने मन की वेदना उन्हें सुनाई। गुरु ने तत्कालीन चिकित्सा शास्त्र के विद्वान् ऋषि शृंग को बुलवा कर पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाया।

शृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा।
पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥ १/१८८/३

शृंगी ऋषि ने अपनी औषधि और रीति की पूर्ण सफलता का विश्वास करते हुए दशरथ से कहा कि गुरु वशिष्ठ द्वारा दिया गया आश्वासन पूर्ण होगा। वे कहते हैं–

धरहु धीर होइहहिं सुत चारी।
त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी॥ १/१८८/२

अपने अनुभूत प्रयोग एवं सुप्रसिद्ध औषधि के विधि विधान तथा परिणाम पर उन्हें अशेष विश्वास था इसीलिए उन्होंने कहा–

जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा।
सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥ १/१८८/४

यज्ञोपरांत पायस-प्रयोग से बंध्यता दूर हुई और तीनों रानियों ने चार पुत्रों को जन्म दिया।

इस प्रकार इस आश्रम का उस युग में विशेष योगदान रहा। यह आश्रम शैक्षिक गतिविधियों के साथ-साथ जन कल्याण तथा आध्यात्मिक ज्ञान का भी केन्द्र था।

---

१. प्राचीन भारत की सांग्रामिकता ले० पं० रामदीन पाण्डेय, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, प्र० सं० सं० २०१४, पृ० ३६।

२. १. २. **विश्वामित्र आश्रम**–यह आश्रम वर्तमान बिहार राज्यान्तर्गत प्राचीन मलद प्रदेश में (आधुनिक बकसर के समीप) अवस्थित था। इसे हम समरशास्त्र का महान आश्रम कह सकते हैं। यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। अस्त्र-शस्त्र एवं अनेक प्रकार के आयुधों का निर्माण भी कराया जाता था। इस प्रकार यह आर्य सभ्यता का पूर्वी केन्द्र था। रावण जैसे महाप्रतापी सम्राट को इस महाश्रम से बड़ा भय बना रहता था। उसने एक बड़ी छावनी यहाँ बना रखी थी जिसकी देख रेख मारीच सुबाहु तथा ताड़का आदि करते थे। करुष मलद की महिलायें भी बड़ी बहादुर होती थीं। उनकी शक्ति को रोकने के लिए ताड़का थी। राम को विश्वामित्र ने यहीं सैनिक शिक्षा दी थी। उन दिनों बिहार राज्य के अन्तर्गत अंग, (आधुनिक भागलपुर) मगध, मिथिला, मलद करुष (शाहाबाद) मल्ल (हजारीबाग, मानभूमि) आदि भू-भाग परिगणित किये जाते थे।[1]

यहीं मलद करुष सुन्द नामक राक्षस ने लूट-खसोट मचाना आरम्भ किया था। अगस्त्य मुनि ने लोगों की प्रार्थना पर सुन्द को मार गिराया। इसके पश्चात् अगस्त्य दक्षिण दिशा को चले गये तो सुन्द की भार्या ताड़का ने जो यक्ष कन्या थी, अपने पुत्रों मारीच एवं सुबाहु को साथ लेकर फिर उस प्रदेश पर अधिकार जमा लिया।[2]

इसे पहले सिद्धाश्रम के नाम से जाना जाता था। राजर्षि विश्वामित्र महर्षि होने पर देश की विषम राजनीतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर जब राम और लक्ष्मण को अयोध्या से इस आश्रम में लाये तो उन्हें बला और अतिबला नामक मंत्रों की सिद्धि कराई जिससे कभी श्रम (थकावट) का अनुभव न हो, ज्वर (रोग या चिन्ता जनित कष्ट) न हो, रूप में किसी प्रकार का विकार न हो, असावधानी की अवस्था में राक्षस आक्रमण न कर सकें, बाहुबल में कोई समानता न कर सके तथा भूख-प्यास आदि का भी कष्ट न हो और अनेक प्रकार के अन्य लाभ हों।[3]

विश्वामित्र द्वारा राम को प्रदत्त विद्याओं का वर्णन करते हुए तुलसी ने मानस में लिखा है–

तब रिषि निज नाथहिं जियँ चीन्ही।
विद्या निधि कहुँ विद्या दीन्हीं॥

---

१. प्राचीन भारत की सांग्रामिकता, पृ० ३६।
२. धनुर्धारी राम ले० प० मुलकराज शर्मा आनन्द, प्रथम संस्करण, ऋषि सभा– पृ० ६२।
३. बा० रा० बा० का०, सर्ग २२, श्लोक १३ से २१ तक।



जातैं लाग न छुधा पिपासा ।
अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ।। १/२०८/४

ताड़का-वध[1] से गुरुदेव विश्वामित्र राम से बहुत अधिक सन्तुष्ट हुए । राम को सब प्रकार से योग्य एवं सुपात्र समझकर उन्हें अपने सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्र[2] सौप दिये तथा उनकी प्रयोग विधि भी सविस्तार बतला दी ।[3]

इन अस्त्रों से शत्रु को रणभूमि में बलपूर्वक अपने आधीन करके उस पर विजय पाई जा सकती थी । इनके अतिरिक्त सत्यवान, सत्यकीर्ति आदि उन्नचास[4] अस्त्र भी विश्वामित्र ने राम को प्रदान किए ।

उक्त शास्त्राओं को ही तुलसी ने 'आयुध सर्ब' की संज्ञा से अभिहित किया है–

आयुध सर्ब समर्पि कै, प्रभु निज आश्रम आनि ।
कन्द मूल फल भोजन, दीन्ह भगति हित जानि ।। १/२०९

२. १. ३. **गौतम ऋषि आश्रम**–यह आश्रम मिथिला के उपवन में पड़ता था । रामायण युग में इसकी स्थिति अच्छी न थी । सम्भवत: सीरध्वज जनक के आश्रम ने इस आश्रय की प्रसिद्धि न्यून कर दी थी ।[5] यह आश्रम सम्भव है, तिरहुत में कमतोल स्टेशन के पास हो, जहाँ श्री रामा पण्डित ने अहल्या आश्रम बनावा है

---

१. चले जात मुनि दीन्हि देखाई ।
सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।।
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा ।
दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ।। १/२०८/३

२. दण्ड चक्र, कालचक्र, विष्णु चक्र, ऐन्द्र चक्र, बज्रास्त्र, त्रिशूल, ब्रह्मशर, धर्म चक्र, एषीकास्त्र, ब्रह्मास्त्र, मोदकी और शिखरी गदाएँ, धर्मपाश, कालपाश, वरुण पाश, अशनि, पिनाक एवं नारायणाशास्त्र, आग्नेय अस्त्र या शिखशस्त्र, वायव्यास्त्र, हमशिरा, कौन्व-अस्त्र कंङ्कल, धोर मूसल, कपाल, किङ्किणी, खड्ग, सम्मोहन, प्रस्वायन, प्रशमन, सौम्य अस्त्र, वर्षण, शोषण, संतापन, विलायन, मादन, मानवास्त्र, मोहनास्त्र, तामस, महाबली सौमन, संवर्तक, दुर्जय, मौसल और माया मय उत्तम अस्त्र, तेज:प्रभ, शिशिर दारुण अस्त्र, भयंकर, शीतेषु अस्त्र ।
वा०रा०, बा०का०, सर्ग २७, श्लो० ४ से २२ तक ।

३. वा०रा०, बा०का०, सर्ग २७–२८ ।

४. वा०रा०, बा०का०, सर्ग २८ श्लोक ४ से १० तक ।

५. प्राचीन भारत की सांग्रामिकता, पृ० ३६ ।

अथवा सिद्धाश्रम से पूर्व अहिरौली ग्राम में या उसके निकट[1] रहा हो । इस आश्रम की दशा अच्छी नहीं थी, इस तथ्य को तुलसी ने भी स्वीकार किया है ।

आश्रम एक दीख मग माहीं ।
खग-मृग-जीव-जन्तु तहँ नाहीं ।। १/२०९/६

इस आश्रम पर पहुँचकर राम ने अहल्या का उद्धार अवश्य किया था किन्तु यहाँ से उनको किसी ज्ञान की उपलब्धि नहीं हुई ।

इसके अतिरिक्त जनक राज्य का आश्रम भी बिहार में प्रसिद्ध था जिसकी प्रसिद्धि ब्रह्म विद्या के कारण अधिक थी । यहीं पर याज्ञवल्क्य, शुक आदि आचार्य जीवन की जटिल गुत्थियों को सुलझाते थे और जीवन मरण की समस्याओं का समाधान तथा ज्ञान विज्ञान की बातें किया करते थे । यह अन्वेषण संस्था थी ।[2] इसी संस्था (आश्रम) से याज्ञवल्क्य मुनि प्रयाग में भरद्वाज आश्रम पर आए थे, और मकर भर स्नान करके उनकी शंकाओं का उन्होंने समाधान किया था ।

एक बार भरि मकर नहाए ।
सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए ।।
जागबलिक मुनि परम बिबेकी ।
भरद्वाज राखे पद टेकी ।। १/४४/२

याज्ञवल्क्य मुनि वेदज्ञ एवं तत्वों के ज्ञाता थे । भरद्वाज जी अपनी शंका निवारण के लिए उनसे प्रार्थना करते हैं तथा उन्हें युग का वेदज्ञ स्वीकार करते हैं–

नाथ एक संसउ बड़ मोरे ।
करगत बेद तत्व सब तोरे ।। १/४४/४

२. १. ४. **भरद्वाज आश्रम**–इलहाबाद में आनन्द भवन के समीप ही भरद्वाज आश्रम था । डॉ० विमल चरण लाहा[3] ने इसकी स्थिति गंगा यमुना के संगम पर स्वीकार की है । रामायण[4] युग में यह विश्वविद्यालय था । यहाँ सभी प्रकार की

---

१. मानस पीयूष, खण्ड ३, अंजनीनन्दन शरण, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० चतु० सं० २०१८ पृ० १४९ ।

२. प्राचीन भारत की सांप्रमिकता, पृ० ३६ ।

३. प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल डॉ० विमल चरण लाहा अनुवादक रामकृष्ण द्विवेदी, प्र० सं०, पृ० १२१ ।

४. वा० रा०, अयो० का०, अध्याय ५४, श्लोक ९ ।

शिक्षा दी जाती थी। सैनिक शिक्षा की प्रसिद्धि के लिए यह अद्वितीय था।

भरद्वाज आश्रम में एक बड़ा उववन था। अनेक उटज थे जहाँ वृक्षों की भरमार थी। आश्रम में जलाशयों की कमी न थी। अनेक भवन थे। नील वैदूर्य-मणि की भाँति हरी-हरी घास से आश्रम की समतल भूमि आछन्न थी। इसका विस्तार ४० मील का था। बेल, कपित्थ, कटहल, नीबू और आम के पेड़ फलों से संचित थें। हाथी और घोड़ों के रहुने के लिए भी स्वच्छ शुभ्र चार-चार कमरों की शालायें बनी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि सैनिक शिक्षा के उद्देश्य से ही यह आश्रम वना था।[१] इस आश्रम का वर्णन करते हुए तुलसी ने लिखा है–

भरद्वाज आश्रम अति पावन ।
परम रम्य मुनिवर मनभावन ।। १/४३/३

मुनि भरद्वाज इस आश्रम के प्रमुख अधिष्ठाता थे। वह परम तपस्वी, जितेन्द्रिय, दया के निघान और परमार्थ मार्ग के योग्य एवं यशस्वी साधक थे। उन्हें राम से अत्यधिक अनुराग था।

भरद्वाज मुनि बसहि प्रयागा ।
तिन्हहि राम पद अति अनुरागा ।।
तापस सम दम दया निधाना।
परमारथ पथ परम सुजाना ।। १/४३/१

राम इस आश्रम में भरद्वाज मुनि के पास ज्ञान एवं आशीर्वाद प्राप्त करने आये थे–

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए ।
करत दंडवत मुनि उर लाए ।।
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई।
ब्रह्मानंद रासिजनु पाई ।। २/१०५/४

यहाँ राम को ज्ञान और आशीर्वाद प्राप्त हुआ–

दीन्हि असीस मुनीस उर, अति आनंदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ बिधि आनि ।। २/१०६

यहाँ प्रयागवासी अनेक ब्रह्मचारी तपस्वी, मुनियों और सिद्धों से राम का सम्पर्क हुआ और उनकी अहेतुकी कृपा भी मिली।[२]

---

१. प्र० भा० की सां० पृ० ३८ (संपुष्टि के लिए देखिए वा० रा० अयो० का० अध्याय ९१)

२ यह सुधि पाई प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी ।।
भरद्वाज आश्रम सब आए। देखत दसरथ सुअन सुहाए।। २/१०७/३

इसी महा सैनिक आश्रम के अधिष्ठाता महर्षि भरद्वाज को डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री ने स्वर्लोक[1] के अधिष्ठाता, अंतरिक्ष लोक दृष्टा, खगोल विशारद, 'ख' यानशास्त्र सूत्रधार एवं तत्सम्बन्धी ज्ञान के संरक्षक, अस्त्र-शस्त्र विद्याओं, उनके प्रयोगों के आधारभूत एवं भूतल और नभस्तल दोनों के उपयुक्त शस्त्रास्त्रों व यानों के परिज्ञाता, प्रयोगिक विधि के साथ-साथ समस्त भौतिक विज्ञान से पूर्णत: अभिज्ञ एवं परिचित परम वीतराग बनवासी विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न कहा है।[2]

इन्हें चिकित्सा शास्त्र, अर्थशास्त्र, शिक्षा शास्त्र और भौतिक विज्ञान शास्त्र प्रणेता भी कहा गया है।[3]

नि:सन्देह बनवासी रूप में राम का इस आश्रम में पहुँचकर ऋषि से ज्ञान और आशीर्वाद प्राप्त करना, ऋषि द्वारा आविष्कृत अस्त्र-शस्त्रों को लेकर उनकी प्रयोग विधि सीखना ही संकेतित करता है।

२. १. ५. **बाल्मीकि आश्रम**—रामायण काल में यह बहुत प्रगतिशील संस्था थी महाकवि भवभूति के 'उतर रामचरित' में इसका विशद वर्णन मिलता है। यहाँ संग्रामिक और अन्य शिक्षा दी जाती थी।[4]

महर्षि बाल्मीकि इस आश्रम के प्रमुख अधिष्ठाता थे। वे त्रि कालज्ञ, नीति निपुण एवं अत्यन्त उदार थे।

तुलसी के राम इस आश्रम पर पहुँचकर जीवन को समुन्नत एवं सर्वांगीण बनाना चाहते थे। अस्तु वह वहाँ पहुँचते हैं—

देखत बन सर सैल सुहाए।
बाल्मीकि आश्रम प्रभु आए।। २/१२३/३

२. १. ६. **आगस्त्य आश्रम**—दक्षिण भारत का यह अत्यधिक प्रसिद्ध आश्रम था। बम्बई प्रान्त में नासिक से २४ मील दक्षिण पूर्व अगस्तिपुर के नाम से विख्यात स्थान

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोयन लाहू।।
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुन्दर ताई।। २/१०७/४

१. सूर्य और ध्रुव के मध्य चौदह लक्ष योजन भाग स्वर्लोक कहलाता है। विष्णु पुराण २/७/१८ (डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री के अप्रकाशित शोध प्रबन्ध पृ० १ की पाद टिप्पणी से उद्धृत)।

२. महर्षि भरद्वाज प्रणीत यंत्र सर्वस्व के वैमानि प्रकरण का विवेचनात्मक अध्ययन —ले० डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, अध्याय ६, पृ० १८।

३. वही, पृ० २०।

४. प्र० भा० की सां० पृ० ४०।

कदाचित्, प्राचीन आश्रम का ही स्थल है। युगों तक यह सैनिक और ब्रह्म विद्या का केन्द्र रहा। विदर्भराज की पुत्री लोपामुद्रा से अगस्त्य का विवाह हुआ था। अगस्त्य-तारक के अविष्कारक आप ही थे।[1]

ऐतिहासिक एवं राजनीतिक दृष्टि से उत्तर में आर्य सभ्यता के प्रहरी और रक्ष संस्कृति के विरोधी जिस प्रकार विश्वामित्र थे उसी प्रकार दक्षिण में अगस्त्य। दक्षिणावर्त में आर्य सभ्यता के प्रसार का मार्ग उन्मुक्त करने वाले यशस्वी आर्य नेता के रूप में अगस्त्य का नाम भारतीय साहित्य में अमर है।[2]

रामायण में अगस्त्य का राजनीतिक और ऐतिहासिक महत्व अधिक स्पष्ट है किन्तु मानस में केवल संकेत मात्र दिया गया है। विश्वामित्र और अगस्त्य ने राम के लिए वही कार्य किया था जो चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के लिए।[3]

कुछ लोगों का अनुमान है कि चौदह हजार सेना सहित खर-दूषण के विनाश में राम को अगस्त्य के आश्रम से अवश्य सहायता मिली थी। अन्यथा राम के लिये अकेले इतने राक्षसों का बध करना असम्भव था।[4] यह आश्रम सैनिक शिक्षा का महान केन्द्र रहा होगा।

मानस में तो इस अलौकिक कृत्य की संभावना का समाधान राम की माया शक्ति के द्वारा किया गया है, जिससे वह खर-दूषण की सेना में भ्रम पैदा कर देते हैं और राक्षस लोग एक दूसरे को राम समझते हुए लड़ मरते हैं[5] परन्तु वाल्मीकि रामायण

---

१. (क) प्रा० भा० की सां० पृ० ३९।

(ख) संपुष्टि के लिए देखिए महाभारत की नामानुक्रमाणिका, हनूमान प्रसाद प्रोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर, प्र० संस्करण।

२. वाल्मीकि और तुलसी (साहित्यिक मूल्याकंन) डॉ० राम प्रकाश अग्रवाल, प्रकाशन प्रतिष्ठान मेरठ, प्र० संस्करण, पृ० २४२।

३. महावीर चरित (भवभूति), टीकाकार- रामचन्द्र मिश्र, सं० १९५५ भूमिका पृ० १५।

४– रामचरित, विद्यानन्दन विदेह, पृ० ३८।
तथा रामचरित मानस चतुदशी–ले० सन्त श्याम जी पाराशर, १९७४, पृ० ६३

५– महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि माया नाथ अति कौतक कर्‌यो।
देखहि परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्‌यो॥ ३।१९।छ. ४

में यह कार्य अलौकिक रूप में नहीं वरन् सर्वथा स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया गया है। अगस्त्य का आश्रम राम की कुटी के समीप ही था। उन्हीं की सलाह से राम ने पंचवटी पर कुटी बनाई थी तथा दस वर्ष तक वह आस-पास मुनियों की बस्ती में घूमते रहे थे।[१] इससे उक्त अनुमान की पुष्टि होती है कि राम को खर-दूषण और उसकी विशाल वाहिनी के वध में अगस्त्य की सहायता प्राप्त हुई थी। यों मानस में भी राम अगस्त्य से ही मुनि द्रोही राक्षसों को मारने का मन्त्र पूछते हैं। इस जिज्ञासा से अगस्त्य विशेष रूप से मुसकराते है और राम को पंचवटी पर निवास करने का परामर्श देते हैं।[२] इस सन्दर्भ से भी संकेत मिलता है कि राम को दक्षिण अभियान में अगस्त्य की विशेष सहायता प्राप्त हुई थी। इस प्रकार बाल्मीकि रामायण के ऐतिहासिक और राजनीतिक संकेत मानस में भी सुरक्षित हैं। यद्यपि मानसकार ने अपने स्वभाव के अनुसार अगस्त्य को भी राम का निस्पृह भक्त ही दिखलाया है। फिर भी अगस्त्य का ऐतिहासिक गौरव अक्षुण्ण रहा है।[३]

अगस्त्य आश्रम में ज्ञान के विभिन्न विभाग थे। ब्रह्म स्थान, अग्नि स्थान, विष्णु स्थान, महेन्द्र स्थान, विवस्वान स्थान, सोम स्थान, भगस्थान, कौवेर स्थान, धातृ स्थान, विधातृ स्थान, वायु स्थान, वरुण स्थान, तथा गायत्री, वसु, नागराज, अनन्त, गरुण कार्तिकेय तथा धर्मराज के पृथक्-पृथक् स्थान थे जिनका राम ने निरीक्षण किया था।[४]

इन विभागों में ब्रह्म स्थान पर वेदों का अध्ययन होता था। अग्नि स्थान में सामगान होते थे, समिधाएँ आहूत होती थीं, विष्णु स्थान में राजनीति, अर्थशास्त्र, पशुपालन तथा कृषि आदि विषयों की पढ़ाई होती थी, विष्णु स्थान के पास ही महेन्द्र स्थान था। यहाँ आक्रमणकारी और रक्षणशील (Ofiensive and Defensive) आयुधों का ज्ञान प्रदान किया जाता था। विवस्वान स्थान में ज्योतिष और सोम स्थान में औषधियों का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। चिकित्सा विज्ञान यहीं पढ़ाया जाता था। गरुड़ स्थान में यातायात, यान आदि का ज्ञान उपलब्ध होता था। कार्तिकेय स्थान में ब्रह्मचारी गुल्म, पत्ति वाहिनी आदि के संचालन की शिक्षा प्राप्त करते थे। कौवेर स्थान में जल स्तंभन, जल संस्तरण, पोत संचालन आदि की विद्या दी जाती थी।[५]

१– वा० रा० ३।११। २८।

२– मानस ३।१२।१ से ३।१३ तक

३– बाल्मीकि और तुलसी, पृ० २४३।

४– वा० रा० अरण्यकाण्ड बारहवां सर्ग श्लोक सं० १७ से २१ तक।

५– प्रा० भा० की सां०, पृ० ४०।

पं० मुल्कराज शर्मा आनन्द ने तो अपनी पुस्तक[1] में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि गरुड़ विभाग में वायु में पक्षियों की भाँति उड़ने का प्रयत्न किया जाता था और उड़ने वालों के लिए कई उपाधियाँ भी स्थापित कर दी गयी थीं ।[2]

यहीं पर महान तेजस्वी अगस्त्य ने वे सभी श्रेष्ठ आयुध श्री राम को सौंपे थे ।[3] जिनकी उन्हें युद्ध में उपयोग करने की आवश्यकता थी ।

तुलसी के राम इसी आश्रम के अधिष्ठाता ज्ञान-विज्ञान-निधान कुम्भज ऋषि[4] के पास जाने को तत्पर होते हैं–

एवमस्तु करि रमा निवासा ।
हरषि चले कुंभज रिषि पासा ।। ३।११।१

१– धनुर्धरी राम, अगस्त्य आश्रम, पृ० १२९।

२– यदि कोई बिना किसी बड़े भारी प्रयत्न के आकाश में बहुत अधिक ऊँचा उड़ सके तो उसे गरुड़ की उपाधि दी जाती थी उससे छोटे दरजे को 'गृध्र' कहा जाता था ।

३– वाल्मीकि रामायण अरण्यकाण्ड सर्ग–१२ श्लोक–३७ ।

४– अगस्त्य का जन्म मित्र वरुण के तेज से एक घड़े में हुआ था । इसी कारण उन्हें कुम्भज या घटज (घड़े से पैदा हुआ) कहा जाता है । इनके जन्म के प्रकरण को परख नली शिशु* के जन्म के परिप्रेक्ष्य में सरलता से देखा जा सकता है । २४ जुलाई १९७८ ई० को रात्रि ११–४७ मिनट पर ब्रितानी अस्पताल में ब्रिटेन के ब्राउन दम्पति (गलवर्ट जान एवं लेसली ब्राउन) की बच्ची का जन्म प्रथम परखनली शिशु के रूप में हुआ । इस लड़की का नाम लूइसी ब्राउन है । विश्व में वह पहली बच्ची है जो टेस्ट ट्यूब द्वारा वैज्ञानिक तरीकों ने पैदा हुई है ।

आधुनिक युग के एक असम्भव काम को डॉ० पैट्रिक स्ट्रपटो एवं डॉ० राबर्ट एडवर्डस ने सम्भव कर दिखाया और प्रयोगशाला में बच्चे पैदा हो सकने की संभावना को सत्य सिद्ध कर दिया । इस कार्य में उन्होंने अपने १२ वर्षो के प्रयास के पश्चात सफलता प्राप्त की ।

इस प्रयोग से उन स्त्रियों को काफी आशायें हैं जिनके वंध्यता के कारण बच्चे नहीं हैं ।) देखें जाह्नवी, मासिक पत्रिका, अगस्त सितम्बर ७८–पृ० ४१ पर साधुराम शर्मा का लेख ।

नि:संदेह इस आविष्कार ने हमारे प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित तथ्यों को इस रूप में स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया है कि अगस्त्य ही नहीं प्रत्युत सीता, कौरव एवं पाण्डु पुत्रों आदि के प्रकरण परखनली शिशु' के परिप्रेक्ष्य में स्वीकार करें ।

इस आश्रम में पहुंच कर राम अपने लक्ष्य की ओर संकेत करते हुए त्रिकालज्ञ ऋषि से कहते हैं–

तब रघुवीर कहा मुनि पाहीं ।
तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं ॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयऊँ ।
ताते तात न कहि समझायउँ ॥ ३।१२।१

राम का अगस्त्य के पास आगमन उनका बनवास नहीं है और न सामान्य रूप से दर्शन है । वह तो बहुत स्पष्ट कहते हैं–

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही ।
जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही ॥ ३।१२।२

नर से नारायण के पद पर प्रतिष्ठित कर जन मानस में अमर करने वाले तुलसी की उपर्युक्त चौपाई से राम का साधारण जिज्ञासु की भाँति अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान सीखने का प्रसंग स्पष्टत: प्रतिलक्षित होता है ।

श्री रामानन्द शर्मा ने अपनी पुस्तक[1] में अगस्त्य को शिवभक्त, संकल्प साधना एवं पौरुष के प्रोज्ज्वल प्रतीक मानते हुए लिखा है कि शिव के इशारे से ही इस महामानव ने अपने जन्म स्थान उत्तरापथ का परित्याग किया और दक्षिणपथ के घोर दण्डकारण्य में जाकर ठीक जन स्थान के समीप (जो भारत में रावण के उपनिवेश का दुर्गम गढ़ था) अपना आश्रम स्थापित किया। इनका यह आश्रय राज्यक्रान्ति का केन्द्र था और अगस्त्य दक्षिण दिशा के क्षेत्रीय मंत्रदाता गुरु थे । इस प्रकार यह प्रगतिशील एवं ख्यात प्राप्ति संस्था थीं ।

२. १. ७ **अन्य आश्रम–** इन आश्रमों के अतिरिक्त अत्रि, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण और शबरी आदि के आश्रम भी अत्यधिक प्रसिद्ध एवं प्रगति शील थे जहाँ आध्यात्मिक नैतिक एवं धार्मिक शिक्षाएँ तो दी जाती थीं, किन्तु सैनिक शिक्षा की दृष्टि से इनका कोई महत्व नहीं था ।

इन ऋषि आश्रमों में केवल पुस्तकीय विद्या ही नहीं सिखाई जाती थी । प्रत्युत उनमें नाना विद्याओं से संबंधित प्रयोग और अनुसंधान करने का प्रबन्ध भी किया जाता था । यहाँ एक ओर कला कौशल के विद्यार्थी धुरन्धर विद्वानों से कला कौशल तथा शिल्प आदि सीखते थे न केवल सीखते थे वरन् यन्त्र आदि स्वयं बनाते थे और दूसरी ओर क्षात्र धर्म में रुचि रखने वाले धनुर्विद्या को ग्रहण करते हुए नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बनाने में प्रवीण होते थे । इस प्रकार ऋष्याश्रम धर्म,

---

१– मानस की महिलाएँ; रामानन्द शर्मा, बिप्लपवी आश्रम पृ० २१ ।

ज्ञान, विज्ञान कला कौशल, राजनीति धनुर्विद्या आदि के सीखने के लिए भारी विद्यापीठ थे जो अपने-अपने आचार्यों के नाम से विख्यात थे।[1]

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर पूर्ण आस्था रखते हुए तुलसी राम को बंधुओं समेत पढ़ने के लिए गुरु-गृह भेजते हैं और राम दूसरों की तुलना में कम समय में ही निर्धारित विद्याओं को सीख लेते हैं–

गुर गृहँ गए पढ़न रघुराई ।
अलप काल विद्या सब आई ॥ १।२०३।२

उन दिनों शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा था। अयोध्या नगरी शिक्षा का महान केन्द्र थी। यहाँ उपाध्याय सुधन्वा का सैनिक शिक्षालय था जहाँ राजकुमार शस्त्राभ्यास करते थे।[2]

राम-लक्ष्मण को उच्च युद्ध शिक्षा प्रमुख रूप से विश्वामित्र, भरद्वाज और अगस्त्य से प्राप्त हुई थी।

रामायण काल युद्ध-बहुल युग था। अतः युद्ध विद्या का सर्वांगीण प्रशिक्षण छात्र के लिए अनिवार्य था। युद्ध विद्या का बोध धनुर्वेद के नाम से होता था। 'धनुः' शब्द संग्राम के अस्त्र-शस्त्रों अथवा युद्ध पद्धति का वाचक था।[3]

२. २. **समाज (जातियां)**– भारतीय समाज का अस्तित्व जाति एवं व्यक्ति के संदर्भ में ही स्वीकार किया जाता है। अस्तु, मानस में वर्णित कुछ प्रमुख जातियों का वैज्ञानिक विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

२. २. १ **वानर**– राम रावण युद्ध में राम की सबसे अधिक सहायता करने वाली दो जातियाँ हैं। प्रथम कपि अथवा वानर द्वितीय ऋक्ष अथवा भालू। इनमें कपियों का स्थान सर्वश्रेष्ठ था। यह दक्षिण भारत की ही जातियाँ थीं जो मानवेतर नहीं थी। डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास ने अपनी पुस्तक[4] में वानरों को एक वनचर जाति स्वीकार करते हुए लिखा है–

राक्षसों के बाद रामायण में वानरों का उल्लेखनीय स्थान है। यह भी दक्षिण भारत की एक अनार्य जाति थी किन्तु इसने आर्यों को सहयोग दिया था।

१– धनुर्धारी राम, ऋषि सभा, पृ० २०।

२– रामायण में हिन्दू संस्कृति ले० डॉ० शान्ति कुमार नानूराम व्यास, कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक के पृ० ३०६ से उद्धृत।

३– रामायण कालीन समाज, डॉ० शान्ति कुमार नानूराम व्यास प्रकाशक, मार्तण्ड उपाध्याय, सस्तासाहित्य मण्डल दिल्ली, प्र० सं० पृ० १२७।

४– रामायण कालीन समाज, पृ० ६१।

बालि और सुग्रीव वानरों के नेता थे । वास्तव में वानर जाति विंध्य पर्वत माला के दक्षिण में निवास करने वाली एक वनचर जाति थी और उसे निरा वानर समझ लेना भूल है ।

गेरेशियों ह्वीलर वानरों को दक्षिण भारत की पहाड़ियों की निवासी अनार्य जाति मानते हैं ।[१] एक अन्य विद्वान[२] ने लिखा है 'राक्षस लोग वानरों को कपि या वानर अहंकारवश या उनके प्रति तुच्छता की भावना के कारण कहते थे वैसे ही जैसे रूसी लोग किसी समय जापानियों को पीला बन्दर (यलो मंकी) कहकर उनका उपहास करते थे ।......यह प्रायः स्वीकार कर लिया गया है कि प्राचीन भारत में पशुओं के नाम से अभिहित कई जातियाँ निवास करती थीं जैसे नाग (सांप) ऋक्ष (भालू) और वानर (बन्दर) । कालान्तर में लोक मानस ने, आकृति एवं स्वभाव में उन-उन पशुओं का ही उनको प्रतिरूप मानलिया जिनका नाम वे धारण करती थीं या जिनके साथ उनका कुछ-कुछ स्वरूप साम्य था अथवा जिनकी वे देवता रूप में पूजा करती थीं ।

श्री मन्मथनाथ राय[३] ने वानरों को भारत का मूल निवासी ब्रात्य माना है जो बाद में आर्यों के आने पर दक्षिण पठार के उपजाऊ भू भागों में जाकर बस गये । राम के सम्पर्क में आने से पहले ही वे आर्यों के प्रभाव क्षेत्र में आ चुके थे ।

श्री के० एम० रामस्वामी शास्त्री ने वानरों को आर्य जाति ही माना है जो दक्षिण भारत में बस जाने के कारण उत्तर भारत वासी अपनी मूल शाखा से दूर पड़ गयी ।[४]

वानरों को मनुष्य मानने में सबसे बड़ी बाधा पूँछ की है । विभिन्न संदर्भों से यह माना जा सकता है कि यह पूँछ शरीर का अभिनन्न अंग न होकर वानरों की एक विशिष्ट जातीय निशानी थी जो संभवतः बाहर से लगाई जाती थी । इसीलिए लंका दहन करते समय हनुमान को कोई शारीरिक पीड़ा नहीं हुई । रावण ने पूंछ को कपियों का सर्वाधिक प्रिय आभूषण बताया था ।[५] तथा इसी कारण पूँछ पर उसकी ममता भी मानी जाती थी ।[६] बन्दर की ममता पूंछ पर होती है ।

१– रामायण कालीन समाज, पृ० ११ ।

२– 'दि रिडिल आफ दी रामायन, चिन्तमणि विनायक वैद्य प्र० सं० पृ० ९६ ।

३– सरस्वती भवन स्टडीज, भाग, ५ पृ० ७३ ।

४– इण्डियन कल्चर, भाग ५, पृ० १९५ ।

५– वही, वा० रा०, ५।३३।३ ।

६– कपि कें ममत पूंछ पर, सबहि कहउँ ससुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥ ५।२४ ।

अन्वेषकों ने इतिहास में पूँछ लगाने वाले व्यक्तियों या जातियों का अस्तित्व ढूँढ़ निकाला है। बंगाल के कवि मातृगुप्त हनुमान के अवतार माने जाते थे और वह एक पूँछ लगाते थे। भारत के एक राज परिवार में राज्याभिषेक के समय पूँछ धारण करने का रिवाज प्रचलित था।[1]

श्री विनायक दामोदर सावरकर ने अपने अंडमान कारावास के संस्मरणों में लिखा है 'इस द्वीप में पूँछ लगाने वाली एक आदि वासी जाति रहती है'।[2]

जी० रामदास ने लिखा है कि विजगापत्तन के शबरों में पूँछ आभूषण के रूप में पहनी जाती हैं।[3]

रामकथा के प्रसिद्ध विद्वान डॉ० रेवरेंड फादर कामिल बुल्के[4] ने भी यह स्वीकार किया है कि राम कथा के वानर तथा राक्षस वास्तव में प्राचीन विंध्य प्रदेश तथा दक्षिण की आदिवासी अनार्य जातियाँ थीं। इनके विषय में प्रायः मतभेद नहीं है।

वानर नाम की उत्पत्ति की समस्या को सुलझाने के लिए भी अनेक अनुमान प्रस्तुत किये गये हैं। सी० वी० वैद्य के अनुसार वानर जाति के लोग सचमुच वानर के समान दिखाई पड़ते थे और इससे उनका यह नाम चल पड़ा।[5] अन्य विद्वान् जैन रामायणों का अनुकरण करके मानते हैं कि वानर, ऋक्ष आदि नाम उन जातियों की ध्वजा के कारण प्रचलित हुए। जिस जाति की ध्वजा पर बन्दर का चिह्न था वह बानर जाति कहलाती थी, जिसकी ध्वजा पर रीछ का चित्र था, वह रीछ कहलाती थी, जैसे कि आजकल रूसियों की ध्वजा पर रीछ का तथा अंगेजों की ध्वजा पर सिंह का चित्र होने से इन देश के वीरों को (रसियन) बियर्स और (ब्रिटिश) लायन्स कहते हैं। हमारे देश में तो प्राचीन काल से ही पशु-पक्षियों के चिह्न वाले झंडे प्रयोग किये जाते रहे हैं जैसे वैष्णव गरुण ध्वज, शैव वृषभ-ध्वज और शाक्त सिंह-ध्वज का प्रयोग करते हैं। धनुर्धर अर्जुन की ध्वजा पर हनुमान का चिह्न था। कृपाचार्य की ध्वजा पर साँड़ की छवि रहती थी। अंगराज वृषसेन की ध्वजा पर मयूर था। सिंधुराज जयद्रथ के झण्डे पर बराह तथा दुर्योधन के झण्डे पर रत्नों का बना हाथी रहता था। कृष्ण गरुण-ध्वज का प्रयोग करते थे। बाणासुर मयूर-ध्वज थे। जनक सीरध्वज थे, हलधरे बैलों की जोड़ी उनका ध्वज चिह्न था।

---

१. बंगाली रामायण—दिनेशचन्द्र सेन, पृ० ५२।

२. महाराष्ट्रीय कृत रामायण समालोचना।

३. रामायण कालीन समाज से उधृत।

४. राम कथा (उत्पत्ति और विकास), रामकथा का मूल स्रोत परिशिष्ट-२, वानर और राक्षस, पृ० ११७।

५. रि० आफ दि रामयान, पृ० १५३।

रावण की सेना में भी ध्वजों का प्रचलन था ।[१] इसके अतिरिक्त नाग आदि चिह्न वाले ध्वजों का भी प्रयोग किया जाता था ।[२] घटोत्कच गृध्र चिह्नांकित ध्वज प्रयोग करता था । यही नहीं प्राचीन विदेशी भी अपने झण्डों पर पशु-पक्षियों के चिह्न अंकित करते थे ।[३]

'पउमचरिय' जैनों की राम रावण कथा में वानर चिह्नांकित ध्वज एवं मुकुट धारी जाति वानर वंशीय कही गयी है ।

सबसे स्वाभाविक अनुमान यह है कि आजकल के आदिवासियों के समान उन जातियों के भिन्न-भिन्न कुल के लोग भिन्न-भिन्न पशुओं और वनस्पतियों की पूजा करते थे । जिस कुल के लोग जिस पशु या वनस्पति की पूजा करते थे, वे उसी के नाम से पुकारे जाते थे । इस प्रकार पशु या वनस्पति उपयोग को आजकल के विद्वान टोटम कहते हैं । आधुनिक भारत में ऐसी जातियाँ मिलती हैं जिनके भिन्न-भिन्न गिरोहों के टोटम बाघ, बकरा, ऋक्ष तथा वानर आदि हैं ।[४]

छोटा नागपुर में रहने वाली अटाओं नामक द्रविड़ जाति में तिग्गा अथवा बजरंगी गोत्र पाये जाते हैं जिसका अर्थ हनुमान (बन्दर) ही है । मुण्डा जाति में भी गड़ी अर्थात् बन्दर का टोटम मिलता है ।[५]

महामहोपाध्याय विद्यानिधि सिद्धेश्वर शास्त्री चिन्नाव ने अपने कोश[६] में वानर का अर्थ दक्षिण भारत में निवास करने वाला एक प्राचीन मानव समूह ही स्वीकार किया है उन्होंने लिखा है–'पुराणों में वानरों को हरि नामान्तर दिया गया

१. वा० रा०, लंकाकाण्ड, अध्याय ५९ ।
२. हिन्दी विश्वकोष, खण्ड ६, पृ० २०६ ।
३. पारसीक सम्राट दारा के रथ पर दो विपरीत दिशाओं में दौड़ते हुए बैलों से अंकित ध्वज फहराती थी, पुरातन फारस वालों के बर्छे के छोर पर गीध अंकित रहता था डेसियन गेरुड़ मारे हुए सर्पांकित ध्वज व्यवहार में लाते थे और चीनी परदार सांप से चिह्नित ध्वजा का प्रयोग करते थे, ऐथेन्स निवासी उल्लू अंकित झण्डा रखते थे ।
प्राचीन भारत की सग्रामिकता, पृ० ६-७ ।
४. रामकथा (उत्पत्ति और विकास), डॉ० बुल्के, पृ० ११७ ।
५. दि रेदिस आव दि विसन हिल्स, सी वान फूरर हाइमेन दार्फ, पृ० ३२९ । (ज० रा० ए० सो० १९८४, पृ० १९० से उद्धृत) ।
६. भारतवर्षीय (प्राचीन चरित्र कोश), सम्पादक, महामहोपाध्याय–विद्यानिधि सिद्धेश्वर शास्त्री चिन्नाव, प्रकाशक, विनायक सिद्धेश्वर शास्त्री चिन्नाव कार्यवाह, भारतीय चरित्र कोश मण्डल, पूना–४ ।

है एवं उन्हें पुलह एवं हरिभद्रा की सन्तान बताया गया है। पुलह को हरिभद्रा से वानर, किन्नर आदि संतति प्राप्त हुई थी। हरिभद्रा से उत्पन्न होने के कारण बानरों की हरि नामान्तर प्राप्त हुआ।

ब्रह्माण्ड पुराण में वानरों के प्रमुख ग्यारह कुल दिये हैं जिनके नाम हैं– द्वीपिन, शरभ, सिंह, व्याघ्र, नील, शल्यक, ऋक्ष, मार्जार, लोटास, वानर, मायाव ये सभी वानर किष्किधा में रहते थे। उनका राजा बालिन था।[1]

उपर्युक्त पुराण में ऋक्ष, सुग्रीव, केशरी एवं अग्नि इन चार प्रमुख वानरों के वंश इस प्रकार दिये हैं–

१–ऋक्ष शाखा–ऋक्ष (पत्नी विरजा कन्या चारुहासिनी) महेन्द्र, सुग्रीव एवं वालिन (पत्नी सुषेण कन्या तारा) अंगद (मदकन्या) ध्रुव।[2]

२–सुग्रीव शाखा–ऋक्ष सुग्रीव (पत्नी पनस कन्या रूपा) तीन पुत्र।

३–केसरी शाखा–केसरिन (पत्नी कुंजर कन्या अंजना) हनुमत, श्रुतिमत आदि।

४–अग्नि शाखा–अग्नि, नल आदि।[3]

गोस्वामी तुलसी दास ने अपने रामचरित मानस में वानर के विभिन्न पर्यायों का प्रयोग किया है।[4] उनके कार्य कलापों को देखते हुए निःसंदेह इस जाति को मात्र वानर न मानकर तत्कालीन एक वीर जाति ही मानना पड़ेगा।

रामायण प्राचीन विश्व का बृहद् इतिहास है जिसमें विश्व के समस्त प्राणियों का वर्णन छिपा पड़ा है। रामायण में बृद्ध जामवन्त, रामा पिथिकस के प्रतिनिधि है और हनुमान आस्ट्रेलोपेथीकस* के प्रतिनिध है।[5]

---

१. ब्रह्माण्डपुराण ३/७/१७६, ३२०।
२. ब्रह्माण्ड पुराण, ३/७/२४६-२७५।
३. वही, ३/७/२४५।
४. कपि २५७ बार, कपि से सम्बन्धित ९४ बार वानर ३६ बार, कीस ३६ बार मर्कट २३ बार बलमुख ६ बार, बन्दर ८ बनचर ४ बार साखामृग ३ बार लंगूर ३ बार तथा हरसि। बार। मानस शब्द सागर।
*लेटिन भाषा में है 'आस्ट्रेलीपी थिसाइन' अर्थात् दक्षिणी वानराकृति जीव।
५. कानपुर विश्वविद्यालय पत्रिका सम्पादक–गिरिराज किशोर, वर्ष ३, अंक १-४। दिसम्बर १९७३, पृ० २० पर रामकालीन मानव (शोध-पत्र) ले०–डॉ० चन्द्र प्रकाश अग्रवाल।

यह वानर वनवासी देश या वानर प्रदेश के रहने वाले थे ।[1]

वानरों की राज्य व्यवस्था—स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल ये राजा के सप्तांग कहे गये हैं । तुलसी ने इस व्यवस्था को स्वीकार किया है ।

वानर राष्ट्र के स्वामी बालि हैं क्योंकि सुग्रीव राम से अपने बन्धु बैर का वर्णन करते हुए कहता है कि मय दानव के पुत्र मायावी से युद्ध करते हुए जब मेरी आशंका के अनुकूल मेरा भाई बालि मारा गया तो मंत्रियों ने नगर को बिना स्वामी (राजा) का देखकर मुझे राज्य दे दिया ।[2]

यहाँ ज्ञात होता है कि बालि के मंत्री थे जिन्होंने सुग्रीव को राजा बनाया । सुग्रीव भी मन्त्रियों सहित ऋष्यमूक पर्वत पर रहा करते थे । मानस में स्पष्ट उल्लेख है—

तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा ।
आवत देख अतुल बल सींवा ।। ४/०/१
मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा ।
बैठ रहेउ मैं करत बिचारा ।। ४/४/२

बालि का पुर उसके दुर्ग की ओर संकेत करता है—

मय सुत मायावी तेहि नाऊँ ।
आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ ।। ४/५/१
अर्ध राति पुर द्वार पुकारा ।
बाली रिपु बल सहै न पारा ।। ४/५/२

बालि बध के पश्चात् राम के निर्देश पर लक्ष्मण, सुग्रीव को राजा एवं अंगद को युवराज बनाते हैं—

लछमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज ।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ, अंगद कहँ जुबराज ।। ४/११

---

१. बृहत्संहिता (१४–१२) दक्षिणी संभाग से स्थित इस प्रदेश का उल्लेख मिलता है । वनवासी मैसूर के उत्तरी कनारा जिले में स्थित है ।

मैसूर राज्य के शिभोग जिले में स्थित यह एक गाँव का नाम है । (एपिग्रेफिया इण्डिया–२०) पहले एक शानदार राजवंश की राजधानी थी । साउथ इण्डियन इस्किरशंस, प्रथम सं० पृ० ९६,(प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, पृ० १२१ से उद्धृत) ।

२. मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं ।
दीन्हेउ मोहि राज बरिआई ।। ४/५/५

बालि का सुहृद् रावण है क्योंकि उसकी उससे मित्रता थी तभी रावण के पूछने पर अंगद उत्तर देता है–

दिन दस गएँ बालि पहिं जाई ।
बूझेहु कुसल सखा उर लाई ॥ ६/२०/४

रावण ने बालि की अधीनता[1] भी स्वीकार की थी ।[2] सुग्रीव के सुहृद् राम हैं। हनुमान द्वारा उनकी मित्रता सम्पन्न कराई गई थी ।[3]

जहाँ तक बल की बात है वानर राज्य में एक से एक शक्तिशाली व्यक्ति हैं। हनुमान, अंगद, सुग्रीव, जामवन्त एवं अन्य शूरवीरों से युक्त बानरी सेना है। सुग्रीव को प्राप्त बालि के कोष,[4] वानर राष्ट्र तथा किष्किन्धा राजधानी, वानरों की सप्तांगों से युक्त सुदृढ़ राज्य व्यवस्था को ही दर्शाती है। इसके अतिरिक्त सुग्रीव का राम लक्ष्मण को देखकर यह आशंका व्यक्त करना, कि यदि वे बालि के भेजे हुए हों तो मैं प्राण रक्षा हेतु भाग जाऊँ,[5] स्पष्टतया मानव चिन्तन तथा मानव राजनीति को संकेतित करता है।

हनुमान का वानर (बन्दर) होकर विप्र या बटु रूप धारण करना,[6] राम से हनुमान सुग्रीव बालि आदि का वार्तालाप, बालि बध पर तारा का विलाप,[7] सुग्रीव का विधि पूर्वक बालि का मृतक कर्म करना,[8] लक्ष्मण का नगर वासियों और विप्र समाज को बुलाकर सुग्रीव को राजा एवं अंगद को युवराज[9] बनाना, बानरों द्वारा

१. रावण के समय बालि किष्किन्धा का राजा था मायावी और दुंदुभि आदि के बध से बालि का यश दूर दूर तक फैल गया था (ब्रह्मा से वर प्राप्त रावण किष्किन्धा में वालि से पराजित हुआ ।)
(वही, बा० रा० उ० पू० सर्ग-३४)
मानस सन्दर्भ कोष, डॉ० वागीश दत्त पाण्डेय, प्रथम संस्करण, पृ० ४७ से उद्धृत ।
२. मानस ६/२४ ।
३. तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥ ४/४
४. सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी ।
पावा राज कोस पुर नारी ॥ ४/१७/२
५. मानस ४/०/३ ।
६. वही, ४/०/२-३ ।
७. मानस ४/१०/२-३ ।
८. वही, ४/१०/४ ।
९. वही, ४/११ ।

सीता की खोज के प्रयत्न,[1] हनुमान की विभीषण, सीता, रावण आदि से वार्ता, सेतु निर्माण, अंगद रावण संवाद, राम से मन्त्रणायें राक्षसों से युद्ध एवं राम-राज्यारोहण में तथाकथित बानरों की उपस्थित आदि ऐसी घटनायें हैं जो तुलसी की दृष्टि को वैज्ञानिक निकष पर कसने के लिए विवश कर देती हैं और तुलसी के कपि या वानर बन्दर नहीं माने जा सकते। वे मनुष्य मात्र का ही बोध कराते हैं।

ऋक्ष राज जामवन्त को भारतवर्षीय प्राचीन चरित कोश में एक वानर जाति का मानव ही स्वीकार किया गया है। ब्रह्माण्ड पुराण[2] में ऋक्षराज की जो वंशावली उपलब्ध है, उसके अनुसार भी यह मानव जाति के वानर वंशीय ही सिद्ध होते हैं।

२. २. २. **गृध्र**—डॉ० अविनाश चन्द्र दास ने अपनी पुस्तक[3] में गृध्र जाति पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि प्राचीन भारत की कुछ घुमंतू जातियाँ अपने पर्यटन शील स्वभाव के कारण पक्षियों-गृध्रों या सुपर्णो के नाम से सम्बोधित की जाती थीं।

डॉ० शान्ति कुमार नानूराम व्यास ने रामायण कालीन इस जाति को आदिम घुमंतू जातियों की प्रतिनिधि जाति स्वीकार किया है। इस जाति के रीति रिवाजों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है कि आर्यों के समान यह जाति भी मृतक कर्म, तर्पण आदि करती थी।[4] उन्होंने इस जाति को भारत के पश्चिमी समुद्र तट और उसके आसपास की पर्वत श्रेणियों का निवासी स्वीकार किया है।[5]

डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल[6] सी० वी० वैद्य[7] तथा डॉ० रांगेय राघव[8] ने भी प्रकारान्तर से गृध्रों की एक जाति ही स्वीकार की है।

---

१. मानस ४/२३।
२. ब्रह्माण्ड पुराण मध्य भाग, उपोद्घातपाद ३, अ० ७, श्लोक २०३ से २७३ तक।
३. ऋग्वेदिक इण्डिया, पृ० १४८।
४. रामायण कालीन समाज, पृ० १७-१८।
एवं
तब सुग्रीवहिं आयसु दीन्हा।
मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा॥ ४/१०/४
५. रामायण कालीन समाज, पृ० १ से ४ तक।
६. बाल्मीकि और तुलसी, प्र० सं० २३८-२३९।
७. दि रिडिल आव द रामायन पृ० १३८।
८. तुलसी का कथा शिल्प, प्र० सं० पृ० १०५।
जटायु किसी आदिवासी जाति का राजा ही प्रतीत होता है।

संपाती का वानरों को भोजन का हेतु देखकर प्रसन्न होना, वानरों से वार्तालाप करना, जटायु को तिलांजलि देना एवं उसका मृतक कर्म करना तथा वानरों का मार्ग दर्शन करना आदि ऐसी घटनाये हैं ।[1] जो तुलसी द्वारा ही अन्यथा वर्णित[2] आमिष भोजी[3] और आंतो को खींच कर खाने वाले गीध[4] पक्षी[5] से भिन्न इनको मानव ही स्वीकार करने को बाध्य करती हैं ।

इसीलिए प्राचीन चरितकोश में जटायु को गरुड़ जाति का एक मानव एवं राजा दशरथ का मित्र स्वीकार किया गया है ।

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों के मतो एवं तुलसी के वर्णनों पर यदि वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो यही सिद्ध होता है कि जटायु और संपाती गृध्र जाति के मानव थे ।

वे दूर दृष्टि[6] रखने एवं आकाश में उड़ने की कला में भी दक्ष थे जैसा कि मानस के संपाती अपने और अपने भाई के संबंध में कहते हैं–

हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई ।
गगन गए रबि निकट उड़ाई ।। ४।२७।१

२.२.३. **राक्षस**–रामायण में जिन्हें राक्षस कहा गया है, वे वैदिक साहित्य में दस्यु के नाम से कुख्यात थे । वेदो में यह उल्लेख मिलता है कि आर्यों ने इनके

१– मानस ४।२६।१ से ४।२८।३ तक

२– चोचन्ह मारि बिदारेसि देही । ३।२८।१०
काटेसि पंख पराखग धरनी । ३।२८।११

३– गीध अधम खग आमिष भोगी । ३।३२।१

४– खैंचहि गीध आंत तट भए । ६।८७।३

५– मानस में २२ पक्षियो के नामो का वर्णन है उनमें गीध भी एक पक्षी है । (देखिए-रामचरित मानस वाग्वैभव डॉ० अम्बा प्रसाद सुमन पृ० २३६ ।)

६– मैं देखऊँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार ।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार ।। ४।२८
डॉ० शान्ति कुमार नानूराम व्यास ने रामायण का उद्धरण देते हुए लिखा है कि चक्षुष्मती विद्या से सौ योजन की दूर तक देखने की क्षमता आ जाती थी । गृध्रों में यह विद्या विशेष रूप से प्रचलित थी । इससे वे अपना शिकार मीलों से देख लेते थे ।
उक्त कथन ग्रध्रों को मानव ही सिद्ध करता है । देखिए,रामायण कालीन समाज, पृ० । १४६ । एवं वा० रा० ४।५८।२९ ।

आर्यों के समान राक्षसो में पितृपक्ष से वंश चलने की प्रथा नहीं थी रावण का मातृपक्ष से राजा बनना इसका उदाहरण है। अपहरण, गान्धर्व विवाह, बलात्कार मायावी अभिचार कर्म (दिव्य शक्तियों की प्राप्ति हेतु जादू-टोनों में आस्था) करने वाले तथा प्रणय लीला में लीन रहना इन राक्षसो के प्रमुख कार्य थे। इन राक्षसों की विराध दनु (कबंध) एवं रक्ष शाखा अत्यधिक प्रसिद्ध रही हैं।

मानस के अनुसार पराये धन और पराई स्त्री पर मन चलाने वाले दुष्ट चोर और जुआरी बहुत बढ़ गये। लोग माता-पिता और देवताओं को नहीं मानते थे और साधुओं की सेवा करना तो दूर रहा उल्टे उनसे ही सेवा कराते थे। ऐसे आचरण वाले प्राणी ही राक्षस थे।[१]

रावण इस जाति का सर्वाधिक बलशाली एवं प्रतापी राजा हुआ जिसने लंका को अपनी राजधानी बनाया।

राक्षसो की जाति वर्ण संकर थी जिसमें मातृपक्ष की ओर से राक्षस और पितृपक्ष की ओर से ब्राह्मण रक्त था।[२] अत: एक ओर ये नर मांस भक्षी और मदिरा सेवी थे और दूसरी ओर श्रुति मार्ग के अनुयायी वेदवाणी यज्ञादि कर्म करने वाले भी थे। विद्वानों का विचार है कि उन्हें भारत की मूल द्रविड़ जातियाँ माना जा सकता है।[३] इनके और आर्य लोगों के तप तथा यज्ञों में अन्तर यह था कि ये भौतिक सुख–समृद्धि के लिए यज्ञादि करते थे, आर्य लोग आत्मिक उत्थान के लिए।[४]

मानस में इस जाति के अधिष्ठाता द्वारा जो पराक्रम किया गया, वह इस प्रकार है–

भुजबल विश्व बस्य करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मडंलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र ॥ १।१८२ (क)
देव जच्छ गंधर्वनर, किंन्नर नाग कुमारि।
जीति ब्री निज बाहुबल बहु सुंदर बरनारि। १।१८२ (ख)

तथा

१– जिन्हेके यह आचरन भवानी।
ते जानहु निसिचर सब प्राणी ॥ १।१८३।२

२– वा० रा० ७।२।३, ९–१० सर्ग तथा मानस १।१७६।

३– रिडिल आफ दि रामायन, सीवी० वैद्य, पृ० ९४।

४– वाल्मीकि और तुलसी, पृ० २५६।

बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं ।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्हके पापहि कवनि मिति । १।१८३

२.२.४. **यक्ष**–यह जाति राक्षसो की ही समकालीन थी ।[1] यक्षों को उनके क्रूर बन्धुओं ने धीरे-धीरे उत्तर की ओर खदेड़ दिया। कुबेर इस जाति के राजा थे ।

२.२.५ **नाग**– सर्प चिन्ह वाले नागो की जाति भी समकालीन थी। सुरसा इन्ही की माता थी। कालान्तर में नाग जाति चेर जाति में विलीन हो गयी जो ईसवी सन् के प्रारम्भ में प्रभुत्व सम्पन्न हुई थी।[2]

नागवंश का उल्लेख तो भारत के प्राचीन इतिहास का एक प्रमुख अंश है। ईसवी सन् के पूर्व भारत में इस वंश की अनेक जातियाँ थीं और अब भी मद्रास एवं मध्यप्रदेश में अनेक वर्ग अपने को नागवंशी कहते हैं। अन्य देशों में भी नागवंश की अनेक जातियाँ पाई जाती हैं। एबीसीनिया और जापान के राजघराने अब भी अपने को नागवंशी कहते हैं और हिबरु और सीरियन तो जन्म-जन्मान्तर से अपने को नागवंश की प्रमुख परम्परा का वंशज मानते हैं।[3]

नाग और नागों के प्रभुत्व की कहानी अपने देश या उसके आस–पास तक ही सीमित हो, ऐसी बात भी नहीं है। चीन की राजधानी पीकिंग के मध्य स्थित विशाल नाग मन्दिर अब भी देश-देशान्तर के लोगों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है और मिश्र में तो नागों को देव वर्ग का विशेष प्रतिनिधि माना जाता है। अमेरिका के आदिवासी बहुत विस्तार के साथ नागपूजन का उत्सव मनाते हैं। यूनान में भी कुछ इसी प्रकार की धारणाओं और मान्यताओं का प्रचलन है और वहाँ के देव मन्दिरों में अब भी सर्प पाले जाते हैं। सन् ४६२ के आसपास रोम में जिस भयंकर हैजे का प्रकोप हुआ था, उसकी शान्ति सर्प पूजा के द्वारा ही सभव हुई थी। अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, लिथुपानिया, स्वीडन और लेटविया आदि देशों में तो सर्प पूजन का राष्ट्रीय महत्व था। १९वीं सदी के अन्त तक पोलैण्ड में भी सर्पपूजन का उत्सव देश का सबसे बड़ा पर्वमाना जाता था।

नाग जाति की सुन्दरता का वर्णन तो बहुत प्राचीन काल से होता आया है। पौराणिक कथाओं के अनुसार नाग कन्यायें अतीव सुन्दरी होती थी, इतनी सुन्दर कि देवगणो को भी उन पर मोहित होने में विलम्ब नहीं लगता था। भगवान

१– दिरिडिल आफ दि रामायण, चिन्तामणि विनायक वैद्य ।

२– साउथ इण्डिया इन दि रामायन; बी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार, पृ० २०

३– दैनिक आज १९ अगस्त १९७७ पृ० ३, श्रीऋतुधर के लेख से उद्धृत

कृष्ण की पत्नी कालिन्दी नाग बंश से ही संबंधित थी और कृष्ण ने यमुना में जब कालिनाग को विजित किया था तो उसने भेंट स्वरूप कालिन्दी को कृष्णार्पित किया था ।[१]

२.२.६. **देव जाति**–देवगण वस्तुतः आर्य जाति के ही पूर्वज थे । ऐसा प्रतीत होता है कि मानस के ये देवगण भी प्राचीन कर्मकाण्ड प्रधान वैदिक धर्म और संस्कृति के अवशिष्ट चिह्न हैं ।[२]

मानस के अनुसार देवता स्वार्थी, कुटिल, कुचाली और खल हैं ।[३]

विद्वानो का विचार है कि देव, आर्य, वानर और राक्षस, इन चार जातियों का इतिहास बाल्मीकि रामायण में सुरक्षित है ।[४]

देवगण और आर्य जाति के एक दल ने राक्षसो के विरुद्ध संगठित होकर युद्ध किया था, जिसमें चतुराई से वानर संघ को भी मिला लिया गया था ।[५] मानस में इन जातियों के चरित्र पर पौराणिकता का घना आवरण पड़ जाने के कारण उनके ऐतिहासिक यथार्थ का दर्शन कम हो पाता है ।[६]

रामायण में वर्णित देवता, वानर, राक्षस, पक्षी ऋक्ष, दानव, भूत, पिशाच, गन्धर्व, किन्नर, दैत्य, असुर, सर्प, नाग, विद्याधर, मृग, सिद्ध आदि सभी मनुष्य ही थे । बन्दर, रीछ गृध्र इत्यादि निश्चय ही पशु पक्षी नहीं थे ।

राक्षस, दैत्य और दानव भी देवों तथा मनुष्यों के समान ही सभ्य, सुसंस्कृत तथा देखने परखने में उनके समान ही सुन्दर थे । इन सभी के बीच खुले रूप में विवाह-शादियों के सम्बन्ध होते थे ।

१–राक्षस कन्या शूर्पणखा राम से विवाह चाहती थी ।

२–रावण की माँ राक्षस वंशी थी यद्यपि उसके पिता सुप्रसिद्ध वैदिक ऋषि थे ।[७]

इन्हीं तथ्यों को द्वारकाप्रसाद मिश्र ने भी स्वीकार किया है ।[८]

१– वही, दैनिक आज पृ० ५ ।

२– मानस दर्शन, श्रीकृष्ण लाल, पृ० ८५ ।

३– मानस (२१२, २१६।१८, २६५, २९४, २९५ ३०१–३०१।१ ।)

४– दि रिडिल आफ दि रामायण ,सी० वी० वैद्य अध्याय ४ वा० का० पृ० ३६९

५– वा० का० सातवलेकर पृ० ३७०–७२ ।

६– वही वाल्मीकि और तुलसी, पृ० २५४ ।

७– रामचरित मानस चतुश्शती १९७४ ले० सन्तश्याम पाराशर, शीर्षक रामायण का राष्ट्रवादी स्वरूप ।

८– कादम्बनी १९७९ अंक ३८ ।

अस्तु निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि मानस में वर्णित मानव कृत्य करने वाली सभी जातियाँ मानवतेर नहीं थी। ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि एवं वैज्ञानिक विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट हो गया है।

२.३.०. **पात्र (व्यक्ति)**–मानस के अनेक व्यक्तियों में से नर-वानर एवं राक्षस जातियों का प्रतिनिधित्व करने वाले राम, हनुमान एवं रावण का वैज्ञानिक चिन्तन परक अनुशीलन भी यहाँ प्रस्तुत किया जा सकता है।

२.३.१. **राम**–महापुरुष राम का जिस समय आर्विभाव हुआ था उस समय क्षत्रिय लोग उत्पाती हो गये थे। महाभारत की औंर्वऋषि की उत्पत्ति की कथा से इस कथन का रहस्य अच्छी तरह समझा जा सकता है। छोटे-छोटे भूमि खण्ड के लिए क्षत्रिय आपस में लड़ते थे। उधर ब्राह्मणों ने आर्य संस्कृति तथा ज्ञान-विज्ञान के प्रचार और प्रसार के लिए तपो वनों में विश्व–विद्यालय खोलकर शासन के कार्य से उदासीनता-सी धारण कर ली थी। उद्यत क्षत्रियों को इसीलिए उनकी उपेक्षा का निर्बंध अवसर मिल गया था। फलत: वे कभी किसी ऋषि की गायें चुरा लेते, तो कभी किसी का सिर ही काट डालते थे। राष्ट्रीयता तो उस समय विलुप्त-प्राय थी। यही अवलोकनीय है कि पूर्वोत्तर प्रदेश के नरेश (विदेह राज) के यहाँ जब स्वयंबर हुआ तो पश्चिमोत्तर प्रदेश के नरेश दशरथ के यहाँ निमंत्रण तक न गया। भारत की ऐसी अस्त-व्यस्त स्थित से भरपूर लाभ उठाने की चेष्ठा यदि किसी ने की तो उपनिवेशाकांक्षी लंकाधिपति रावण ने। वह भौतिक विज्ञान का महापण्डित था, विद्युत शक्ति (इन्द्र) का तो वह स्वामी हो चुका था। उसने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करके यहां की स्थिति का निरीक्षण किया। उसने देखा कि यहाँ आर्य लोग अपने को मनु की सन्तान अथवा 'मानव' कहते हैं और यहाँ के श्यामल मूल निवासियों को आत्मसात करने के बदले उन्हें दनु की सन्तान अथवा 'दानव' कहकर दूर-दूर रखते है। यही नहीं, जिन श्याम वर्ण के मूल निवासियों ने उनकी आर्य संस्कृति के कई तत्व स्वीकार करके उनसे मैत्री भी स्थापित कर ली है, उन्हें भी वे पूरा मानव न समझ कर वानर (मनुष्य कोटि में संदिग्ध जीव) समझते हैं। इस परिस्थिति से लाभ उठाकर उसने सबसे पहले दानवों को अपने पक्ष में मिलाया और उनके सहयोग से आर्य संस्कृति के केन्द्र, तपोवनस्थ विश्वविद्यालयों को ही उड़वा देना चाहा। वह जानता था कि नरेश लोग यों ही तपोवनों से उदासीन हैं। इस लिए जब तक शहरों पर धावा न बोला जायेगा, तब तक शायद वे उसके विरुद्ध लोहा लेने के लिए सम्मिलित नहीं होंगे। दानवों को मिलाने के बाद उसने बालि आदि वानर नरेशो से मित्रता की। फिर कुछ आर्य नरेशों को भी अपने पक्ष में सम्मिलित करने के अभिप्राय से वह बिना बुलाये ही मिथिला के स्वयंबर में सम्बन्ध

स्थापन की इच्छा से जा पहुंचा। वहाँ उसने देखा कि उसके समान ही पराक्रमी दूसरा अनार्य नरेश वाणासुर कुछ ऐसी ही इच्छा लेकर पहले से ही पहुँचा हुआ है। न रावण पीछे हटना चाहता था न बाणासुर। अन्त में दूरदर्शी रावण ने सोचा कि आर्यों के आगे अनार्य नरेशों का इस प्रकार लड़कर शक्तिहीन बन जाना भी ठीक नहीं और आर्य संबंध स्थापन का सेहरा प्रबल बाणासुर के सिर बाँधा जाना भी ठीक नहीं। इसलिए वह स्वयं भी हट गया और बाणासुर को भी वहाँ से हटा लाया। इधर ब्राह्मण लोग भी इस परिस्थिति से कुछ सजग हो चले थे। उनमें भी परशुराम जैसे क्रान्तिकारी योद्धा का आविर्भाव हो गया था। परशुराम ने असीम शक्ति संपादन करके क्षुद्र क्षत्रिय नरेशों का संहार किया और इतनी प्रचण्ड शक्ति प्राप्त की कि अवतार की कोटि में भी माने जाने लगे। फिर भी वह सैनिक ही निकले शासक नहीं। इस लिए बार-बार राज काज का दायित्व ब्राह्मणों को देते हुए भी वह बार-बार अकृत कार्य ही बनते गये और भारत का राष्ट्रीय संगठन उनके द्वारा संभव न हो पाया।

विश्वामित्र प्रथम स्वत: राजा रह चुके थे। उन्हें क्षत्रियत्व और ब्राह्मणत्व दोनो का पूर्ण अनुभव था। इसलिए उन्होंने कुशल वैद्य की तरह सदौषधि का अनुसंधान किया और इस कार्य के सम्पादन के लिए सच्चे जौहरी की तरह रामचन्द्र रूपी अमूल्य रत्न को ढूँढ़ निकाला।[१]

अवतार–अवतार बाद के भारतीय सिद्धान्त पर प्रकाश डालते हुए जे० एन० कारपेण्टर कहते हैं कि जब कभी कोई भौतिक या नैतिक संकट विश्व को विकल करता है तब विष्णु इसे व्यवस्थित करने के लिए अपने एक अंश सहित पृथ्वी पर आते हैं, जिससे जीवों की रक्षा के लिए अनुशासन स्थिर रहे। ईश्वर के इस प्रकार के अवरोह को अवतार' कहते हैं। इस क्रिया में विष्णु या तो किसी जीव का रूप धारण करते हैं। अथवा किसी प्रकृत मानव का या फिर पूर्ण मानव का। मानव शरीर में भी वह चमत्कार पूर्ण शक्ति से अभिहित रहते हैं। इन अवतारों में से कुछ के चरित्र पूर्ण लौकिक होते हैं, कुछ के ऐतिहासिक। उनका व्यक्तित्व धीरे-धीरे अलौकिक गुणो की ओर बढ़ता है जब तक कि उसे अवतार स्वीकार नहीं कर लिया जाता। अन्तिम अवतार को छोड़कर सभी अवतार भूतकाल में हुये। अन्तिम अवतार अभी होना है।[२]

भक्त लोग राम को नारायणत्व से नरत्व तक अवतरित मानते हैं और अनेक

१– डॉ० रामकुमार वर्मा

२– थिवोलाजी आफ तुलसीदास, पृ० १०२।

प्रबुद्ध जन उन्हें नरत्व से नारायणत्व तक उन्नत । वे चाहे नारायण हो या नर, उनका सबसे बड़ा गुण है मानवीयता । मनुष्य समाज से विछिन्न नहीं रह सकता । समाज बनता है परिवार से । परिवार की स्थिति भी समाज में रहेगी, भले ही उसका आकार लघु हो जाये । राम समाज के समस्त सम्बन्धों के योग्य और सक्षम आदर्श हैं[1]

अवतार ईश्वर का नहीं होता, विष्णु भगवान का होता है । भारतीय कथा-शास्त्र में स्थान-स्थान पर जिन दशावतार अथवा चौबीस अवतारों का वर्णन आता है, वे अवतार ईश्वर के अवतार नहीं, विष्णु भगवान के अवतार हैं । विष्णु वह शक्ति है, जिसका प्रादुर्भाव अन्याय एवं अत्याचार का नाश करने के लिए होता है । विष्णु का अर्थ है, विजेता के रूप में प्रवेश करने वाला । सूर्य को भी इसी अर्थ में विष्णु, कहा गया है । अन्याय और अत्याचार का विनाश करने वाली शक्ति को भी, इसीलिए विष्णु की उपमा दी गयी है ।

कोई भी महापुरुष पैदा होने के साथ ही अवतार नहीं बन जाता । अवतार जन्म नहीं लिया करते । जन्म लेने के पश्चात् जब कोई महापुरुष बहुत बड़े-बड़े दुष्कर कार्य करता है, जिन कार्यों का कर सकना संसार असम्भव मानता है और वह महापुरुष अपने कार्यो में कृतकार्य हो जाता है, तो जनता प्रसन्न होकर उस महापुरुष को अवतार की उपाधि से विभूषित करती है । अवतार एक ऐसी सम्मान सूचक उपाधि है । जो जनता जनार्दन की ओर से अपने आदर्श को प्रदान की जाती है ।[2]

जब वही अज, अव्ययात्मा, ईश्वर स्वयं जगत के कल्याण के लिए अपनी माया को वशीभूत करके लौकिक देह ग्रहण करते हैं । मानव शरीर में जन्म ग्रहण करते हुए प्रकट होते हैं, सर्वशक्तिमान होकर भी मानवोचित शरीर मन बुद्धि के द्वारा कर्म करते है, तभी उनको अवतार कहा जाता है ।[3]

आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में तुलसी के राम—मानसकार तुलसी के राम अयोध्या के राजा दशरथ और रानी कौशल्या के पुत्र हैं जो वशिष्ठ द्वारा आर्शीवाद प्राप्त एवं श्रृंगी ऋषि के पुत्रेष्टि यज्ञ एवं बन्ध्यता निवरण के फलस्वरूप प्राप्त हुए हैं;[4] इनका जन्म चैत्रमासा की शुक्ल पक्ष की नवमी मध्याह्न में दसरथ के राज

---

१. रामचरित मानस और पूर्वांचलीय रामकाव्य, डॉ० रमानाथ त्रिपाठी, आदर्श साहित्य प्रकाशन, वेस्टसीलामपुर दिल्ली ३१, पृ० ८४ ।

२. वही, रामचरित मानस चतुश्शती ।

३. ईश्वर की सत्ता और महत्ता सम्पा० हनुमान प्रसाद पोद्दार पृ० ११ ।

४. मानस—१।१८८।३–४ एवं १।१९० ।

प्रासाद में होता है, कुछ समय व्यतीत होने पर नाम संस्कार के समय जिनक 'राम'[१] नाम रखा जाता है।

यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् राम भाइयों सहित गुरु गृह में अध्ययनार्थं जाते हैं और बहुत कम समय में उनकी तत्कालीन पढ़ाई जाने वाली सभी विद्यायें आ जाती हैं।[२] प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के उपरान्त वह विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा एवं उच्च शिक्षा के लिए उनके शिक्षालय में जाते हैं। वहाँ वह विशेष एवं उच्च शिक्षा प्राप्त कर अनेक अस्त्र-शस्त्र भी प्राप्त करते हैं। वह आश्रम को निरापद करके अहल्या का उद्धार (कल्याण) करते हुए जनकपुर में धनुष यज्ञार्थ प्रवेश करते हैं।[३]

इस प्रकार राम के बालमीकि शिक्षा, विश्वामित्र दीक्षा एवं वशिष्ठ कुल गुरु होते हैं।

जनकपुर में भी राम के कार्य उन्हें कदाचित मानवीय स्तर से ऊँचा नहीं उठाते हैं। वहाँ भी उनकी मानव सुलभ चेष्टायें ही प्रदर्शित हैं फिर चाहे लक्ष्मण को जनकपुर देखने की स्वाभाविक इच्छा को वह जान गये हों, या स्वयं की स्वाभाविक इच्छा पूर्ति के लिए गुरु से आज्ञा प्राप्त कर लक्ष्मण के साथ जनकपुर देखने के इच्छुक हों जिन्हें अति मानवीय या परामनोवैज्ञानिक भले ही कहा जाय।

जनकपुर वासी राम-लक्ष्मण को दशरथपुत्र के रूप में ही जानते हैं क्योंकि राजा से उन्हें यही समाचार प्राप्त हुआ है।[४] वहाँ की सखियाँ भी दशरथ पुत्र के रूप में उनका परिचय देकर कौशिक मख का रक्षक बताती हैं, जिन्होंने अनेक राक्षसों का बध किया है।[५]

---

१. सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा ।। १/१९६/३

२. गुरु गृह गए पढ़न रघुराई।
अलप काल विद्या सब आई। १/२०३/२

३. मानस १/२१७/३।

४. देखन नगरु भूप सुत आए।
समाचार पुरबासिन्ह पाए ।। १/२१९/१

५. ए दोऊ दसरथ के ढ़ोटा।
बाल मरालन्हि के कल जोटा ।।
मुनि कौसिक मख के रखवारे।
जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे ।। १/२२०/२
एक कहइ नृपसुत तेइ आली।
सुने जे मुनि सँग आए आली ।। १।२२८।२

वह मालियों से पूछकर ही पुष्प वाटिका में पुष्प चयन करते हैं ।[1] गिरिजा पूजन के लिए आई हुई सीता को देखकर राम के हृयोद्‌गार[2] भी सामान्य मनुष्य के स्तर से ऊँचे नहीं कहे जा सकते हैं। फिर सीता को देखकर उनकी सुन्दरता पर मुग्ध होना[3] तथा लक्ष्मण से सीत का परिचय[4] देते हुए अन्यथा अपनी मानवीय सहज अनुभूति[5] स्वीकार करना आदि उदाहरण प्रमाण रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। लक्ष्मण से बातें करते हुए भी उनका मन सीता के रूप पर लुब्ध हैं।[6]

फिर संध्या के समय पूर्व दिशा में सुन्दर चन्द्रमा को देखकर राम का मन पुनः विचलित हो जाता है तथा पूजा पाठ के स्थान पर सीता के मुख की सुन्दरता का वर्णन करने लेगते हैं जो मानव मन की सहज प्रकृति है।[7] यहाँ भी राम सहज मानव के रूप में ही प्रस्तुत हुए हैं।

विश्वामित्र जी स्वयं राम को ईश्वर नहीं मानतें हैं। वह राम से कहते हैं कि

---

१. चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन ।
लगे लेन दल फूल मुदित मन ॥ १/२२७/१

२. कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि ।
कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि ॥
मानहुँ मदन दुदुंभी दीन्ही ।
मनसा विश्व बिजय कहँ कीन्ही । १/२२९/१

३. देखि सीय सोभा सुखपावा ।
हृदयँ सराहत बचनु न आवा ॥ १/२२९/३

४. तात जनक तनया यह सोई ।
धनुष जग्य जेहि कारन होई ॥ १/२३०/१

५. जासु बिलोकि अलौकिक सोभा ।
सहज पुनीत मोर मन छोभा । १/२३०/२

६. कहत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान ।
मुख सरोज मकरन्द छबि, करह मधुप इव पान ॥ २/२३१

७. प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा ।
सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा ॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं ।
सीय बदन सम हिमकर नाहीं । १/२३६/४
जनम सिंधु पुनि 'बुन्धु, बिषुदिन मलीन सकलंक ।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक ॥ १/२३७

जनक जी ने बुला भेजा है[1] चलकर सीता का स्वयंवर देखना चाहिए। देखें ईश्वर किसको बड़प्पन देता है।[2] यदि राम को ईश्वर मानते तो विश्वामित्र कहते कि तुम इस बड़प्पन को किसे सौंपते हैं।

तुलसी लिखते हैं कि बहादुर लोग राम को बहादुर रूप में, कुटिल लोग भयानक मूर्ति के रूप में असुर काल के समान, पुरवासी नर भूषण रूप में, विद्वान विराट रूप में, जनक और उनकी पत्नियाँ बालरूप में तथा योगी जन शान्त, शुद्ध सम तथा परमतत्व रूप में और हरिभक्त उन्हें अपने इष्ट देव के रूप में देखते हैं।[3]

खर दूषण एवं बालि-बध, सीता हरण, सूर्पणखा के नाक कान कटवाना आदि उन्हें साधारण मानव की कोटि में ही प्रस्तुत करता है। राम साधारण मानव की

---

१. सतानंद पद बंदि प्रभु बैठै गुरु पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउतब पठवा जनक बोलाइ। २/२३९

२. सीय स्वयंबरु देखिअ जाई।
ईसु काहि धौं देइ बड़ाई ॥ १/२३९/१

३. जिन्ह के रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥ १।२४०।२

देखहिं रूप महारन धीरा।
मानहुँ बीर रसु धरे सरीरा ॥

डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी।
मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥ १।२४०।३

रहे असुर छल छोनिप वेषा।
तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।

पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई।
नर भूषन लोचन सुखदाई ॥ १।२४०।४

बिदुषन्ह प्रभु बिराट मय दीसा।
बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥

जनक जाति अवलोकहिं कैसे।
सजन सगे प्रिय लगाहि जैसे ॥ १।२४१।१

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥

जोगिन्ह परम तत्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥ १।२४१।२

हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता ॥ १।२४१।३

भाँति क्रोध भी करते है ।[१] सीताहरण के अनन्तर का करुण विलाप तो उन्हें मानवेतर सिद्ध नहीं करता ।[२]

तुलसी इन सम्पूर्ण घटनाओं का मनुज चरित कह कर समाधान करते हैं ।

राम का सैन्य संगठन, सेतु निर्माण लंका पर चढ़ाई, विभीषण को शरणागति, अपने सेना नायकों से मंत्रणायें, लक्ष्मण शक्ति पर विलाप, मेघनाद द्वारा नागपास में बँधना,[३] रावण शक्ति से मूछित होना[४] विभीषण की सहायता से रावण पर विजय प्राप्त करना[५] आदि प्रसंग उनके मानव रूप को ही प्रमाणित करते कहे जा सकते हैं ।

राम का राज सिंहासन पर बैठना और साधारण राजा की भाँति अन्य कार्य कलाप करन गुरु, द्विज मुनि और पुरवासियों से कहना कि यदि मैं कोई अनीति की बात कहूँ तो भय भुलाकर मुझे रोक देना ।[६] उन्हें विवेकशी नर भूप ही सिद्ध करता है ।

पुनश्च राम द्वारा सन्तानोत्पति ऐसी घटना है, जिसे किसी भी प्रकार ईश्वरीय नहीं माना जा सकता । प्रजनन प्रक्रियागत मैथुनीय सृष्टि साधारण मानवीय चरित्र ही है ।

मानसकार के शब्दों में–

दोइ सुत सुन्दर सीताँ जाए ।
लव कुस बेद पुरानन्ह गाए ।। ७/२४/३

इस प्रकार मानस की विभिन्न घटनायें राम के मानवीय स्वरूप को ही चित्रित करनी हैं जिनका वैज्ञानिक दृष्टि कोण से विश्लेषण किया जा सकता है ।

डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र ने अपने लेख, "हिन्दी साहित्य पर राम साहित्य का प्रभाव"[७] में तुलसी के कथन का आश्रय लेते हुए स्पष्ट स्वीकार किया है कि चाहे राम प्रभु के अवतार (जगदीश) रहे हों, चाहे भारत के आदर्श नरेश (महीश) किन्तु वह हमारे ऐतिहासिक राष्ट्रीय महापुरुष रहे हैं, इसमें कोई सन्देह न मानना

१. हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृग नैनी ।। ३।२९।३
२. जेहि सायक मारा मैं बाली ।
तेहिं सर हतौं मूढ़ कँह काली ।। ४।१७।३
३. ब्याल पास बस भए खरारी । स्वबस अनन्त एक अविकारी ।। ६।७२।६
४. लागि सक्ति मुरुछा कछु भई । प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलाई ।। ६।९३।२
५. नाभिकुंड पियूष बस याकें । नाथ जिअत रावनु बल ताकें ।।
सुनत बिभीषन बचन कृपाला । हरषि गहे कर बान कराला ।। ६।१०१।३
६. जौं अनीति कछु भाषौं भाई । तो मोहि बरजहु भय बिसराई ।। ७।४२।३
७. रामचरित मानस एक विश्लेषण, पृ० ३ ।

चाहिए। वह सामान्य नहीं किन्तु अत्यन्त अनुकरणीय महापुरुष रहे हैं। तुलसीदास ने कहा है–

जौ जगदीश तौ अति भलो, जौ महीश तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम चरण अनुराग।।

डॉ० ब्रजबासी लाल श्रीवास्तव जी भी प्रकारान्त से राम को नर स्वरूप स्वीकार करते हुए लिखते हैं–

'गोस्वामी जी का दुसरा प्रयास, नर रूप और हरि रूप के समन्वय में यह रहा कि राम कथा काअरुण, करुणा करुण विलक्षण स्थिति को प्राप्त हो जाय, करुण भी हो करुण भी हो और इस प्रकार विलक्षण रूप प्रकट हो सके। भगवान राम नर रूप में हैं, तथा नर रूप के अनुकूल वह मानव शोकानुभूति का यथोचित अभिनय करते हैं किन्तु गोस्वामी जी इस सब को भगवान की लीला बताकर अरुण रूप दे देते हैं।[१]

तुलसी ने अपने मानस में राम को एक अदर्श चरित्रवान व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है जिसे वह पुरुषोत्तम की संज्ञा से अभिहित करते हैं। सुधी एवं मानस प्रेमी श्री जनार्दन दत्त शुक्ल के मतानुसार[२] रावण-राम संघर्ष में शक्ति एवं चरित्र के आधार पर राम की विजय हुई। जब शक्ति चरित्रवान के हाथों में होगी तो समाज का कल्याण होगा और उन्नति होगी। जब शक्ति चरित्रहीनों के हाथ में चली जायेगी। तो वह सभी को नष्ट कर देगी, स्वयं उन्हें भी जैसा कि रावण का नाश हुआ। इसलिए चरित्र प्रधान है। चरित्र ही ऐसी चीज है। जो शक्ति को अच्छे बुरे में परिवर्तित कर देती है।,

राम में निहित उदात्त मानव जीवन मूल्य शाश्वत हैं। उनका जितना महत्व सहस्र वर्ष पूर्व था, उतना ही आज है। आज का जो संघर्ष शील मनुष्य टूटता जा रहा है, उसको टूटने से बचाने के लिए राम ही सबसे बड़ा भावात्मक सम्बल हैं, क्योंकि वह सारा द्वन्द्व भावात्मक है, इसलिए अवलम्ब भी भावात्मक चाहिए।

---

१. करुण रस डॉ० व्रजवासी लाल श्रीवास्तव हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली ६, सं० १९६१, पृ० ३१४।

२. श्री रामचरित मानस चतुश्शती समारोह समिति उ० प्र० अध्यक्षीय भाषण, प्रथम अधिवेशन, श्री जनार्दन दत्त शुक्ल जे० के० इन्स्टीट्यूट, लखनऊ विश्वविद्यालय, जुलाई १५.१६, १९७२, पृ० २७।

राम जीवन की श्रेष्ठता और उत्कृष्टता के उच्चतम मानदण्ड हैं जिनकी प्राप्ति के लिए मानव जीवन के प्रयास भी शाश्वत हैं। इसलिए राम जीवन में जितना पुरातन का बोध होता है उतना ही आधुनिकता का भी। राम चिर पुरतन हैं और चिर नवीन भी। सुदूर बिन्दुओं का ऐसा एकीकरण तथा समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। इस समन्वय का दर्शन आज का सबसे बड़ा आधुनिकता बोध है।[१]

इस प्रकार तुलसी ने राम के चरित्र को 'नरत्व' से प्रारम्भ करके नारायणत्व के उदात्त लक्ष्य की ओर अग्रसर कराकर, उसे अनन्तशील, शक्ति और सौन्दर्य से समन्वित कर दिया। यही तुलसी के चरित्र चित्रण की वैज्ञानिक भावभूमि है।

तुलसी, राम (पदार्थ) से अधिक, राम के नाम को महत्व प्रदान करते हुए[२] उनके गुणों को अमरता प्रदान करना नहीं भूलते। इस प्रकार गुणों से 'राम' और 'राम' से गुण अमरत्व प्राप्त करते हैं। यही उनके निर्गुण और सगुण के समन्वय का वैज्ञानिक आधार है जो राम को जन-जन का पूज्य एवं आराध्य बना देता।

अस्तु निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि तुलसी के राम, नर होते हुए भी मानव मनीषा द्वारा निरूपित वैज्ञानिक भाव भूमिगत महत्तम सत्ता, नारायण हैं।

२. ३. २. **हनुमान**–एक सुविख्यात बानर हैं जो सुमेरु के केसरिन नामक बानर राजा के पुत्र एवं किष्किन्धा के बानर राजा सुग्रीव के अमात्य थे। एक कुशल एवं सम्भाषण चतुर राजनीतिज्ञ वीर सेनानी एवं निपुण दूत के रूप में इनका चरित्र चित्रण बाल्मीकि रामायण[३] में प्रस्तुत किया गया है।

रावण शब्द की भांति 'हनुमत' एक द्रविड़ है शब्द जो आणमन्दी अथवा आणमन्ती का संस्कृत रूप है। अण का अर्थ है 'नर' 'मन्दी' का अर्थ है 'कपि' इस प्रकार एक नर-बानर के प्रतीक रूप में 'हनुमत्' की कल्पना सर्व प्रथम प्रसृत हुई। इसी नर-बानर को आगे चलकर देवता स्वरूप प्राप्त हुआ और राम एवं लक्ष्मण के समान हनुमत् भी एक देवता माने जाने लगे।

कहते हैं एक बार इन्द्र ने इन पर वज्र का प्रहार किया जिससे इनकी ठोढ़ी

---

१. मानस समाचार–वर्ष ६ अंक २-३ नवम्बर दिसम्बर ७८ संपा० श्री गोरे लाल शुक्ल लेख 'भारतीय जीवन मूल्यों प्रतीक राम' ले० श्री लल्लन प्रसाद व्यास, पृ० ४४।

२. मानस १।१९।१ से १।२७।१ तक

३. शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञाना नय साधनम।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनुमति कृतालयः। ७।३५।३

टेढ़ी हो गयी तथा यह इस सन्दर्भ में हनुमान नाम से विख्यात हुए।[1] वस्तुतः इनका वास्तविक नाम अब भी शोध का विषय है।

गुण वैशिष्ट्य–हनुमत् की इस देवता विषयक धारणा में, इनको बानर मानना सबसे बड़ी भूल कही जा सकती है। सुग्रीव बालि आदि के समान यह बानर जातीय अवश्य थे किन्तु बन्दर न थे जैसा कि आधुनिक जनश्रुति में प्रचलित हो गया है। वाल्मीकि रामायण में निर्दिष्ट अन्य वानर जातीय वीरों के समान यह सम्भवतः उन आदिवासियों में से थे, जिनमें वानरों को देवता मानकर पूजा की जाती थी।

मानस में[2] पवन पुत्र हनुमान की बन्दना की गयी है। हनुमत के व्यक्तित्व की इस पृष्ठभूमि को ओझल कर उन्हें एक सामान्य वानर मानने से उनके स्वरूप। पराक्रम एवं गुण वैशिष्ट्यों की अत्यधिक विकृति हुई है, जो उसके सही स्वरूप एवं गुण वैष्ट्यों को धुँधला सा बना देती है।

भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश के अनुसार यह सुमेरु के राजा केसरिन एवं गौतम कन्या अञ्जना के पुत्र थे। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी या चैत्र पूर्णिमा को हनुमान का जन्म दिन माना जाता है।

राम संबंधी प्रारम्भिक आख्यान काव्य में हनुमान को एक वानर गोत्रीय आदिवासी और सुग्रीव के बुद्धिमान एवं पराक्रमी मंत्री के रूप मे प्रस्तुत किया गया था। आदि काव्य रामायण में इन्हें कपि कुंजर तथा वायुपुत्र भी माना जाने लगा था। प्रचलित रामायण में वानरत्व विषयक विशेषणों के बाहुल्य से उनके वास्तविक वानरत्व की धारणा बनने लगी। तत्पश्चात् कपि योनि में रुद्रावतार और राम के आदर्श भक्त के रूप में उनकी पूजा होने लगी।[3]

हनुमान की विस्तृत जीवन कथा वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड (सर्ग ३५–३६) तथा किष्किन्धाकाण्ड (सर्ग ६६) में दी गई है जो इस परवर्ती विकास की प्रेरक है। तुलसी साहित्य में राम के बाद हनुमान की चरित कथा ही सबसे अधिक[4] है। वह मानस में भी सुन्दरकाण्ड के नायक हैं।[5]

---

१. पौराणिक कोश, राणाप्रसाद शर्मा, वाराणसी ज्ञान मण्डल लि०, प्र०सं० २०२८, वाराणसी–१, पृ० ५४६।

२. अतुलित बल धामं हेमशैलाभ देहं
दनुज बन कृशानु ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकल गुणनिधानं बानराणामधीशं
रघुपति प्रिय भक्तं वातजातं नामामि। ५ श्लोक ३।

३– हिन्दी अनुशीलन : धीरेन्द्र वर्मा, विशेषांक (प्रयाग) डॉ० फादर कामिल बुल्के का लेख, पृ० ३४२।

४– चिन्तामणि भाग १, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३४।

५– वाल्मीकि और तुलसी-साहित्यिक मूल्यांकन–डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० १८५।

मानस संदर्भ कोष[1] में उल्लखित है कि हनुमान राम के परम प्रिय भक्तों में से एक हैं। शिवपुराण में उन्हें महादेव का अवतारी और चिरंजीवी[2] माना है। बंगला के मंगल ग्रन्थों और तन्त्रों में इनकी शक्ति रूप में भी पूजा दिखाई गई है।[3] रामायण के बालकाण्ड में विष्णु के दशरथ-पुत्र के रूप में अवतार ग्रहण करने के अवसर पर ब्रह्मा ने सभी प्रमुख देवताओं को वानर रूप धारण करने की आज्ञा दी। इस आज्ञा को शिरोधार्य करके ही इन्द्र ने बालि, सूर्य ने सुग्रीव और वायु ने हनुमान पैदा किया।[4] स्कन्ध पुराण[5] में तो स्वयं वायुदेव को ही अंजना के गर्भ से हनुमान रूप में उत्पन्न कहा गया है।

इनकी उत्पत्ति की कथा वाल्मीकि रामायण, आनन्द रामायण, शिवपुराण, पद्मपुराण तथा स्कन्ध पुराण में विस्तार से दी गयी है। हनुमान के महत्कृत्य इस बात के सूचक हैं कि एक आदिवासी जाति के महा-पुरुष थे जिनके विषय में स्वतंत्र आख्यान प्रचलित रहे होंगे। उनकी यशस्विनी जीवन गाथा लोक कथाओं के पालने में झूलने के बाद महती रामकथा के आश्रित हो गयी है।[6]

मानस की प्रस्तुत अर्द्धालियां इस सन्दर्भ में दृष्टव्य हैं–

१– कहहु कवन मैं परम कुलीना।
कपि चंचल सबही बिधि हीना॥ ५।६।४

२– एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥ ४।२

३– हम जो कहा यह कपि नहिं होई।
बानर रूप धरे सुर कोई॥ ५।२५।२

मानस में वर्णित उनके सम्पूर्ण कार्यकलाप (पूंछ के माध्यम से लंकादहन एवं युद्ध में पूंछ के प्रयोग की घटनाओं को छोड़कर) उन्हें मानवेतर नहीं सिद्ध करते। उनका आरिष्ठ प्रतिरूपण,[7] विज्ञान सम्पन्नता आदि[8] भी उन्हें मानव वंशीय

१– हनुमान की उत्पत्ति कथा–डॉ० वागीशदत्त पाण्डेय, पृ० ३२१।
२– शतरुद्र संहिता, अध्याय २०।
३– हि० विश्व कोश, भाग २४, पृ० ६४४–४६।
४– वा० रा०, बा० का०, सर्ग १७।
५– स्कंध पुराण, वैष्णव खण्ड, भूमि वराह खण्ड, अध्याय ३९
६– वाल्मीकि और तुलसी, डॉ० अग्रवाल पृ० ९०।
७– छद्म परिचय, अपने को अन्य व्यक्ति बताकर छल करना।
विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ।
माथ नाइ पूंछत अस भयऊ॥ ४।०।३।
८– मानस, १। श्लोक ४।

ही सिद्ध करती है।

इन्हीं वनवासी हनुमान के चरण पकड़ कर आज करोड़ों व्यक्ति शान्ति का अनुभव प्राप्त करते हैं।[1]

२.३.३.–**रावण**– रामायण[2] के अनुसार ऋषि कुल में प्रादुर्भूत रावण ने सुमाली की पुत्री कैकसी की कोख से विश्रवा के द्वारा जन्म लिया। जबकि महाभारत के अनुसार[3] विश्रवा के तीन दासियाँ थीं, पुष्पोत्कटा, मालिनी और राका। इनके क्रमश: रावण एवं कुंभकरण, विभीषण तथा खर एवं सूर्पणखा उत्पन्न हुए।

रावण लोक त्रासक, साम्राज्य विस्तार आतंक प्रसारक एवं असत् का अधीश्वर होकर अपने अत्याचार से समस्त त्रैलोक में हड़कम्प मचाये हुए था। रावण ने समुद्र से घिरी अपनी राजधानी को विशाल विश्व से एकत्र विपुल विभूतियो से ऐसा सुरक्षित, ऐसा श्री सम्पन्न एवं ऐसा आकर्षक बना लिया था कि वह सोने की लंका कही जाती थी। उसकी कल्पना आज के लन्दन, पैरिस, न्यूयार्क मास्को या पेकिंग से की जा सकती है।[4]

कहा जाता है कि रावण के दश सिर थे। इस कल्पना का भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा सकता है। दक्षिण भारत की एक आटविक जाति 'कुई' कहलाती है उसकी बोली 'कुई' है जो द्रविड़ परिवार के अन्तर्गत आती है। इसी भाषा का शब्द 'दशगीव (दशग्रीव नहीं) है जिसका अर्थ होता है पीड़ा देने वाला। रावण शब्द इसका संस्कृत अनुवाद है गीव प्रत्यय वाले इस भाषा के कुछ और शब्द यहाँ अवलोकनीय हैं।

यथा–

वेयगीव = मारने वाला, गिराने वाला
ओवगीव = लेने वाला
वण्डीगीव = धोखा देने वाला

'दश' का अर्थ होता है पीड़ा। कुई बोली में इसी से बना एक दूसरा शब्द दश असि' है। 'असि' प्रत्यय व्यक्ति वाचक संज्ञाओं के अन्त में लगता है इस 'असि' का अर्थ है पीड़क। संस्कृत में 'दशगीव' 'दशग्रीव' बना और दशासि' दशस्य' बना।

१– तुलसी सन्दर्भ और दृष्टि, सम्पादक डॉ० केशवप्रसाद सिंह, लेख–डा० युगेश्वर काशी विद्यापीठ।

२– वा० रा० ७।९ १–३५।

३– महाभारत, वनपर्व, अध्याय २७५, ७–८।

४– मानस की महिलायें : श्री रामानन्द शर्मा, पृ० १७।

दशगीव का अर्थविकास नये अर्थ में हुआ और 'दश' के मूल 'पीड़ा सूचक अर्थ के स्थान में संख्या वाची 'दश' अर्थ ग्रहण हो गया। इस प्रकार रावण के दश सिर नहीं थे।[1]

रावण के जन्म के सम्बन्ध में एक और कथा रामायण में आती है। सुमाली ने राजनीति से प्रेरित होकर संतति विषयक नया प्रयोग किया। उसने अपनी पुत्री कैकसी को जो रूप यौवन सम्पन्न थी, विश्रवा के पास विवाह प्रस्ताव लेकर भिजवाया। उस समय विश्रवा यज्ञ कर रहे थे। इस शुभ कार्य संपन्नता की बेला में उन्होंने पहले इस प्रस्ताव को अस्वीकार करना चाहा होगा। किन्तु उसके सामने विश्व सुन्दरी तरुणी खड़ी थी जो उनके पौरुष को ललकार रही थी। उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर वे निर्वीर्यता या अशिष्टता का परिचय भी नहीं देना चाहते थे। उस युग की परिस्थिति के अनुसार उनकी अस्वीकृति धर्म विरुद्ध भी होती। उन्होंने उसके प्रस्ताव को स्वीकार तो कर लिया किन्तु कहा, हे क्षीण कटियुक्त तरुणि ! तुम मुझे स्वीकार्य तो हो, किन्तु मैं इतना संकेत कर देना चाहता हूँ कि तुम मेरे पास अनुपयुक्त वेला में उपस्थित हुई हो, अतएव तुम्हारे गर्भ से जो पुत्र होंगे उनकी आकृति दारुण होगी। वे दारुण आकृति वाले राक्षसों के साथ रहेंगे एवं क्रूर आचरण करने वाले होंगे।[2]

भावी दारुण पुत्रों की कल्पना मात्र से ही कैकसी बहुत निराश हुई तथा उसके मन में घोर विरक्ति आई। किन्तु इसका उपाय भी तो नहीं था। विश्रवा उससे यह भी, कहते हैं कि अन्तिम पुत्र धर्मात्मा प्रकृति का होगा। उसके आचरण पिता के अनुकूल होंगे।

इस प्रकार रावण के रूप में प्रथम अवांछित पुत्र का जन्म हुआ, उसके दश सिर और बीस भुजाये थी। दाँत हाथी के दांत के समान उठे हुए थे और शरीर काला स्याह था। ताम्रवर्ण के होठ और विकराल मुख था। उसके सिर के बाल भी चमकीले थे।[3]

१– तुलसी परिशीलन (स्मृति ग्रन्थ) संपा० बाबूलाल गर्ग डॉ० ना० वी० गोपालव का लेख– 'क्या रावण के दश सिर थे ?'

२– लंका की खोज : डॉ० हीरालाल शुक्ल प्रथम, संस्करण १९७७, रचना प्रकाशन इलाहाबाद, पृ०–३२७।

३– एव मुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित ।
जनयामास वीभत्सं रक्षोरूपं सुदारुणम् ॥
दशग्रीव महादृष्टं नीलाञ्जतचयोपमम् ।
ताम्रोष्ठं विशंति भुजं महास्यं दीप्त मूर्धजम् ।
–वा० रा०, उत्तर का०, सर्ग ९, श्लोक २८–२९

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रावण को पुलस्त्य कुल में उत्पन्न बताया है। तीनों भाइयों ने उग्र तप किया, जिससे प्रसन्न होकर स्वयं विधाता ने उन्हें भिन्न-भिन्न वरदान प्रदान किये। अपार शक्ति को पाकर रावण अत्याचार करने लगा। उसके मन में हीन ग्रन्थि का उदय हुआ और इस प्रकार वह आश्रम संस्कृति का विध्वंसक बन कर निरंकुश हो गया। कुंभकरण इसका अनुयायी बना जबकि विभीषण भगवत् भक्त विनम्र मेधावी और सदाचारी रहा। एक ही पिता से उत्पन्न तीनों भाई पृथक्-पृथक् गणों से युक्त हुए।[1]

तरुणावस्था प्राप्त करने पर तीनों के विवाह भी हो गए। मय तनया मन्दोदरी रावण की (वैरोचन की पौत्री अर्थात् बाळि की बेटी की बेटी) वज्र ज्वाला कुंभकरण की तथा गंधर्व राज शैलूष की पुत्री सरमा विभीषण की अर्धांगिनी बनी।

१— काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा।
भयेउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुज दंडा।
रावन नाम वीर बरिबंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा।
भयेउ सो कुंभकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू।
भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥
नाम बिभीषन न जेहि जग जाना।
विष्नु भगत बिग्यान निधाना॥
रहे जेसुत सेवक नृप केरे।
भए निसाचर घोर घनेरे॥
कामरूप खल जिनस अनेका।
कुटिल भयंकर बिगत बिबेका॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी।
बरनि न जाहि बिस्व परितापी॥
उपजे जदपि पुलस्त्य कुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस, भए सकल अघरूप॥ १।१७५।१ से १।१७६
तथा—कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई।
परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥
गयेउ निकट तप देखि बिधाता।
मांगहु बर प्रसन्न मैं ताता॥

विभीषण को छोड़कर सभी ने असद् आचरण को प्रमुखता दी ।

रावण के भय से दुखी देवताओं ने गिरिकन्दराओं की शरण ली। उसने सभी को वशवर्ती बनाकर दश दिशाओं में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया । दश

करि बिनती पद गहि दससीसा ।
बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा ॥
हम काहू के मरहिं न मारें ।
बानर मनुज जाति दुइ बारें ।
एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा ।
मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा ॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहि गयऊ ।
तेहि बिलोकि मन बिस्मय भयऊ ॥
जौं एहिं खल नित करब अहारू ।
होइहि सब उजारि संसारू ॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी ।
मागेसि नीद मास षट केरी ॥
गए बिभीषन पास पुनि, कहेउ पुत्र बर मागु ।
तेहिं मांगेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ॥ १।११७
रावन आवत सुनेउ सकोहा ।
देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा ॥ १।१८१।३
दिगपालन्ह के लोक सुहाए ।
सूने सकल दसानन पाए ॥
रन मद मत्त फिरइ जग धावा ।
प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा ॥ १।१८१।५
पुनि पुनि सिंह नाद करि भारी ।
देइ देवतन्ह गारि पचारी ॥ १।१८१।४
रबि ससि पवन बरुन धनधारी ।
अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥ १।१८१।५
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा ।
हठि सबही के पंथहि लागा ॥ १।१८१।६
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी ।
दसमुख बसवर्ती नर नारी ।
आयसु करहिं सकल भयभीता ।
नवहिं आइ नित चरन बिनीता ॥ १।१८१।७

दिशाओं में आधिपत्य होने के कारण भी वह दशमुख की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा। सारे दिग्पाल उससे भयभीत रहने लगे। वह देवताओं को गाली देता और उनको अपमानित करता। उसके समान कोई दूसरा योद्धा दृष्टिगोचर नहीं होता था।

सूर्य, चन्द्रमा, पवन, वरुण, अग्नि, काल, यम, किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता, नाग सबने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। उसने कुबेर पर धावा बोलकर पुष्पक विमान छीन लिया आशय यह कि समूची सृष्टि में उसने सभी को भय और बल से आतंकित करके अपने वश में कर लिया।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यदि रावण के चरित्र का विश्लेषण किया जाय तो वह मात्र हीन ग्रन्थि ग्रस्त असामान्य व्यक्ति सिद्ध होता है। इस असामान्य व्यक्तित्व के कारण ही उसने ऐसे दुराचरण प्रारम्भ किये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रावण का चरित्र असामान्य मनोग्रन्थियों का ही प्रतिफलन है जिनकी प्रतिक्रियास्वरूप वह परिस्थियों का शिकार हुआ। उसमें कुत्सित हीन भावना की जन्मजात ग्रन्थि थी। वह मनोव्याधिग्रस्त असाधारण असंवेदना सम्पन्न व्यक्ति था।

उसके समाज विरोधी कार्यकलापों से दण्डकारण्य में अवस्थित आश्रमों में आतंक छा गया था। वर्णाश्रम धर्म के प्रचारक उन आश्रमों की रक्षा की जानी आवश्यक थी। ऋषि उसके हृदय परिवर्तन की बात भी नहीं सोच सकते थे क्योंकि जन्म से ही वह ऋषि संस्कृति का शत्रु बन गया था। उस पर पागल पन सवार था। वह आश्रमों का विनाश करता, ऋषियों का वध करता और ऋषि बालाओं का अपहरण करता था। उसके नेतृत्व में सम्पूर्ण राक्षस प्रजाति यही कार्य कर रही थी। उसके मूल में था अपनी माँ का ऋषिकृत परिपीड़न।[1]

देव वरदान प्राप्त कर भी वह अपने असंयत आचरण के कारण मनुजत्व का विनाशक, अत्यन्त आततायी, अत्याचारी, क्रूर और निर्मम बन गया और पतनावस्था की कगार पर जा खड़ा हुआ। कोशलेश राम ने अपने तप-संयम और सदाचरण द्वारा अन्त में उसका बध किया और मानवता का उद्धार किया।

———

भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन, राजकरिय निज मंत्र॥ १।१८२क

१– लंका की खोज : डॉ० हीरालाल शुक्ल, पृ० ३३७।

अध्याय ३

चिकित्सा शास्त्र एवं जैविक सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन

३. १. **वैदिक कालीन चिकित्सा**–आधुनिक युग में प्रचलित प्रमुख चिकित्सा-पद्धतियों[1] के मूल तत्वों[2] को महर्षियों ने, आयुर्वेद के पञ्च निदान में समाहित करते हुए आयुर्वेद की श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया है। निस्सन्देह प्राचीन भारतीय आयुर्वेदीय चिकित्सा ज्ञान अपनी पराकाष्ठा पर था। ऋग्वेद में वर्णित तत्कालीन महान वैद्यराज अश्विनी कुमार द्वय ने, जिन्हें गोल्डस्टकर[3] के मतानुसार प्रसिद्ध मानवतावादी, नामी शिल्पी और चिकित्सक माना जाता है, अनेक आश्चर्यजनक कार्य किए थे। इनका काय और शल्य, दोनों चिकित्सा क्षेत्रों में समान अधिकार मिलता है।[4] इन्होंने वैदिक देवताओं की चिकित्सा की थी।[5]

शल्य चिकित्सा सम्बन्धी कार्यों के प्रशंसा परक प्रसंग ऋग्वेद के मन्त्रों में आये हैं। "अश्विन द्वय द्वारा जैसे शरीर का आवरण (कवच आदि) खोल फेंका जाता है,

---

१– होम्योपैथिक, एलोपैथी, नेचरोपैथी या प्राकृतिक चिकित्सा, साइकोपैथी या मानसिक चिकित्सा और हाईजीजम या व्यायाम चिकित्सा पर महर्षियों ने उत्तम रीति से विचार भी किया है। देखिए–कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, वर्ष–२४, संख्या–१, पूर्ण संख्या–२७८, गीता प्रेस–गोरखपुर, सौर माघ २००६, जनवरी १९५०, पृ० ५२० पर आयुर्वेदाचार्य कविराज श्रीकृष्ण पद भट्टाचार्य का लेख 'आयुर्वेदीय चिकित्सा-प्रणाली की श्रेष्ठता'।

२– हेतु विपरीत, व्याधि विपरीत हेतु या व्याधि विपरीत, हेतु सम एवं व्याधि सम औषध, अन्न और बिहार का उपयोग शरीर के लिए सुखदायक या आरोग्य कारक है। देखिये–वही, सन्दर्भ १।

३– हिन्दी ऋग्वेद, भूमिका, पृ०–३४।

४– आयुर्वेद का वृहत् इतिहास ले० अत्रिदेव विद्यालंकार प्रथम संस्करण, पृ०–१७।

५– चरक चिकित्सा, १।४।४४, (आ० वे० का वृ० इ० से उद्धृत)।

वैसे ही तुमने जीर्ण च्यवन ऋषि की शरीर व्यापिनी जरा खोल फेंकी थी ।" दस्त्रद्वय, "तुमने पुत्रादि द्वारा परित्यक्त ऋषि के जीवन को बढ़ाया था। अनन्तर उन्हें कन्याओं का पति बना दिया था ।"[1] इसी प्रकार कलि के नाम के बृद्ध स्तोता को यौवन युक्त करने की बात भी कही गई है ।[2] अद्भुत चिकित्सक सायणाचार्य के मतानुसार पहले तपोबल से मनुष्य और तदन्तर देवता बनने वाले,[3] सुधन्वा के पुत्र ऋभुओं ने भी अपने माँ-बाप को फिर से जवान बना दिया था ।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि यह तत्कालीन प्लास्टिक सर्जरी थी जिसका आधुनिक काल में जर्मन वैज्ञानिक ई० जीस ने सन् १८३८ ई० में कदाचित् प्रथम प्रयोग किया था ।[5]

इसी प्रकार पुत्राभिलाषिणी नपुंसक-पतिका-वाध्रिमती को हिरण्य हस्त नाम का पुत्र प्राप्त कराने,[6] का तथा युद्ध में एक पैर कट जाने के कारण, लोहमय जंघा

१– (क) ऋग्वेद संहिता, अ०-१, म०-१, अ०-८, अनु०-१७, सू०-११६, मं०-१० ।
(ख) वही, अष्टक–४, मण्डल–५, अध्याय–४, अनुवाक–६, सूक्त–७५, मन्त्र–५ ।

प्रच्यवानाज्जुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।

युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ।।५।।

२– वही, अ०–७, म०–१०, अ०–८, अनु०–३, सू०–३९, मं०–८ ।

३– वही, अ०–१, म०–१, अ०–२, अनु०–५, सू०–२०, मं०–१ से ४ ।

४– युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः ।

ऋभवो विष्ट यक्रत ।।४।।

ऋग्वेद संहिता, अ०–१, म०–१, अ०–२, अनु०–५, सू०–२०, मं०–४ ।

5– Reconstructive and Reparative surgery By Hans may, M. D. F. R. C. S. Second Edition, Plastic surgery.

६– अंजोहृ वीन्नासत्या करा वाम् हे यामन्पुरूभुजा परधिः ।

श्रुतंतच्छासुखि वध्रिमत्या हिरण्य हस्तम् श्विनावदत्तम ।।

–ऋग्वेद, अ०–१, अ०–८, व०–१०, म०-१, अ० १७, सू०-११६ म–१३

देकर, अगस्त्य-पुरोहित, खेल ऋषि की पत्नी विश्पला को समर में जाने के लिए समर्थ बनाने का वर्णन प्राप्त है ।[1]

ऋग्वेद संहिता के एक मन्त्र[2] में वृषागिरि के अंधे पुत्र ऋजाश्व को नेत्र देने की बात लिखी है । एक अन्य मन्त्र में अन्धे दीर्घ तमा को नेत्र[3] और लंगड़े परावृज को पैर देने की बात कही गई है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अश्विनद्वय, काय और शल्य दोनों चिकित्सा पद्धतियों में निष्णात थे ।[4]

रुद्रों को भी श्रेष्ठतम चिकित्सक कहा गया है,[5] और उनसे औषधियों की याचना की गई है ।[6]

ऋग्वेद के अतिरिक्त शेष सभी वेदों में भी आयुर्वेदिक विषयों का उल्लेख मिलता है । अथर्ववेद का सम्बन्ध आयुर्वेद से है । अस्तु, इस वेद में शरीर शास्त्र औषधि एवं चिकित्सा के विविध अंगों और विधियों का वर्णन प्रचुरता से मिलता है । वेदों के बाद ब्राह्मण और उपनिषद ग्रन्थों में भी इनका विकसित और विस्तृत विवेचन प्राप्त है ।[7]

चरक जिनका समय ईसा से ३००० वर्ष पूर्व माना जाता है, अनुगामी काल

१– (क) ऋग्वेद संहिता, अ०–१, म०–१, अ०–८, अनु-१७, सू०-११६, म०–१५ ।

(ख) याभिर्विश्पला धन सामथर्व्यं सहस्रमीएह अजावजिन्वतम ।

याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावत ताभिरूषु उतिभिरश्विनागतम ॥

–ऋग्वेद अ०–१, अ०–७, ब–३४, म०–१, अ०–१६, सू० ११२ म०–७–१० ।

२– ऋग्वेद–अ०–१, अ०–८, व–१०, म०–१, अ०–१७, सू० ११६, म–१६ ।

३– हिन्दी ऋग्वेद, भूमिका, पृ०–३४ (संकेत १२४६.११)

४– वही, आयुर्वेद का वृहत् इतिहास, पृ०–१७ से उद्धृत 'चरक चिकित्सा' अध्याय ४५।४ ।

५– भिषक्तम त्वाभिषजां शृणोमि । ऋग्वेद २।३३।१२ ।

६– स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे । ऋग्वेद २।३२।१२ ।

७– चरक संहिता, प्रथम भाग, व्याख्याकार पं० काशीनाथ शास्त्री, डा० गोरखनाथ चतुर्वेदी, तृतीय संस्करण, पृ०–२८ ।

में अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। उन्हें आयुर्वेद विशारद माना जाता है। कुछ विद्वानों के मत से पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के आचार्य तथा यूनान की आधुनिक चिकित्सा के जन्मदाता, सम्भवतः नागवंश में जन्मे, हीपोक्रिटीस (४६० से ३७० ई० पू०) ने भी चरक के सिद्धान्तों का भाव लिया था।[१] शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में आँख के मोतिया बिन्द का सफल आपरेशन करने वाले सर्जन सुश्रुत थे जिनका समय एन० के० विद्याधर[२] ने ३००० ई० पू० बताया है।

३. २. **रामायण कालीन चिकित्सा शास्त्र**–जरा, व्याधि और मृत्यु से मनुष्य की रक्षा करना ही चिकित्सा शास्त्र का सदा से लक्ष्य रहा है। प्रत्येक युग में चिकित्सकों ने इस दिशा में एक से एक बढ़कर प्रयोग किये जाते हैं जिनमें उन्हें न्यूनाधिक सफलता भी मिलती रही है। रामायण में भी अमरत्व प्राप्ति के इच्छुक मानव के प्रयत्न अंकित हैं।[३]

तत्कालीन चिकित्सा विज्ञान समुन्नत था। रामायण में आयुर्वेद के जनक धन्वंतरि तथा त्रिदोष (वात–पित्त–कफ) का उल्लेख हुआ है।[४] अयोध्या नगरी वैद्यों से भरपूर थी।[५] रामायण में हनुमान और विभीषण हाथो में मसाल लिए रणभूमि में घायल सैनिकों को आश्वासन देकर प्राथमिक सहायता पहुँचाते दिखाये गये हैं।[६]

कैकेयी ने दशरथ से विवाद करते समय राजा अलर्क का दृष्टान्त दिया था जिन्होंने वेदों में पारंगत एक ब्राह्मण की याचना पर प्रसन्न मन से अपनी आँखें निकालकर उसे दे दी थीं।[७] इस घटना से कुछ लोग यह संकेत गृहण करते हैं कि अन्धे व्यक्ति को आंखें लगाकर दृष्टि प्रदान करने की नेत्र शल्य चिकित्सा उस समय

१– वही चरक संहिता, प्रथम भाग–पृ०–३९।

2– Archivls of opthalmology By N. K. Bidya Dhar, Vol–22, 1939, Page–550.

३– रामायण कालीन संस्कृति ले० डॉ० शान्ति कुमार नानूराम व्यास, प्रथम संस्करण के पृ०–१८७ से उद्धृत (रामायण १।४५।१६–१७ अमृत प्राप्ति के लिए समुद्र मंथन)

४–वाल्मीकि रामायण १।१।३१–३२, ७।५।७।

५–वही २।१००।४२।

६–वही ६।७४।६–७।

७– तथा ह्यलर्कस्तेजस्वी ब्राह्मणे वेद पारगे।
याचमाने स्वके नेत्रे उद्धृत्याविमना ददौ ॥
–वा० मी० रा० २।१४।५।

प्रचलित थीं ।[1] जब कि आधुनिक नेत्र शल्य चिकित्सक जर्मनी के वानहिप्पेल द्वारा सफल नेत्र प्रत्यारोपण का कार्य सन् १८८८ ई० में ही सम्भव हो सका ।[2]

अहल्या से व्यभिचार करने पर इन्द्र को गौतम ऋषि ने पुरुषत्व हीन हो जाने का शाप दिया था, जिससे इन्द्र के अण्डकोष कट कर गिर पड़े थे । फलस्वरूप वह प्रजनन-शक्ति से रहित हो गये थे । इस पर वहाँ एकत्र हुए पितृ देवों ने एक मेढ़े के अण्डकोष निकालकर इन्द्र के लगा दिये,[3] जिससे उनका पुरुषत्व लौट आया । इसीलिए इन्द्र के नामों में एक नाम मेष वृषण भी है ।[4]

इस घटना से पेचीदा शल्य क्रिया में भी चिकित्सकों की प्रवीणता सूचित होती है ।

इस काल में शल्प-चिकित्सक (सर्जन) प्रसव शल्य भी करते थे । लंका में सीता ने अपनी असहाय अवस्था पर विलाप करते हुए कहा था "यदि राम समय पर आकर मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो अनार्य रावण मेरे अंगों को शीघ्र पैने बाणों से वैसे ही काट डालेगा जैसे शल्य चिकित्सक गर्भ स्थित बालक को निकालने के लिए गर्भ को तेज औजारों से काट डालते हैं । इससे ध्वनित होता है कि रामायण काल में, कठिन प्रसव की दशा में शल्य चिकित्सक गर्भाशय की शल्य क्रिया करते थे ।[5]

हमारे इस शल्य चिकित्सा ज्ञान का स्रोत अथर्व वेद[6] है, जिसमें गर्भाशय को चीर कर गर्भ को बाहर करने तथा रुके हुए मूत्र को मूत्राशय से बाहर निकालने का स्पष्ट उल्लेख है, किन्तु आधुनिक शल्य विज्ञान में गर्भाशय का पहला सफल आपरेशन जैकब न्यूफर ने सन् १५०० ई० में, अपनी पत्नी का किया था ।[7]

१–वही रामायण कालीन संस्कृति, पृ०–१८९ ।

2–Eye Surgery By H. B. stallard, 5–Th Edition, 1973, P- 392.

३–अग्रेस्तु वचनं श्रुत्वा पितृदेवाः समागत ।
उत्पाट्य मेष वृषणौ सहस्राक्षे न्यवेशयन् ।।
–वाल्मीकीय रामायण १।४९।८

४–वही वा० मी० रा० १।४९।८, १०, १२, एवं आ० वे० का वृ० इ० पृ०–७७ ।

५– (क) वही, रामायण कालीन संस्कृति, पृ०–१८४ ।
(ख) तस्मिन्ननागच्छति लोक नाथे, गर्भस्थ जन्तोरिह शल्य कृतः ।
नूनंममाङ्गन्य चिरादनार्यः शस्त्रैः शितैश्छत्स्यति राक्षसेन्द्रः ।।
–वा० रा० ५।२८।६

६–विनेभिनद्मि मेहनं वियोनिं विगर्वीनिके ।
विभातरं च पुत्रं च विकुमारं जरायुणाव-जरायु पद्यताम ।
–अथर्व वेद १।११।५ ।

7– The Queen charlotte's Text Book of obstetrics, 12 Th Edi tion, 1970, Page–373

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण का चिकित्सा शास्त्रीय ज्ञान वेदों, उपनिषदों एवं ब्राह्मण आदि ग्रन्थों पर आधृत एवं पूर्ण विकसित है।

३. ३. **मानस का आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन–** आदि मानव के प्रयत्नो से लेकर अधुनातन मानवीय प्रयासों ने जिस अमृत को प्राप्त करने के प्रयत्न किए हैं, वह अब तक दुर्लभ है, किन्तु मानव के अमरत्व प्राप्त करने के प्रयत्न हमारे प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित हैं। मानस भी इस अमृत की याद हमारे मानस पटल से नहीं हटने देता। इसमें अनेक स्थलो[1] पर अमृत का उल्लेख किया गया है जो मानव की अमृत प्राप्ति की इच्छा का शाश्वत संदर्भ है।

चिकित्सा शास्त्र चाहे, जिस काल का हो रोगी, रोग, वैद्य औषधि उसके उपादान एवं अंग रहे हैं तथा पथ्य–कुपथ्य, औषधि अनुपान का आवश्यक अंग रहा है। उपचार के बिना रोग शीघ्रता से नहीं जाते। तुलसी मानस में लिखते हैं।

कुपथ माँग रुज ब्याकुल रोगी ।
बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥१।१३२।१

इसी प्रकार रोग के लिए औषधि की आवश्यकता का वर्णन भी प्राप्त हैं।

बिनु औषध बिआधि बिधि खोई ॥१।१७०।२

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थलों पर[2] भी रोग, रोगी, वैद्य और औषधि का वर्णन आया है।

मानस–संदर्भगत चिकित्सा अंग एवं उपादान आज की सभी चिकित्सा पद्धतियों की अपेक्षायें हैं।

मानस का चिकित्साशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन करते हुए ज्ञात होता है कि भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा के निष्णात्, सुषेण नाम के वैद्य, लंका में रहा करते थे। जाम्बवान ने उनका परिचय इस प्रकार दिया है–

जामवंत कह बैद सुषेना ।
लंका रहइ को पठई लेना ॥६।५४।४

रामदल में इन वैद्यराज की सेवाओं की आवश्यकता उस समय आ पड़ी, जब रावण के पुत्र मेघनाद ने युद्ध में वीरघातिनी शक्ति का प्रहार लक्ष्मण पर

१– मानस १।०।१, १।५, १।७।४, २।१७६, २।२०८।३ २।२१४।३, २।२७९।४, २।२८१, २।२८७।१, २।१९७।३, २।३०६।१, २।३०९, ५।४।१, ७।११३।३

२– मानस १।३०।२, २।५।१, २।३४, २।५०।१–३, २।६४।३, २।१८०, २।२११।१, २।२१६।१, ४। श्लोक–२,४।३०, ६।९।३

किया और मूर्छित हो गये ।[1]

जामवन्त से वैद्यराज का परिचय मिल जाने से हनुमान उन्हें लंका से तुरन्त ले आते है ।[2]

सुषेण ने आकर श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में सिर नवाया और लक्षमण की गम्भीर स्थिति को देखते हुए उन्होंने हनुमान से औषधि लाने के लिए कहा—

राम पदार बिंद सिर नायउ आइ सुषेन ।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवन सुत लेन ।। ६।५५

रामायण में मृत संजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्ण कारणी और संधानी नामक महौषधियों का नामोउल्लेख है ।[3]

डॉ० शान्ति कुमार नानूराम व्यास ने[4] लिखा है कि मृतसंजीवनी मूर्छा दूर करके चेतना प्रदान करने वाली विशल्यकरणी शरीर में लगे हुए बाण आदि को निकालकर घाव भरने और पीड़ा दूर करने वाली, सुवर्ण कारणी शरीर में पहले जैसा रूपरंग लाने वाली तथा संधानी टूटी हुई हड्डी को जोड़ने वाली औषधि थी ।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान (एलोपैथी) में मूर्छा दूर करने के लिए नार-एड्रिलिन या मेटारेमिनाल या कोरामीन का इंजेक्स जैसी औषधियाँ दी जाती हैं ।[5] घाव भरने के लिए विटामिन सी एवं फिनाइल ब्यूटाजान तथा पेनिसलीन का प्रयोग किया जाता है ।

शरीर में पहले की सी रंगत लाने के लिए आइरन एवं प्रोटीन का प्रयोग उचित होता है और टूटी हुई हड्डी को जोड़ने के लिए कैल्सियम, विटामिन 'डी' और फासफोरस टैबलेट का प्रयोग किया जाता है ।

१— बीर घातिनी छाड़िसि साँगी ।
तेज पुंज लछिमन उर लागी ।।
मुरछा भई शक्ति के लागें ।
तब चलि गयउ निकट भय त्यागें ।।६।५३।४

२— धरि लघु रूप गयउ हनुमंता ।
आनेउ भवन समेत तुरंता ।।६।५४।४

३—(क) मृत संजीवनी चैव विशल्य कारणीमपि ।
सुवर्ण करणीं चैव संधानी च महौषधीम ।।
—वही, वा० रा०, ७।७४।३३ ।

(ख) वही बा० रा० ७।७४।२९ ,

४— वही रामायण कालीन संस्कृति, पृ० १८३ ।

5— The Principles cf Medicine By Sir Stanley Davidson, 3rd Edition E. L. B. S., 1968, P–466–67

संजीवनी का वर्णन मानस में अनेक स्थलों[१] पर किया गया है।

पूर्वोक्त चौपाई में 'जाहु पवन सुत लेन' पर यदि विचार करें। तो पता चलता है कि वानरों जैसी वनचर जातियों को औषधियों के प्राप्त स्थान का पता रहता था। इन्हें वनस्पति विज्ञान का प्रचुर व्यावहारिक ज्ञान था। और उनकी जड़ी बूटियां नानाविधि एवं प्रभावोत्पादक थीं।[२]

हनुमान वानर जाति (वनवासी) के हैं। वे गिरिवासी भी रह चुके हैं, अस्तु उनको जड़ी बूटियों का ज्ञान भी अधिक है। चरक[३] ने भी स्वीकार किया है कि 'बनवासी' लोग औषधियों के नाम और रूप को जानने वाले होते हैं।'

मानस के सुषेण पड़ोसी राज्य के निवासी थे। इस कारण वानरों के औषधि ज्ञान से परिचित थे। साथ ही हनुमान शक्ति, सामर्थ्य एवं गुण निधान थे। इस कारण केवल हनुमान से ही औषधि लाने के लिए कहा गया है।

हनुमान अनेक बाधाओं को पार करते हुए हिमालय पर पहुँच गए। किन्तु अन्य औषधियों में पहिचान के अनुकूल साम्य के कारण वह संदेह में पड़ गये। अस्तु बहुत अधिक मात्रा में मिलती-जुलती औषधियां एकत्र कर लीं। अतिशयोक्ति के माध्यम से तुलसी ने इस विवरण को इस प्रकार प्रस्तुत किया।

देखा सैल न औषध चीन्हा।
सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ॥६।५७।४

लक्ष्मण की मूर्छा पर राम विलाप कर रहे थे। हनुमान औषधियाँ लेकर रातों-रात आ गये।[४] वैद्यराज सुषेण ने हनुमान द्वारा लाई गई औषधियों से पहिचान

१– मानस २।५८।३, २।५९, ७।१२८।१।

२– वही रामायण कालीन संस्कृति, पृ०–१८१ से १८३

३– औषधीर्नाम रूपाभ्यां,
जानते ह्यजमा वने।
अविपाश्चैव गोपाश्च्चये,
चान्ये बन वासिनः ॥१२१॥

वही चरक संहिता प्रथम भाग, सूत्रस्थानम्, दीर्घंज्जीवितीया ध्याय' १, श्लोक १२१, पृ०–४७–४८।

४– अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ।
राम उठाइ अनुज उर लायउ ॥६।६०।१
प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुनामहँ बीर रस ॥६।६१

कर, लक्ष्मण की चिकित्सा की जिससे वह स्वस्थ एवं चंगे हो गए ।

तुरत बैद तब कीन्हि उपाई ।
उठि बैठे लछिमन हरषाई ।। ६।६१।१

तुलसी ने मानस में मन्त्री, वैद्य और गुरु के कर्तव्यों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है । और चाहा है कि इन लोगों को भय और लाभ की आशा से, अपने कार्य नहीं करने चाहिए । ऐसा करने से राज्य, शरीर और धर्म का विनाश हो जाता है ।

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ।। ५।३७

मानस के उत्तर काण्ड में वर्णित गरुड़-भुशुण्डि पंचम प्रसंग के अन्तर्गत सप्त प्रश्न और उनके उत्तर में गरुड़ जी द्वारा पूछे गए सात प्रश्नों में सातवाँ प्रश्न चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धित है ।

मानस रोग कहहु समुझाई ।
तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई ।। ७।१२०।४

यहाँ 'मानस रोग' 'कहहु समुझाई' की व्याख्या करते हुए विजयानन्द त्रिपाठी लिखते हैं ।[1]

'मानस रोग······' इति (क) भुशुण्डि जी ने कहा था कि 'ब्यापहिं मानस रोग न भारी । जिन्हके बस सब जीव दुखारी ।। ७।१२०।४ अतः यह जान लेना आवश्यक हुआ; क्योंकि रोग तो एक-दो कभी-कभी किसी को होते हैं, सब रोग सदा सब को रहें वह अद्‌भुत बात है । (ख) कहहु समुझाई–भाव कि मल का कुपित होना ही सब रोगों का कारण है । शरीर में जो बात, पित्त, कफ हैं । ये ही विकृत होकर अनेक विकार उत्पन्न करते है । बात, पित्त का प्रकोप कुपथ्य से हो सकता है । रोगों के लिए चिकित्सा शास्त्र बना है । वैद्य दवा देते है, रोग उपशमित होता है । ये सब बातें मन में कैसे होती हैं, यह समझ में नहीं आता है । अतः इन्हें समझाकर कहिए ।

काकुभुशुण्डि जी ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया है, उससे तुलसी के कायिक एवं मानसिक चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान का पता चलता है तथा जिससे आधि-व्याधियों का सुन्दर, सांगोपाङ्ग रूपक द्वारा निरूपण एवं आयुर्वेदिक सिद्धान्तों की पुष्टि होती हैं । इसको रामायण कालीन आयुर्वेदिक चिकित्सा तथा तुलसी के लौकिक ज्ञान

१– मानस–पीयूष खण्ड–७, उत्तर काण्ड, सम्पादक–श्री अंजनी नन्दन शरण, गीता प्रेस, पाँचवाँ संस्करण, संस्करण, सं० २०३०, पृ०–६६२ ।

सम्बन्धी ज्ञान के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए।

तुलसी के काकभुशुण्डि जी उत्तर देते हुए कहते हैं।

सुनहु तात अब मानस रोगा।
जिन्हते दुख पावहि सब लोगा ।। ७।१२०।१४

मानस रोग सूक्ष्म शरीर के रोग हैं और यह भी सभी को होते हैं किन्तु सब शारीरिक रोग सब को नहीं होते हैं।

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ।। ७।१२०।१५

'मोह' को सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक रोगों का मूल कारण माना गया है क्योंकि मानसिक रोगों का मूल कारण मोह (अज्ञान) है और समस्त शारीरिक रोगों का मूल कारण प्रज्ञापराध है जो अज्ञान के अन्तर्गत आता है। प्रज्ञापराध से मिथ्याहार-विहार का सेवन होता है और उससे आठ प्रकार के शूल होते हैं। इसी प्रकार अज्ञान से विषय में प्रवृत्ति होती है और उस प्रवृत्ति से मानसिक शूल उत्पन्न होते हैं। 'बहुशूला' के अन्तर्गत शारीरिक शूलों की तो गिनती कर ली गई है कि ये आठ है पर मानसिक शूलों की गिनती नहीं हो सकती।[1]

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में मानसिक रोगों को न्यूरोसिस एवं साइकोसिस वर्गों के अन्तर्गत बांटा गया है जिसमें प्रथम वर्ग के अन्तर्गत लोभ, मोह, क्रोध आदि, तथा दूसरे वर्ग में पागलों को रखकर उनकी मानसिक चिकित्सा की जाती है।[2]

आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में त्रिदोषों (बात-पित्त-कफ) का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि यह तीनों दोष मिल जाते हैं तो मनुष्यों को शारीरिक रोग, सन्निपात हो जाता है जो महान दुःख और प्राण लेकर ही छोड़ने वाला होता है। इसमें मनुष्य प्रलाप करने लगता है तथा उचित-अनुचित का विचार, लज्जा, मर्यादा कुछ नहीं रहती। इसी तरह से काम, क्रोध और लोभ से महापातकी मानसिक रोग होता है।[3]

तुलसी, त्रिदोषों द्वारा रोग की उत्पत्ति बताते हुए लिखते हैं–

१– देखिये–वही मानस–पीयूष खण्ड–७, पृ० ६७२–६७३ पर विजयानन्द त्रिपाठी की व्याख्या।

2– Davidson's Principales & Pratice of medicine Edited–John macleod, 11th Edition, 1977, P.–780.

३– वही, मानस पीयूष खण्ड–७, पृ०–६७३–६७४

काम-बात कफ-लोभ अपारा ।
क्रोध-पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई ।
उपजइ सन्यपात[1] दुखदाई ॥ ७।१२०।१५-१६

काम, लोभ, क्रोध को बात, कफ और पित्त से उपमित करने में कवि की आयुर्वेद में गति ज्ञात होती है । काम को प्रथम कहा क्योंकि यह क्रोध और लोभ का जनक है, प्रेरक है । कफ और पित्त स्वयं जड़ हैं । वे बात (वायु) की प्रेरणा से ही शरीर में कार्य करते हैं । बात वश जीव को भय लज्जा आदि कुछ नहीं रह जाते । यही स्थिति काम वश भी होती है ।····· कफ चिकना होता है शीघ्र बाहर निकलता नहीं, शरीर में गुप्त रहता है बढ़ने पर क्षुधा को मंद कर देता है । यही लोभ के गुण लोभी में देखे जाते हैं । कफ का प्रमाण शास्त्रों में मिलता है पर लोभ का कोई प्रमाण नहीं । कोई सीमा नहीं है । इसीलिए 'अपारा' कहा है ।[2]

पित्त, जल और तेज का संयुक्त कार्य है । इच्छा (काम) का प्रतिबन्ध होने पर उसका ही रूपान्तर क्रोध में होता है । इच्छित वस्तु मिलने पर इच्छा का रूपान्तर लोभ में होता है । पित्त कड़ुवा, खट्टा तीखा होता है । उसी प्रकार क्रोध का प्रत्यक्ष प्रथम अनुभव कटु-कठोर भाषण 'क्रोध के पुरुष बचन बल' हैं । तेज तत्व का कार्य पित्त है इसके बढ़ने से छाती में जलन होती है वैसे ही क्रोध से छाती जलती हैं[3] । पित्त बढ़ने पर भी, कुछ काल के अनन्तर घट जाता है वैसे ही क्रोध भी शान्त हो जाता है ।[4]

त्रितापों को दूर करने के लिए तुलसी ने लिखा है–

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा ।
जौं एहि भाँति बनै संयोगा ॥ ७।१२१।३
जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल ।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल ॥ ७।१२४

१– त्रिदोषों का कुपित होना, प्रत्येक व्याधि में सन्निपात हो सकता है । सन्निपातज व्याधि असाध्य होते हैं (देखिए माधव निदान) ये मुख्य १४ प्रकार के होते हैं– देखिए–चरक संहिता–अध्याय–१७, पृ०–३३९ ।

२– जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ।
लोभ कितना दुर्जन है यह स्कन्ध पुराण कुमार ६।२७७–२८७ तक देखिए ।

३– 'दहै रिस छाती' । १।२७९।१

४– पीयूष खण्ड–७, पृ०–६७३ ।

तव नाम जपामि नमामि हरी ।
भव रोग महागद मान अरी ॥

इसके अतिरिक्त 'हरन घोर त्रयसूल' 'जासु नाम त्रय ताप नसावन' जैसे दोहों और अद्र्धालियों में तुलसी ने राम के नाम या ईश्वर के नाम स्मरण से त्रितापों को दूर करने की बात कही है साथ ही अन्यत्र उन्होंने भगवत कथा को भी त्रिताप नष्ट करने वाली बताया है :–

सुनु खगपति यह कथा पावनी ।
त्रिविध ताप भव दोष दावनी ॥

भगवान की यह पवित्र कथा तीनों तापों को दूर करने वाली है। शरीर से रोग, मन से चिन्ता और बुद्धि से भय को मिटा कर मनुष्य के जीवन में शक्ति, आनन्द और ज्ञान का संचार करने वाली है। केवल मानस के पढ़ने सुनने या समझने से यह फल प्रद नहीं है जब तक उसे प्रायोगिक धरातल पर न उतारा जाय। प्रायोगिक धरातल पर उतारने से वह कुछ सीमा तक त्रितापों को दूर करने में सहायक होती है। आधुनिक विज्ञान भी निकट भविष्य में आध्यात्मिकता और भौतिकता के समन्वय से त्रितापों को दूर करने का प्रयत्न करेगा।

इसी प्रकार अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों को रूपक के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए मानस[1] में तुलसी ने आधि-व्याधियों का भी वर्णन किया है। इनके पथ्य, कुपथ्य आदि का वर्णन करते हुए रोगों को दूर करने के उपाय भी बतलाये हैं जो भारतीय आयुर्वेदिक ज्ञान की ओर संकेत करते हैं।[2]

रोगों के उपचार में चिकित्सक किसी अदृश्य शक्ति पर आस्था, श्रद्धा व विश्वास एवं चिकित्सक द्वारा बताए गए नियम और संयम के पालन के महत्व को स्वीकार करते हुए तुलसी ने लिखा है–

सद्‌गुरु बैद बचन बिस्वासा ।
संजम यह न विषय कै आसा ॥ ७।१२१।३
रघुपति भगति सजीवन मूरी ।
अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥
एहि विधि भलेहिं सो रोग नसाहीं ।
नाहि त जतन कोटि नहिं जाहीं ॥ ७।१२१।४

१– ७।१२०।१६ से १९ तक तथा ७।१२१ क एवं ख
२– मानसपीयूष खण्ड–७ पृ० ६७४ से ६८५ तल

आधुनिक विज्ञान भी उपचार विधि में अब तक उक्त तथ्यों को अस्वीकार नहीं कर सका है ।

गोस्वामी तुलसी दास द्वारा वर्णित राम राज्य के अंतर्गत राज्य के स्वास्थ्य विभाग की उपलब्धियों की ओर संकेत किया गया है:-

बरनाश्रम निज-निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग ।। ७।२०

दैहिक दैविक भौतिक तापा ।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ।। ७।२०।१

राम-राज में व्यक्ति रोग हीन हैं तथा किसी को भी दैहिक ताप (रोग), दैविक ताप (शोक) तथा भौतिक ताप (भय) नहीं होता । जन सामान्य की निरोग काया के लिए चिकित्सा की जितनी समुचित व्यवस्था आवश्यक है, उतनी ही रोग न होने देने की शिक्षा या रोगों को नियन्त्रित कर शरीर को निरोग रखने के निरोधात्मक उपाय भी अपनाये जाते हैं । जब लंका नगरी में सुषेण जैसे वैद्य हैं तब राम राज्य में श्रेष्ठ वैद्यों एवं स्वास्थ्य शिक्षा की समुचित व्यवस्था को नकारा नहीं जा सकता ।[1]

यही कारण है कि सुन्दर स्वास्थ्य शिक्षा एवं चिकित्सा व्यवस्था के कारण राम के राज्य में न तो किसी की अकाल मृत्यु होती है न किसी को कोई पीड़ा ही। सब का शरीर सुन्दर और निरोग रहता हैं-

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा ।
सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ।। ७।२०।३

३.४. शव संरक्षण कला :-शव संरक्षण के लिए आधुनिक उपायों में प्रमुख रूप से वर्फ, द्रव नाइट्रोजन तथा फार्मलीन का प्रयोग किया जाता है । वर्फ में दबा कर शव को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखा जा सकता है । (तापक्रम ०° सी० से-२०° सी०) द्रव नत्रजन में-७०° सी० ताप पर शव को कई महीनों तक सुरक्षित रख सकते हैं । फार्मलीन में शव संरक्षण के लिए शिराओं में इंजेक्सन लगाते हैं और पूरेशव को इस द्रव से भरे टैंक में (१०% फार्मलीन) रख देते हैं ।[2]

१- संपुष्टि के लिए देखिए-वा०रा०-२।१००।४२

2- Hand Book for mortvary Technicians By J. L. Emery & A. G. Marshall, 1965, Ist Edition, Page—15 to 17.

१००० ई० पू० आँते निकाल कर सान्द्र नमक में शव को रख देते थे जिससे ७० दिन तक शव सुरक्षित रहता था। शव संरक्षण हेतु १८वीं शताब्दी में तारपीन के तेल का इंजेक्सन विलियम हण्टर द्वारा प्रयोग किया गया था। शरीर के ऊपर जड़ी बूटियों का लेप भी किया जाता था। मध्य युग में लार्ड बैरन एवं नेलसन जैसे योद्धाओं का शरीर अलकोहल में सुरक्षित रखा गया था।[1]

प्राचीन मिश्र वासियों की भाँति रामायण कालीन भारतीय भी शव संरक्षण की कला में सिद्ध हस्त थे। दशरथ के शव को तेलों और लेपों द्वारा भरत के आने तक सुरक्षित रखने की घटनाओं का उल्लेख हुआ है।[2] इसी प्रकार राजा निमि के शव को ब्राह्मणों ने उनके यज्ञ की समाप्ति तक वस्त्रों, मालाओं तथा सुगन्धित पदार्थों से सुरक्षित रखा था।[3]

इसी परम्परा में तुलसी इस ज्ञान को प्रस्तुत करते हैं। राम के वियोग में दशरथ प्राण त्याग करते हैं और अयोध्या में कोई पुत्र उपस्थित नहीं है। राज्य के उत्तराधिकारी भरत को कैकय देश से दूत भेजकर बुलाने में समय लगना स्वाभाविक था। अतएव दशरथ के शव का संरक्षण करना अपेक्षित हो गया। मंत्रियों और राजा के मित्रों ने वसिष्ठ जी की आज्ञानुसार शव को तेल पूर्ण नाव में रख कर भरत के आगमन तक सुरक्षित रखा।

तेल नावँ भरि नृप तनु राखा।
दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा॥ २।१५६।१

आधुनिक युग में शव संरक्षण के जो उपाय बताये गए हैं, उन सब का मानस में उल्लेख नहीं है किन्तु अल्प अवधि के लिए तेल में शव सुरक्षित रखने की स्पष्ट विधि से स्पष्ट है कि उस दिशा में भी चिकित्सा विज्ञान की समुचित गति थी।

३.५--पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा पुत्रप्राप्ति और उसका वैज्ञानिक आधार :--चरक संहिता[4] में पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा पुत्र प्राप्ति का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि इस यज्ञ के बाद स्त्री-पुरुष आठ दिन तक प्रतिदिन सहवास करें तो मन के अनुकूल पुत्र उत्पन्न होगा।

---

1. IBID Page 25 to 27.
२. वही वा० रा० ७।७५।२–४
३. वही, रामायण कालीन संस्कृति, पृ० १८६।
४. वही, चरक संहिता, प्रथम भाग, जाति सूत्रीय शरीराध्याय–८ अनुच्छेद ९,१० एवं ११ पृ०–९२० से ९२३ तक।

तुलसी मानस में लिखते हैं कि एक बार राजा दशरथ को आत्म ग्लानि हुई कि मेरे तीन रानियों के होते हुए भी कोई पुत्र नहीं है। अस्तु उन्होंने गुरु वसिष्ठ के पास जाकर अपनी समस्या प्रस्तुत की। गुरुदेव ने तत्कालीन बंध्यता विशेषज्ञ शृङ्गी ऋषि को बुलवाकर शुभ पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराया।

एक बार भूपति मन माहीं।
भै गलानि मोरे सुत नाहीं॥
गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला।
चरन लागि करि बिनय बिसाला॥ १।१८८।१
निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ।
कहि बसिष्ठ बहु बिधि समुझायउ॥
धरहु धीर होइहहिं सुतचारी।
त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी॥ १।१८८।२
सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा।
पुत्र काम शुभ जग्य करावा॥ १।१८८।३

यज्ञोपरान्त चरु या हवि जिसे हविष्यान्न या पायस कहते हैं रानियों को औषधि रूप में दिया गया वैज्ञानिक दृष्टि से इसे बंध्यता दूर करने वाली औषधि कह सकते है।

मानस के पुत्रेष्टि यज्ञ में पत्नियाँ पति के साथ यज्ञ में सम्मिलित नहीं होती है। इसलिए यह यज्ञ औषधि वितरण के पूर्व की औपचारिकता मात्र लगता है। रानियों का बुलाकर राजा (औषधि) का वितरण करते हैं।[१] परिणाम स्वरूप कौशल्या के राम, कैकेई के भरत और सुमित्रा के लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न पैदा होते हैं।

भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें।
प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥ १।१८८।३
जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा।
सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई।
जथा जोग जेहि भाग बनाई॥ १।१८८।४

आधुनिक में स्त्री की बंध्यता[२] दूर करने के लिए ओइस्टोजेन नामक हरमोन की गोलियाँ या इन्जेक्सन अथवा क्लोमिफिन साइट्रेट नामक औषधियों का प्रयोग

१. मानस, १।१८९। १–३ तक।

२. बंध्यता के प्रमुख कारण हैं, मासिक धर्म की अनियमितता, संसर्ग, जननागों की जन्मजात विकृतियाँ।

कराया जाता है । यदि औषधियाँ लाभकारी न हों और आवश्यकता हो तो कृत्रिम गर्भाधान या शल्य उपचार का सहारा लिया जाता है [1] मानस में हवि (आयुर्वेदिक औषधि) देकर रानियों की बंध्यता दूर कर उनको पुत्र रत्न देने योग्य बनाना इसी प्रकार का कोई उपचार रहा है ।

३.६ मानस में वर्णित अन्य विद्यायें एवं प्रयोग--रामायण काल में बला और अतिबला नामक विद्याओं का ज्ञान था । इनके प्रयोग से भूख और प्यास बहुत अधिक समय तक नहीं लगती थी । न शारीरिक या मानसिक कष्ट होता था न रूप में कोई परिवर्तन होता था ।[२]

ऋषि विश्वामित्र ने राम को ऐसी ही विद्या दी जिससे भूख प्यास न लगे और शरीर में अतुलित बल और तेज का प्रकाश बना रहे ।

तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही ।
बिद्या निधि कहुँ बिद्या दीन्हीं ।।
जाते लाग न छुधा पिपासा ।
अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ।। १।२०८।४

आधुनिक औषधि विज्ञान में आज कल भूख कम करने के लिए एम्फिटामिन, फिनमेट्राजिन या इनर्जी टेबलेट (ग्लूकोज' डी' और विटामिन 'सी' युक्त गोलियाँ) नामक औषधियों का प्रयोग किया जाता है [३] किन्तु फिर भी यह प्रभाव सम्भव नहीं होता जो रामायण काल में बला अतिबला से सम्भव था ।

चरक संहिता[४] में ५ प्रकार के अंजन बतलाए गए हैं किन्तु तुलसी एक ऐसे अंजन का प्रयोग मानस में लिखते हैं, जिसे आँखों में लगाने से पर्वत में रत्नों की खाने, बन में औषधियाँ, पृथ्वी में गढ़ा हुआ खजाना, घर में अनेक कौतुक सहज ही दीखने लगते हैं–

जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखत शैलबन भूतल भूरि निधान ।। १।१

किन्तु आधुनिक विज्ञान में ऐसा अंजन अभी दुष्प्राप्य है ।

---

1. Shaw's Text Book of gynacology, 9 th Edition, 1971 Page-- 317 to 342.

२. न श्रमो न ज्वरो वा तेन रूपस्य विपय: ।।१३।। न च सुप्तं प्रमत्तं वा धर्षयिष्यन्ति नै र्ऋताः । न बाह्वोः सदृशो वीर्ये पृथिव्यामस्ति कश्चन ।।१४।। बलाचातिबला । चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ ।।१७।। (बाल्मीकि १।२२)

3. Same—The Principal of medicine P. 466—67

४. वही चरक संहिता भाग–१, सूत्रस्थानम, श्लोक १५, पृ०–११३

३. ७. **पोषण के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन**–बच्चा जब गर्भ में होता है तो उसका पोषण माता के शरीर से नाल (नेवलफ्लैप) के माध्यम से होता है। बच्चा गर्भ से बाहर आकर मातृ शरीर से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है अस्तु पोषण का एक मात्र मार्ग 'नाभि' बन्द हो जाता हैं अब बाह्य संसार से भोजन प्राप्त करने हेतु मुख खुल जाता है। इससे सिद्ध हो जाता है कि मानव के शरीर के पोषण के लिए नाभि और मुख दो ही मार्ग हैं।

ऐसा ज्ञात होता है कि रावण ने जैविक विद्वता के बल पर अपने नाभि मार्ग को भी पोषण के उपयुक्त बना रखा था, जिसके कारण सिर और भुजाओं पर घातक चोटें होने पर भी वह मृत्यु को प्राप्त नहीं होता था।[1] हताश होकर राम को उसके इस वैज्ञानिक रहस्य को जानने के लिए, विभीषण का मुँह ताकना पड़ता है।

मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा।
राम बिभीषन तन तब देखा।। ६।१०१।१

विभीषण इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहते हैं–

नाभिकुंड पियूष बस याके।
जाथ जिअत रावनु बल ताके।। ६।१०१।३

राम उपर्युक्त रहस्य को समझ कर तब प्रथम पोषण के साधन नाभि मार्ग को, जो रावण को अमरत्व प्रदान कर रहा था, वाणों से नष्ट कर देते हैं। तदुपरान्त भुजा और सिर काटते हैं–

सायक एक नाभि सर सोषा।
अपर लगे भुज सिर करि रोषा।।
लै सिर बाहु चले नाराचा।
सिर भुज हीन रुंड महि नाचा।। ६।१०२।१

आधुनिक चिकित्सक जब किसी रोगी के मुख मार्ग को कार्य करने में असमर्थ पाते हैं तो शिराओं या राइल्स ट्यूब द्वारा भोजन रक्त या आमाशय अथवा आँतों में पहुँचाते हैं और शरीर को स्थिर बनाए रखते हैं।

पीयूष कुण्ड के वैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन करते हुए मानस-पीयूष[2] में कहा गया है कि श्री पातञ्जलि-ऋषि प्रणीत योग दर्शन विभूति पाद के २९ से ३३ तक के सूत्रों पर भाष्य करते हुए कुछ विद्वानों ने प्रसंगवशात् यह भी बताया है कि

---

१. काटे सिर भुज बार बहु, मरत न भट लंकेस।
—मानस—६।१०१ (ख)

२. खण्ड—६, अंजनी नन्दन शरण, गीताप्रेस पंचम संस्करण, सं० २०२४, पृ० ५१३।

योग का संजीवनी मुद्रा के द्वारा ब्रह्म रन्ध्र में जिह्वा से अमृत श्राव होता है। यह अमृत सुषुम्ना नाड़ी से प्रवाहित होकर नाभिकुण्ड में आता है और वहाँ आकर शरीर को पुष्ट बनाए रखता है। यदि युक्ति से उस अमृत का अधिक सृजन करके संग्रह किया जाय तो कालान्तर मे नाभि कुण्ड में विशेष रूप से संस्थित अमृत से मृत्यु भय नहीं रहता।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार[1] शुद्ध लौह भस्म ४ तोले, शुद्ध गुग्गुल १२ तोले त्रिकुटा (सोंठ, पीपल, मिर्च) त्रिफला (हरड, बहेड़ा, आमला) चूर्ण ३२ तोले, इन सब औषधियों को एक में मिला कर उसमे से नित्य एक तोले शहद या घी के साथसेवन करें तो देवत्व की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् जिह्वा से अमृत श्राव होने लगता है जिसे योग की संजीवनी मुद्रा द्वारा कुण्डलित सर्पवत् स्थित कूर्म नाड़ी (सुषुम्ना) के मार्ग से नाभि कुण्ड में संगृहीत किया जा सकता है।

रावण उद्भट विद्वान, परम तेजस्वी तथा योगी था। उपर्युक्त विधि से उसने औषधि और योग के द्वारा अपनी नाभि में अमृत संचित कर रखा था। कदाचित् उपर्युक्त क्रिया द्वारा संचित यही अमृत रावण की अमरता का कारण रहा था।

३. ८. **जीव विकास के सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन**–पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति[2] के पश्चात् सृष्टि में जीवन का विकास किस सिद्धान्त पर

१. अयः पलं गुग्गुलुमत्र योज्यं पलत्रयं व्योषपलानि पञ्च।
पलानि चाष्टौ त्रिफलारजश्च कर्षं लिहन्यात्यमरत्वमेव ।।
भावप्रकाशः उत्तरखण्डः चिकित्सा प्रकरण ८ : १४।

२. पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति पर विचार करते हुए वैज्ञानिकों ने बताया है कि पृथ्वी उस समय अमोनिया, मीथेन, हाइड्रोजन तथा वाष्प के घने आवरण से ढकी थी। सूर्य के परावैगनी विकरण तथा अन्य रेडियों प्रक्रियाओं द्वारा वायुमण्डल में सौदामिनी एवं सतह की आग उगलने वाले ज्वाला मुखियों की गर्मी से वायुमंडल के कुछ अणु टूटकर विखर गए और एक दूसरे से प्रक्रियाओं द्वारा विभिन्न रूपों में संयुजित हो गए जब यह अणु बह कर सागर में चले गए तो उससे एमाइनों अम्ल बन गये। सागर में बने एमाइनों अम्लों के घोल का नाम 'पुराजैविक सूप' है। इसी से प्रीन्यूक्लियिक अम्ल जो डी० एन० ए० का आधार है उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् इन अणुओं में अगणित प्रक्रियायें हुईं और एक लम्बा अणु बना जिसमें स्वयं का प्रति रूप बनाने की क्षमता थी जिसको कि हम ध्युत्पत्ति अणु (जेनसिस एटम) कहते हैं। इसकी रचना से जीवन के विकास का क्रम प्रारम्भ हो गया। इस सिद्धान्त की पुष्टि कैलीफोनिया विश्व वि० के स्टेनले मिलर ने १९५५ ई०, फ्लोरिडा वि० वि० के सिड़नी एफ० फाक्स, ड्यूस्टन वि० वि० के डॉ० पोन्नामा जुआन ओरो आदि ने की है।

हुआ उसके अनुसार आधुनिक वैज्ञानिको का मत है कि प्रारम्भ में जीव सरल रचना वाले थे और उन्ही से फिर जटिल रचन वाले जीवों की उत्पत्ति हुई वह इस क्रम को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं।

एक कोशिक जन्तु (अमीबा) – बहु कोशिक जन्तु – मत्स श्रेणी–उभय चर श्रेणी – उरग श्रेणी – स्तन धारी। इस विकास क्रम के परिप्रेक्ष्य में मानस की यह चौपाई दृष्टव्य है।

मीन कमठ सूकर नरहरी।
बामन परसुराम बपु धरी।। ६।१०९।४

जीव वैज्ञानिक दृष्टि से पुराणों के दश अवतारों की कथा की पुष्टि विदेशी विद्वान स्वामी जयकुमार ने की है।[1]

विकास क्रम का विवेचन हमारा विषय नहीं किन्तु इस सिद्धान्त से मानस की अभिव्यक्ति साम्य रखती है, यह देखना ही हमारी अपेक्षा रही है।

३. ९. **डार्विन के सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन**–प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन का मत (सन् १८५९ ई०) प्राकृतिक वरण का सिद्धान्त कहलाता है। इस सिद्धान्त की कई विशेषताओं में से दो प्रमुख हैं।

१–जीवन संघर्ष में योग्यतम की उत्तर जीविता।

२–विभिन्नताएँ।

१–इस नियम के अनुसार, बढ़ने वाली जन संख्या के कारण, प्राणियों में पैदा

सृष्टि क्रम एवं विकास वाद ले० डॉ० आनन्द प्रकाश सिन्हा, पृ० १३–१४ विशेष अध्ययन के लिए देखिए–

(अ) रूस के जीव वैज्ञानिक ओपैरिन का जीवन के उद्‌गम का सिद्धान्त।

(ब) स्टेनले मिलर का प्रयोग।

(स) कैलीफोर्निया वि० वि० के मेलविन केलविन का सन् १९६३ का प्रयोग।

1. The mother land (Sunday magazine) march 19, 1972, Delhi, 'The challenge of hindu spirituality mystic of Science,

As for as biology is concerned do not the discription of the puranas when referring to the first four of the ten major incarations of vishnu (Fish, turtle boar & man with lionhead) during the present day of certain hint at the main evolutionary stages of animal life,,

होते ही अपने भोजन, जल, वायु, प्रकाश, सुरक्षित स्थान तथा सन्तानोत्पत्ति के लिए संघर्ष छिड़ जाता है। इस जीवन संघर्ष में वही सफलता पाता है जो जीव सबल तथा उपयुक्त होता है। कमजोर तथा निकम्में नष्ट हो जाते हैं।

साहित्यिक दृष्टि से लिखी गई तुलसी की निम्नांकित चौपाइयाँ डार्विन के वैज्ञानिक सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में सरलता से देखी जा सकती हैं :-

जौं अहि सेज सयन हरि करहीं।
बुध कछु तिन्हकर दोषु न धरहीं॥
भानु कृसानु सर्व रस खाहीं।
तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं॥ १।६८।३

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई।
सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई।
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं।
रबि, पावक सुरसरि की नाईं॥ १।६८।४

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥ १।५९।४

२-इस नियम के अनुसार संसार में कोई भी दो प्राणी कभी भी एक से नहीं पाए जाते चाहे वे एक ही माता की जुड़वाँ सन्तान क्यों न हों। उनके रंग, रूप, गुण, आकार आदि में कहीं न कहीं विभिन्नता अवश्य होगी। इसके विपरीत विभिन्नताओं के होते हुए प्राणियों में एक रूपता भी होगी। इस नियम को 'अनेकता में एकता और एकता में अनेकता' का जैविक नियम कह सकते हैं, जैसे प्रत्येक व्यक्ति आपस में विभिन्नता लिए है किन्तु एकता की दृष्टि से मनुष्य ही है।

तुलसी इसी नियम का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं-

परबस जीव स्वबस भगवंता।
जीव अनेक एक श्रीकंता॥ ७।७७।४
एक पिता के बिपुल कुमारा।
होहिं प्रथक गुन सील अचारा॥ ७।८६।१

३. १०. कोशिका विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन-आधुनिक विज्ञानयह स्वीकार करता है कि परिमाणु और कोशिका[1] की संरचना सौर-मण्डल की तरह होती है। जड़ व चेतन के परमाणुओं[2] में गति होने के कारण उन्हें निर्जीव

१. जीवों के शरीर की रचना की सबसे छोटी इकाई कोशिका कहलाती है।

२. परमाणु सम्बन्धी ज्ञान के लिए देखें शोध प्रबन्ध का अध्याय-६. ३.।

नहीं कहा जा सकता।

परब्रह्म परमात्मा को हम शुद्ध चेतन तत्व या मूल तत्व भी कह सकते हैं। मूल तत्व अद्वैत ही है अर्थात् वह एक ही है उससे भिन्न कुछ भी नहीं है।[1]

तुलसी मानस में यह स्वीकार करते हैं कि इस जड़-चेतन और गुण-दोष मय विश्व को ब्रह्मा ने रचा है परब्रह्मा ही मूल तत्व है–

'जड़ चेतन गुन दोष मय बिश्व कीन्ह करतार' १।६

इन्हीं ब्रह्म के प्रतीक 'राम' को तुलसी जड़ चेतन में व्याप्त मानकर सभी जीवों और निर्जीवों की हाथ जोड़कर बन्दना करते हैं–

जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राम मय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल, सदा जोरि जुग पानि ॥ १।७ (ग)

मनुष्य के शरीर की कोशिका, जीवित पदार्थ का परमाणु होते हैं। अनुमान है कि शरीर में सात हजार पद्म कोशिकाएँ होती हैं। इन सभी कोषों में प्रकाश मान नाभिक की संगति आकाश के एक तारे (सौर मण्डल) से जोड़े तो आश्चर्य जनक तथ्य यह ज्ञात होता है कि समस्त ब्रह्मांड इस शरीर में बसा हुआ है। ऋषियों का कथन 'यत् ब्रह्मांण्डे तत्यपिण्डे' अर्थात् जो कुछ इस ब्रह्मांड में है वह सब शरीर में है, सत्य प्रतीत होता है।[2]

इस सन्दर्भ में तुलसी का एक छन्द अवलोकनीय है–

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया,
रोम रोम प्रति बेद कहैं ॥ १।१९१। छ-३

मानव राम का शरीर कोशिकाओं से निर्मित है जिनकी तुलना ब्रह्माँड (सौर-मण्डल) से की जा सकती है। उपर्युक्त कोशिका संरचना के परिप्रेक्ष्य में मानस की यह अर्द्धाली अवलोकनीय है–

भुवन अनेक रोम प्रति जासू।
यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥ ७।२१।१

मानव के शरीर में जब करोड़ों ब्रह्मांड रूपी कोशिकायें हैं तो भगवान राम के शरीर में करोड़ों ब्रह्मांड दिखने में क्या आश्चर्य है,

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥ १।२०१

---

१. वैदिक विचारधारा एवं विज्ञान ले० डॉ० आनन्द प्रकाश सिन्हा पृ० ३१–३२।
२. वही वैदिक विचार धारा और विज्ञान–पृ० ४१।

३. ११. डॉ० खुराना के शोध के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन—सन् १९६८ ई० में नोवल पुरस्कार विजेता डॉ० हरगोविन्द खुरान ने एक कृत्रिम डी०एन० ए०[1]का संश्लेषण करके पूरे विश्व को आश्चर्य चकित कर दिया। सन् १९७० ई० में इन्होंने प्रथम जीन[2] का निर्माण किया जिससे आधुनिक विज्ञान द्वारा जड़ पदार्थों से रसायन शाला में जीव के कृत्रिम निर्माण की सम्भावनायें बहुत बढ़ गई हैं। जीन का निर्माण इसी मार्ग पर बढ़ाया गया। यह एक बड़ा कदम है।

गोस्वामी तुलसी दास ने इस सिद्धान्त की ओर भी संकेत किया है—

जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हिं करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहिं, भजहिं जीव ते धन्य॥ ७।११९ (ख)

आज उन्हीं समर्थ श्री रघुनाथ का वंश अंश मानव विज्ञान की सहायता से जड़ को चैतन्य करने का प्रयास कर रहा है।[3]

मानस में जड़ चेतन में ग्रन्थि पड़ने की बात कहते हुए[4] तुलसी राम से कहलवाते हैं कि सम्पूर्ण जड़ चेतन विश्व मेरा ही उपजाया है[5] इसीलिए तो तुलसी जड़ और चेतन दोनों की बन्दना करते हैं। राम की शक्ति का संस्पर्श पा कर जड़ चेतन हो जाता है।[6]

इसी वैज्ञानिक तथ्य को प्रकारान्तर से स्वीकारते हुए डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी ने अपने लेख "मानस' में आगमिक तत्व" में स्पष्ट स्वीकार किया है कि 'आगम मानता है कि सृष्टि आनन्दात्मिका लीला वृत्ति का ही समुच्छलन है। आत्म शक्ति का ही प्रसार है। द्वयात्मक अद्वय की ही परिणति सृष्टि है। मानस कार का भी बड़ी

---

१. डी आक्सीरिवो न्यूक्लिक अम्ल जीव की रचना का निर्माता तत्व।

२. जीन-जीवधारियों की समस्त जीवित कोशिकाओं के केन्द्रक में पाये जाने वाले गुण-पूत्रों के ऊपर पाई जाने वाली छोटी-२ सूक्ष्म रचनायें जीन कहलाती हैं। यह को शिकाकी आनुवंशिक इकाइयाँ हैं। डी० एन० ए० के अणु ही आनुवंशिक लक्षणों को पीढ़ी दर पीढ़ी ले जाने का कार्य करते हैं।

३. तुलसी, सम्पादक, डॉ० राजमूर्ति त्रिपाठी, लोक लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद १, प्रथम संस्करण, सन् १९७६ पर रामकुमार चतुर्वेदी का 'विज्ञान और राम चरित मानस के सन्दर्भ, लेख में, पृ० १५०।

४. जड़ चेतनहिं ग्रंथि परिगई'। ७।११८।२

५. अखिल बिश्व यह मोर उपाया'। ७।८६।४

६. मानस १।७

ही सीधी सादी भाषा में उद्घोष हैं–

'सिया राम मय सब जग जानी'

सारा जग या संसार सिया राम मय द्वयात्मक अद्वय की ही तो परिणति है। सृष्टि का चाहे जड़ तत्व हो या चेतन सभी ऋणात्मक धनात्मक तत्वों के एक जुट रूप है। विज्ञान भी अब मानने लगा है कि जड़ पदार्थों की संघटक अंतिम अवभूति अब अणु परमाणु नहीं हैं। अपितु ऋणात्मक धनात्मक वैद्युत प्रवाह है। इसी प्रकार जीव द्रव्य का भी अंतिम संघटक डी० एन० ए० तथा आर० एन० ए० है।[1]

आधुनिक विज्ञान की अधुनातन खोज है कि किसी मनूष्य में हानिकारक जीन को नष्ट करके उससे सम्बन्धित भयंकर रोगों का अन्त किया जा सकता है। इसी प्रकार अच्छे या बुरे लक्षण वाले जीन का समावेश करके भावी सन्तानों को इच्छानुसार गुण वाला पैदा किया जा सकता है। इस दिशा में शोध कार्य हो रहा है और वह दिन शीघ्र ही आने वाला है जब राम या रावण जैसे मनो वाँछित गुण वाले व्यक्ति उत्पन्न किए जा सकेंगे। तब श्रृङ्गी ऋषि जैसे जेनेटिकल इंजीनियों (अनुवांशिक अभियन्ता) का महत्व बहुत बढ़ जायेगा।[2]

एकता में अनेकता तथा अनेकता में एकता, जीन की विभिन्नताओं के कारण होती है। एक पिता को विभिन्न संतानों में रूप, रंग, गुण, आकार आदि में इसी कारण विभिन्नता होती है। तुलसीदास इस संदर्भ को पहले दे चुके हैं।

एक पित के विपुल कुमारा।
होहिं पृथक गुन सील अचारा॥ ७।८६।१ से ७।८७ क तक

---

१. रामचरित मानस: एक विश्लेषण सम्पादक–डॉ० प्रभुदयाल, अग्निहोत्री प्रकाशक–रामचरित मानस चतुश्शताब्दी समारोह समिति, मध्यप्रदेश, भोपाल, प्रथम संस्करण १९७५, पृ० ७३।

२. जेनिटिकल इंजीनियरिंग। विज्ञान की वह शाखा है जो जीन द्वारा गुणों में परिवर्तन तथा जीवन मानव का निर्माण करने की दिशा में प्रयत्न शील है।

अध्याय ४

मानस का जलवायु विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन

४. ०. जलवायु शब्द, जल और वायु दो शब्दों से मिलकर बना है। यहाँ जल का अर्थ वर्षा और वायु का अर्थ वायु की गति, दिशा एवं उसके ताप आदि से है। अतः जलवायु का अर्थ हुआ 'किसी स्थान की वर्षा और उस स्थान की वायु का सम्मिलित प्रभाव।'

वर्षा का संबंध प्रमुख रूप से वायुमण्डल की आर्द्रता (नमी), वायु एवं बादलों से होता है। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि में इन बादलों के निर्माण की प्रक्रिया इस प्रकार है।

४. १. **आधुनिक विज्ञान की दृष्टि में मेघों के निर्माण की प्रक्रिया**—हम जानते हैं कि जल के स्रोतों से पानी भाप बनकर वाष्पीकरण[1] की क्रिया के द्वारा उड़ा करता है जो जल वाष्प के रूप में वायुमण्डल में विद्यमान रहता है। जब वातावरण का तापक्रम गिरने या वायुमण्डल में आर्द्रता[2] के बढ़ने से वायु, जल-वाष्प से संतृप्त[3]

१– पानी का अपने धरातल से धीरे-धीरे भाप बनकर उड़ जाना वाष्पीकरण कहलाता है। इस क्रिया में ताप, जल–वाष्प में केन्द्रित होता है। सर्य एक मिनट में पृथ्वी से ३७ अरब टन पानी वाष्पीकरण द्वारा खींचता है। और एक सेकेण्ड में १००० मिलियन किलोवाट उर्जा फेंकता है।

२– किसी समय वायु में व्याप्त वाष्प की मात्रा उसकी आर्द्रता कहलाती है। यह दो प्रकार की होती है। सापेक्ष एवं निरपेक्ष। बिशेष अध्ययन हेतु देखिए– भौतिक भूगोल के सिद्धान्त ले० कृपाशंकर गौड़, १९७४, पृ०–४०६–४०७।

३– किसी विशिष्ट तापमान पर वायु में जितनी जलवाष्प धारण करने की सामर्थ्य है उतनी वाष्प ग्रहण कर लेने पर वह संतृप्त हो जाती है। वही, सन्दर्भ–२

होती है । तो संघनन या घनीभवन[1] की क्रिया द्वारा जल-वाष्प, जल-कणों के रूप में परिवर्तित होने लगती है ।

सन् १८९७ ई० में विलसन ने घनीभवन करने में नाभिक केन्द्रों[2] का महत्व निर्दिष्ट किया था । वायु में बहुत से छोटे-छोटे धूल एवं अन्य कण मिले रहते हैं। उनमें प्रधान वे हैं जो जल को आकृष्ट करते रहते हैं जैसे—नमक के कण, धूम्र, रसायनिक पदार्थ तथा जलने के बाद अवशिष्ट कण । वायु में १००% नमी होने के अनन्तर अर्थात् वायु के ओस बिन्दु[3] से नीचे ठंडा होने से वाष्प, जल में परिवर्तित होकर इन कथित कणों के चारों ओर जमा हो जाती है ।

इस क्रिया में अनेक जलकण परस्पर संयुक्त होकर एक बड़ा जलकण बनाते हैं जो मेघ कण कहलाता है। एक मेघ कण में एक भाग नाभिक केन्द्रक का और १०,००० भाग पानी का होता है। इसका व्यास ४० माइक्रोन (लगभग ०.४० मि० मी०) के बराबर होता है । हौटन नामक विद्वान के अनुसार ये नाना जलकण वाष्प को शीघ्रता से आत्मसात करते चलते हैं । छोटे कण बड़े कणों की अपेक्षा यह क्रिया अधिक शीघ्रता से करते हैं क्योंकि इनका लक्ष्य कणों को समान आकार का करना है । कथित क्रिया द्वारा वाष्प कणों का मेघ कणों में परिवर्तित हो जाने का ढंग ज्ञात हो जाता है ।

घनीभवन की यह क्रिया नाभिक केन्द्रों के बिना सम्भव नहीं है । घनीभवन वायु में लगातार होता रहता है । सर्वप्रथम बहुत बारीक जलकण बनते हैं जो आगे धीरे-धीरे सघन कोहरे के रूप में बदल जाते हैं । संवाहन क्रिया द्वारा जब हवा

१— जलवाष्प के जलरूप में परिणित होने की क्रिया को संघनन कहते हैं । इसमें ताप मुक्त होता है । परन्तु संघनन से वायु का तापमान बढ़ता है । संघनन की क्रिया तब प्रारम्भ होती है जब वायु संतृप्त अवस्था में पहुँच चुकने पर भी उत्तरोत्तर ठंडा होती जाय । यह क्रिया वाष्पीकरण की विलोम है । वही, सन्दर्भ—२ पृ०—४१० ।

२— इनका पता सर्वप्रथम एटकिन ने सन् १८८० ई० में लगाया था । इन्हें हाइग्रोस्कोपिक न्यूक्लिआई कहा गया है । ये तीन प्रकार के होते हैं । एटकिन, दीर्घ एवं विशाल नाभिक । इसका व्यास १–२ माइक्रान होता है । १ माइक्रोन = ०.००१ मि० मी० ।

३— ताप की वह अवस्था अथवा वह तापमान जिसपर संघनन आरम्भ होता है ओसांक कहलाता है । यह कोई निश्चित तापमान नहीं होता । जिस ताप पर वायु संतृप्त अवस्था को पहुँच जायेगी वही तापमान उस अवस्था में ओसांक होगा —

—वहीं, भौ० भू० के सिद्धान्त, पृ० ७४४–७४५ ।

तीव्रता से ऊपर उठकर ठण्डी होती है तो जलकण बड़े बनते हैं और उनसे मेघ मालाओं की सृष्टि होती है। मेघ कण बनने में १०० सेकेण्ड का समय लगता है परन्तु इसके उपरान्त वर्षा की जलबूँद बनने में २४ घण्टे लगते है।[१]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि वायुमण्डल में उपस्थित वायु के साथ, धूल, नामक एवं अन्य रासायनिक पदार्थों के कणों, धूम्र के साथ विद्यमान काजल, राख, तथा अन्य कणों, वायु-मण्डल के ताप के ओसाङ्क के नीचे जाने एवं संघनन क्रिया के परिणाम स्वरूप, वायुमण्डल की जल-वाष्प, जल एवं मेघ कणों में परिवर्तित होकर मेघों की सृष्टि करती है। यही मेघों के निर्माण की वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

४. २. **मानस में मेघों के निर्माण की प्रक्रिया**—तुलसी ने मानस[२] में अनेक स्थलों[३] पर धूल (धूरि) या रज शब्दों का प्रयोग किया है। किन्तु अनेक स्थल ऐसे हैं जिनसे यह स्पष्ट प्रकट होता है, कि धूल के कण वायुमण्डल में विद्यमान रहते हैं। जो बादलों के निर्माण में सहयोग प्रदान करते हैं। यह धूल कण प्रमुख रूप से वायु-मण्डल में वायु के सहयोग से पहुँचते हैं।

उन्होंने सन्त 'सन्त असन्त बन्दना' प्रकरण में सुसंगति एवं कुसंगति के प्रभाव से लाभ-हानि[४] बतलाते हुए सरल, सुबोध एवं साहित्यिक भाषा तथा उपदेशात्मक शैली में लिखा है कि बादलों के निर्माण में सहयोगी कण, धूल, वायु के साथ ऊर्द्धगामी होकर वायुमण्डल में चढ़ते हैं(इन धूल कणों को कमरे में आने वाली प्रकाश किरणों के साथ सरलता से देखा जा सकता है) वहीं ऊँचे धरातल से नीचे धरातल की ओर बहने वाले द्रव (जल) से जिसे तुलसी ने 'नीच'[५] कहा है मिलकर कीच का

१– भौतिक भूगोल ले० प्रो० मीरावातल, प्रथम संस्करण, पृ० ७४४–४५

२– जिसकी प्रशंसा अनेक देशी एवं विदेशी विद्वानों ने की है।
देखिए–मानस मोती, प्रधान संपादक, मदनमोहन शर्मा, प्रबन्ध सम्पादक बद्री नारायण तिवारी, मानस संगम–कानपुर सं० २०३०

३– १।२०२।५, १।३०७।१, १।३३८।४, २।९९।२, २।११०।२, २।१३८।१, २।२३७।२ २।३१८, ५।४।२, ५।१८, ६।६८।२, ६।८२। ख–२, ६।८६।३

४– हानि कुसंग सुसंगति लाहू।
लोकहुँ बेद बिदित सबकाहू ॥१।६।४

५– नीच शब्द का अर्थ यहाँ जल की नीचे की गति से लिया गया है तथा गंगा आदि नदियों को निम्नगा कहा गया है क्यों कि वे नीचे को जाने वाली हैं।
—मानस–पीयूष, खण्ड–१, सम्पादक–अंजनी नन्दन शरण गीता प्रेस, गोरखपुर, सप्तम संस्करण, सं० २०२५, पृ०–१६१ पर नोट संख्या–२।

निर्माण करते है ।

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा ।
कीचहिं मिलइ नीच जल संगा ॥१।६।५

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर वे धूल कणों को वायु के साथ मिलकर वायु मण्डल में पहुँचने की बात लिखते हुए कहते हैं कि मार्ग में पड़ी हुई निरादृत धूल, जो सब के पदों का प्रहार झेलते हुए वायु के सहयोग से उसे आपूरित कर, वायु-मण्डल में पहुँच जाती है, फिर चाहे राजा के नेत्रों में पड़े या मुकुट में–

रज मग परी निरादर रहई ।
सब कर पद–प्रहार नित सहई ॥
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई ।
पुनि नृप नयन किरीटन्हिपरई ॥७।१०५।६

मानस के अनुसार धूल वायु के सहयोग से वायुमण्डल में पहुँच कर वहाँ सदैव विद्यमान रहती है । वह चाहे लात के प्रहार से ऊपर जाय, "लातहुँमारे चढ़ति सिर नीच को धूरि समान" ॥[1] अथवा चित्रकूट में भरत की सेना के आगमन से उठे, जिसका अवलोकन राम ने किया है–

सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए ।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए ॥ २।२२५।छं०

खर-दूषण की सेना से उठने वाली धूल से आपूरित वायु-मण्डल भी दृष्टव्य रहा है–

धूरि पूरि नभ मंडल रहा ।
राम बोलाइ अनुज सनकहा ॥३।१७।५

रावण की सेना से उठने वाली धूल में यह सामर्थ्य थी कि वह सूर्य को छिपा देती थी ।[2] अस्तु, यह सत्य है कि पवन के साथ ही धूल कण वायु-मण्डल में पहुँचते हैं । इसी क्रम में इन धूल कणों के साथ नमक के कण या अन्य रासायनिक पदार्थों के कणों के वायुमण्डल में पहुँचने की सम्भावनाओं को अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि उक्त आर्द्रताग्राही कण मिट्टी के कणों में ही सम्मिलित रहते हैं ।

१– मानस २।२२९ ।

२– उठी रेनु रबि गयउ छिपाई ।
मरुत थकित बसुधा अकुलाई ॥६।७८।४

वायुमण्डल में वायु के वेग के शान्त हो जाने पर कुछ बड़े कण पृथ्वी पर आ जाते हैं और बहुत बारीक तथा हल्के कण वायुमण्डल में विद्यमान रहते हैं।

तुलसी इस तथ्य से सब को परिचित कराते हैं कि अग्नि, धुएँ को धारण करती हें।[1] वे साधु असाधु की संगति का प्रभाव पक्षियों (तोता और मैना) पर दिखाते हुए[2] बादलों के निर्माण में सहयोगी इस नाभिक केन्द्रक धुवाँ की संगति का प्रभाव प्रदर्शित करते हुए कहते है–

धूम कुसंगति कारिख होई।
लिखिअ पुरान मंजु मसिसोई ॥१।६।६

यही धुआँ वायु से हल्का होने के कारण वायु के सहयोग से, वायुमण्डल में अपने काजल एवं राख कणों के साथ विद्यमान रहता है। इसकी पुष्टि तुलसी की अगली अद्‌र्धाली का 'सोइ' शब्द करता है जिसका अर्थ वही धूम है जिसका वर्णन १।६।६ में किया गया है। इसी धुएँ का उल्लेख १।९।५ में भी है।

उदाहरण अलंकार के माध्यम से तुलसी ने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि आकाश में तम के साथ धूम्र और धूल भी होती है।

उमा राम विषइक असमोहा।
नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥१।११६।२

गो० तुलसीदास ने नदी[3], नाले, तालाब, वापी, सागर झीलों

१– प्रभु अपने नीचन्हु आदरहीं।
अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं ॥२।२८४।२

२– साधु-असाधु सदन सुक सारीं।
सुमिरहि रामु देहिं गनि गारीं ॥१।६।५

३– नदी पुनीत पुरान बखानी ।
अत्रिप्रिया निज तप बल आनी ॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि।
जो सब पातक पोतक डाकिनि ॥२।१३१।३
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या।
मेकल सुता गोदावरि धन्या ॥२।१३७।२
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि।
उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ॥७।३।३
सब सर सिंधु नदी नद नाना।
मंदाकिनि कर करहिं बखाना ॥२।१३७।३

आदि[1] को मेघ निर्माण के आधारभूत तत्व जल के स्रोत्रों के रूप में अनेक स्थलों पर[2] उल्लेख किया है ।

बन के इन्हीं अनेक जलाश्रयों को दिखाने के लिए कोल-भील, राम-लक्ष्मण से आग्रह करते हैं।

तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब ।
सर निरझर जल ठाउँ देखाउब ॥२।१३५।४

इन सम्पूर्ण जल स्रोतों, विशेष रूप से समुद्र[3] से, जल, वाष्पीकरण की क्रिया द्वारा, वाष्प के रूप में वायुमण्डल में पहुँच जाता है । यह वैज्ञानिक सत्य है कि इस वाष्पीकरण की क्रिया में बनी वाष्प को जल-वाष्प के रूप में रखने के लिए एक ताप या अग्नि की आवश्यकता होती है जिसे गुप्त ऊष्मा[4] कहते हैं । वह वाष्प में

तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ ॥२।८४
सई तीर बसि चले बिहाने ।
श्रृंगबेर पुर सब निअरानें ॥२।१८८।१
करमनास जलु सुरसरि परई ।
तेहि को कहहु सीस नहिं धरई॥२।१९३।४

१– बापी कूप सरित सर नाना ।
सलिल सुधा सम मनि सोपाना ॥२।१२१।३
झरना झरहिं सुधा सम बारी ।
त्रिबिध ताप हर त्रिबिध बयारी ॥२।२४८।३
एहि बिधि भरतु फिरत बनमाहीं ।
नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं ॥
पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा ।
खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा ॥२।३११।१

२–मानस १।सो० १४ ङ, १।३१।३, १।३६, १।३८।२–४–६, १।८४।१ १।८५।४ १।२९३।१, २।९९।१, २।१०३।१, १।२१०, २।२३५।३, २।२७५।१, २।३०७।२, २।३०९, २।३०९।१–३–४, ३।१३, ५।२।छ–२, ६।५, ७।२८।छ

३– मानस–१।३१।३, १।सोरठा १४, १।२९३।१, ६।५ आदि स्थलों पर समुद्र का उल्लेख है ।

४– एक ग्राम उबलते हुए पानी को स्थिर ताप पर वाष्प में बदलने के लिए जिस ऊष्मा की मात्रा की आवश्यकता पड़ती है । वह वाष्पन की गुप्त ऊष्मा कहलाती है । वाष्प की गुप्त ऊष्मा ५३६ कलौरी प्रतिग्राम होती है । यही ऊष्मा संघनन के समय मुक्त होकर वातावरण को गर्म करती है ।

संगृहीत गुप्त ऊष्मा, वातावरण के ठण्डे होने पर मुक्त होकर वाष्प को जल में बदल देती है।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मानस के अनुसार वायुमण्डल में, वायु के सहयोग से धूल, नमक एवं अन्य आर्द्रता ग्राही रासायनिक कण तथा धुआँ, काजल, राख और जल स्रोतों से उत्पन्न जलवाष्प विद्यमान रहती है। यह जल-वाष्प, वातावरण के ठण्डे होने पर अपनी गुप्त ऊष्मा का जिसे तुलसी ने 'निज परिताप'[1] शब्द से अभिहित किया है, परित्याग करते हुए, संघनन की क्रिया द्वारा जल कणों में परिवर्तित होकर उपर्युक्त कणों के आसपास जमकर मेघ कणों का निर्माण करती है जिससे बादलों की सृष्टि होती है। तुलसी का साहित्यिक निरूपण इस तथ्य को स्पष्ट रूप से प्रकट करने में सक्षम है।

सोइ जल अनल अनिल संघाता।
होइ जलद जग जीवन दाता ॥ १।६।६

'सोइ' का अर्थ यहाँ उसी धुवें से है जिसका वर्णन "धूम कुसंगति…। (१।६।६)" में किया गया है जो धूम्र कणों से संबंधित है। 'जल' का अर्थ जलवाष्प और अनल का अर्थ गुप्त ऊष्मा[2] के परित्याग एवं वातावरण में गर्मी या ताप बढ़ने से है। 'अनिल' का अर्थ वायु एवं उसमें उपस्थित धूल या अन्य कणों से है। ये सभी

१— निज परिताप द्रवइ नवनीता।
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥ ७।१२४।४

२— (अ) वास्तव में भाप के अन्दर बहुत सा ताप गुप्त रूप में विद्यमान रहता है और जब वाष्प पुनः जल में परिणित होती है तब मुक्त होता है। वाष्प में विद्यमान इस ताप को गुप्त ऊष्मा कहते हैं।

केवल १००° से० ग्रे० पर ही जल, वाष्प में बदलता है वस्तुतः ऐसा नहीं है। नीचे तापमान पर भी जल के साथ वायु का सम्पर्क होने पर वाष्पीकरण होता है।

—वही—भौ० भू० के सिद्धान्त पृ०—४१०।

(ब) जल-वाष्प में केन्द्रित यह ताप शक्ति ही गुप्त ताप शक्ति है। इसी शक्ति के कारण भाप गैस की अवस्था में बनी रहती है। हवा के संपृक्त होने पर घनीभवन की क्रिया द्वारा भाप जल में परिवर्तित हो जाती है और गुप्त ताप शक्ति वायुमण्डल में मिलकर वायु को गर्म कर देती है यह घनीभवन की गुप्त ताप शक्ति कहलाती है अतः वर्षा के बाद वायुमण्डल का तापक्रम कुछ बढ़ जाता है। यही शक्ति वायुमण्डल में तूफान आदि की उत्पत्ति करती है।

—वही, भौ० भू० पृ०—७३८।

जब आपस में संयोग (संघात) करते हैं तभी संसार को जीवन देने वाले बादलों का निर्माण होता है । 'जल ही जीवन है, की पुष्टि भी यहाँ परिलक्षित होती है क्योंकि मेघ से वर्षा, वर्षा से जल, जल से वनस्पतियाँ एवं अन्न और अन्न से प्राणों की रक्षा होती है ।

उपर्युक्त अद्र्धाली की व्याख्या के माध्यम से बादलों के बनने की उपर्युक्त प्रक्रिया का समर्थन स्व० प्रो० रामदास गौड़ एम० एस-सी० ने मानस-पीयूष[1] में इस प्रकार किया है ।-

ताप बल से जल, वाष्प (भाप) होकर अन्तरिक्ष में इकट्ठा होता है सही, पर कितना ही ठण्डा हो जाय, जल और उपल तब तक नहीं बन सकता जब तक धूम कण या रज कण का संयोग न हो । ज्यों ही धूमकण या रज कण वाष्प को जमा देते हैं त्यों ही जल बन जाता है (सं+घात=संघात=मेल वा क्रिया वा चोट वा संयोग) अतः अनल +अनिल+जल+धूम कण, इस संघात से जलद (जल+द) बनता है ।

गीता[2] में यज्ञ कर्मो से उत्पन्न होने वाले धुवें से बादलों का बनना कहा गया है । मेघ दूत में धुआँ, तेज, जल और पवन का मेल ही मेघ बताया गया है ।[3] लिंग पुराण[4] भी धूम, अग्नि और वायु के संयोग से मेघ का बनना मानता है । इस प्रकार-हमारे पूर्वज धूम से मेघों का बनना बराबर मानते आये हैं ।[5]

तुलसी भी इसकी पुष्टि करते हुए लिखते हैं कि आग से उत्पन्न हुआ धुआँ मेघ की पदवी पाकर उसी अग्नि को बुझा देता है । यथा-

जेहि ते नीच बड़ाई पावा ।
सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा ।।
धूम अनल संभव सुनु भाई ।
तेहि बुझाव घन पदवी पाई ।। ७।१०५।५

१- वही, मा० पी० खण्ड-१, पृ०१६२ दोहा ७ (८-१२)-६ ।

२- अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ।। ३।१४

३- धूम ज्योतिः सलिल मरुतां सन्निपातः क्व मेघः ।
-पूर्व मेघः श्लोक-५

४- अतोधूमाग्निवातानां संयोगस्त्वभ्रमुच्यते ।।३९।।
-लिंग पुराण, पूर्वार्ध, अध्याय-५४

५- देखिए-वही मा० पी० खण्ड-१, पृ०-१६२ ।

तुलसी बादलों के बनने की वैज्ञानिक प्रक्रिया के संदर्भ में को प्राचीन भारतीय साहित्य से प्राप्त ज्ञान के संदर्भ में ही स्वीकार करते हैं।[1] मानस के आधार ग्रन्थ[2] तो इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि मेघ निर्माण प्रक्रिया के ज्ञान में मानस पर गीता एवं मेघ दूत आदि का प्रभाव है न कि पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञान का।

इस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक तथ्यों से परिपुष्ट बादलों के बनने की प्रक्रिया को प्राचीन संस्कृतसाहित्य से ग्रहण करते हुए, जनभाषा और जन साहित्य में तुलसी नेप्रस्तुत कर, बादल बनने के अधुनातन वैज्ञानिक सिद्धान्त को बहुत पहले ही प्रस्तुत कर दिया था। आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रस्तुत जलद निर्माण तथा गो० तुलसीदास जी द्वारा साहित्यिक संदर्भों में संकेतित घन संघनन एक ही प्रक्रिया है।

४.३. आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में मेघों की तड़ित और गर्जन :—थेलस[3] के प्राचीन लेखों एवं डॉ० गिलबर्ट[4] के प्रयोगों ने घर्षण विद्युत[5] का ज्ञान दिया किन्तु डॉ० गिलबर्ट के पूर्ववर्ती तुलसी, घर्षण द्वारा ऊष्मा या अग्नि या घर्षण विद्युत के उत्पन्न होने के सिद्धान्त की ओर पूर्व संकेत करते हुए लिखते हैं।

१— नानापुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषानिबन्धमति मञ्जुलमातनोति॥
—मानस १।श्लोक ७

२— तुलसी मानस रत्नाकर, ले० डॉ० भागवती सिंह, प्रथम संस्करण, पृ०—८५—८६।
मानस के आधार ग्रन्थ—बाल्मीकीय रामायण, अध्यात्म रामायण, महा रामायण हनुमान्नाटक, प्रसन्न राघव, भागवत, शिवपुराण, बाराह पुराण, उत्तरराम चरित, योग वशिष्ठ, कुमार संभव, भुसुण्डि रामायण, चाणक्य नीति, हितोपदेश, मेघ दूत कठोपनिषद, भगवत गीता आदि।

३— यूनानी दार्शनिक थेलस के प्राचीन लेखों से पता चलता है कि ६०० ई० पू० लोगों को यह जानकारी थी कि एक प्रकार की लकड़ी को, जिसे एम्बर कहते हैं यदि ऊन से रगड़ा जाय तो उसमें ऐसा गुण आ जाता है कि वह हल्की वस्तुओं जैसे कागज, कार्क तथा सरकंडे के गूदे को अपनी ओर आकर्षित करने लगती है।

४— १६०० ई० में डॉ० गिलबर्ट ने, जो महारानी एलिजा बेथ के स्वास्थ्य संरक्षक थे, लोगों को प्रयोगों के माध्यम से दिखाया कि केवल एम्बर ही ऐसी वस्तु नहीं है जो रगड़े जाने पर हल्की वस्तुओं को आकर्षित करने लगता है बल्कि काँच को सिल्क से रगड़ा जाय तो काँच में भी हल्की वस्तुओं को आकर्षित करने का गुण आ जाता है।

५— वह विद्युत—ऊर्जा, जो रगड़ के द्वारा उत्पन्न होती है, घर्षण—विद्युत कहलाती है।

अति संघरषन जौं कर कोई।
अनल प्रगट चंदन ते होई ।। ७।११०।८

घर्षण द्वारा उत्पन्न विद्युत दो प्रकार की होती है धन विद्युत[1] एवं ऋण विद्युत[2]। जिन वस्तुओं पर ये स्थिर होती है उन्हें क्रमशः धनावेश और ऋणावेश कहते हैं। ये आवेशित वस्तुयें प्रेरण[3] क्रिया द्वारा विद्युत सुचालक वस्तुओं को भी आवेशित कर देती हैं।

सन् १८१७ ई० में धन और ऋण विद्युत का नाम करण करने वाले बेंजामिन फ्रेंकलिन ने सर्वप्रथम जून सन् १७५२ ई० में अपने पतंग के प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया कि आकाश की विद्युत, घर्षण या प्रेरण विधि द्वारा उत्पन्न विद्युत के समान है और बादलों पर भी साधारण विद्युत आवेश होता है।

४.४. **मेघों में विद्युत आवेश का कारण**:– वास्तव में वायु एक कुचालक[4] है; लेकिन सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणें और अंतरिक्ष किरणें वायु कणों को आयनित कर देती हैं। जल वाष्प इन्हीं आवेशित वायुकणों के ऊपर रुककर बादलों का निर्माण करती है। अस्तु, जलकण भी वायु कणों से आवेशित हो जाते हैं और बादलों पर इस प्रकार धन अथवा ऋण आवेश आ जाता है।

कुछ प्रयोगों के आधार पर यह भी सिद्ध हुआ हैं कि समुद्रों से उठने वाली जलवाष्प और पानी जब हवा की तरंगों से छोटी–छोटी बूँदों में विभाजित होता है तो यह जल बूँदें धन आवेश से युक्त होती हैं। कोहरा जब पृथ्वी को स्पर्श करता है उस समय उसमें ऋण विद्युत आ जाती है। बादलों को आवेशित करने में घर्षण और प्रेरण की क्रियायें भी सहायता करती हैं।

४.५. **वैज्ञानिक दृष्टि में तड़ित और गर्जन**:–विपरीत प्रकार के उच्च आवेश युक्त बादलों के बीच विद्युत तनाव (आकर्षण) इतना अधिक हो जाता है कि दोनों

१– शीशे की छड़ को रेशम से रगड़ने पर जो विद्युत ऊर्जा उत्पन्न होती है उसे धन विद्युत माना गया है।

२– एबोनाइट की छड़ को बिल्ली की खाल से रगड़ने पर जो विद्युत ऊर्जा उत्पन्न होती है उसे ऋण विद्युत माना गया है।

३– किसी आवेशित वस्तु से कुछ दूरी पर कोई अन्य वस्तु लाने पर उस वस्तु के पास के सिरे पर विपरीत आवेश उत्पन्न हो जाता है इस क्रिया को 'प्रेरण' कहते हैं।

४– जिन वस्तुओं पर विद्युत एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रवाहित नहीं होती हैं उन्हें 'कुचालक' कहते हैं और जिनमें विद्युत का प्रवाह होता है उन्हे 'सुचालक' कहते हैं। लकड़ी 'कुचालक' और ताँबा 'सुचालक' है।

सतहों के बीच की वायु उसे संभाल नहीं पाती तो वायु में तीव्र आवेश (विद्युत विसर्जन) प्रकट होता है और चिनगारी तथा चमक उत्पन्न होती है जिसे 'तड़ित' कहते हैं। जिस स्थान पर तड़ित की चमक दिखाई देती है वह केवल २० सेमी०, चौड़ा, कुछ सेमी० से लेकर मीलों आड़ा तिरछा मार्ग होता है। जब विद्युत विसर्जन होता है तो तड़ित के भाग में अत्यधिक ऊष्मा उत्पन्न होती है जो सूर्य के तापक्रम का ढाईगुना होती है। इस मार्ग की वायु अत्यधिक ऊष्मा के कारण इतना फैलती है कि तीव्र गति से बाहर जाने और उसका स्थान ग्रहण करने के लिए उतनी ही तीव्रता से ठंडी वायु के आने की गति, तथा विद्युत विसर्जन के कारण, प्रबल ध्वनि सुनाई देती है। तड़ित और गर्जन यद्यपि एक साथ ही उत्पन्न होते हैं परन्तु ध्वनि का वेग[1] प्रकाश के वेग[2] की तुलना में बहुत कम है। अतः पहले तड़ित दिखाई देती है और बाद में गर्जन सुनाई पड़ती है। जो गर्जन बादलों की विभिन्न परतों, पहाड़ियों या अन्य अवरोधों से परावर्तित होती है, उसे मेघों की गड़गड़ाहट कहते हैं।

अस्तु, आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार कहा जा सकता है कि आकाश में बिजली चमकने का कारण कभी दो बादलों के बीच में और कभी बादल तथा पृथ्वी के बीच होने वाला विद्युत–विसर्जन है और गर्जन का कारण वायु की गति और विद्युत-विसर्जन है।

४.६. **मानस में तड़ति और गर्जन:**-मानस में जिस तडित और गर्जन का वर्णन प्रस्तुत किया गया है वह भी उपर्युक्त कारणों से ही सम्भव है। साहित्यिक कृति मानस, कारण न प्रस्तुत करते हुए कार्य का वर्णन करती है जिससे उसके वैज्ञानिक कारण का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

४.६.१. **तड़ित:**– मानस में शिव के धनुष की चमक[3] राम के वस्त्रों,[4]

१– हवा में ध्वनि का वेग–११२० फीट या ३३० मीटर प्रति सेकेण्ड अथवा ७६३.६४ मील प्रति घण्टा होता है।

२– ९९०००, ०००,० फीट या ३×१०^८ मीटर प्रति सेकेण्ड अथवा ६६९६०००, ०० मील प्रति घण्टा।

३– दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ।
पुनिनभ धनु मण्डल सम भयऊ ॥ १।२६०।३

४– केकिकंठ दुति स्यामल अंगा।
तड़ित बिनिदक बसन सुरंगा ॥ १।३१५।१

धोती[1] एवं लक्ष्मण के रंग[2] को बिजली की चमक एवं रंग के समान कहा गया है वहीं उदाहरण अलंकार के माध्यम से तड़ित को बादलों में समाहित होते हुए।[3] लिखा है तथा अन्यत्र उत्प्रेक्षा[4] के द्वारा भी इसका वर्णन किया गया है।

मेघों के मध्य तड़ित की क्षण भंगुरता या अस्थिरता का वर्णन करते हुए उदाहरण अलंकार के माध्यम से तुलसी दुष्टों के प्रेम की अस्थिरता भी प्रकट करते हैं।

दामिनि दमक रही घन माहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥ ४।१३।१

यही नहीं अन्यान्य प्रसंगों में राम मेघों के घुमड़ने और बिजली के चमकने की बात भी कहते हैं।

देखु बिभीषन दच्छिन आसा।
घन घमंड दामिनी बिलासा ॥ ६।१२।१

विभीषण तड़ित और मेघ मालाओं के जैसे दृश्य का रहस्य प्रकट करते हैं।

कहत विभीषन सुनहु कृपाला।
होइ न तड़ित न बारिद माला ॥ ६।१३।२

इससे स्पष्ट है कि 'तड़ित' और 'गर्जन' का वैज्ञानिक रहस्य मानसकार को ज्ञात था।

४.६.२. **गर्जनः**—मानस में मेघों की गर्जना का वर्णन तुलसी ने विभिन्न स्थलों पर किया है।—

१– पीत पुनीत मनोहर धोती।
हरति बाल रबि दामिनि जोती ।। १।३२६।२

२– दामिनि बरन लखन सुठि नीके।
नख सिख सुभग भावते जी के ॥ २।११४।४

३– तन महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं।
जिमि दामिनि घन माझ समाहीं ॥ ६।६८।३

४– (क) प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छवि पाव।
भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बरहिं नचाव ॥ १।३१६

(ख) प्रगटहिं दुरहि अटन्ह पर भामिनि।
चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि ॥ १।३४६।२

(ग) मंदोदरी श्रवन ताटंका।
सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ॥ ६।१२।३

बरषा काल मेघ नभ छाए ।
गरजत लागत परम सुहाए ॥ ४।१२।४
घन घमंड नभ गरजत घोरा ।
प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥ ४।१३।१
मधुर-मधुर गरजई घन घोरा ।
होइ बृष्टि जनि उपल कठोरा ॥ ६।१२।१

बादलों की इस गर्जन का प्रयोग, भावों की साहित्यिक एवं उत्कृष्ठ अभिव्यक्ति के लिए भी अनेक स्थलों[1] पर किया गया है । आधुनिक विज्ञान के अनुसार 'गर्जन'[2] के कारणों के परिप्रेक्ष्य में ये प्रसंग अनुशीलन के योग्य बन गये हैं ।

४.७. **मानस में मेघ एवं उनके प्रकार**:—मानस में वर्णित, गगन बिहारी मेघों का वर्णन तुलसी ने चाहे भावों की सशक्ति अभिव्यक्ति अथवा भाषा की प्राञ्जलता के लिये उपमा[3], रूपक[4] या उत्प्रेक्षा[5] के माध्यम से किया हो या चातक

१– (क) प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी ।
मनहुँ सिखिन सुनि बारिद बानी ॥ १।२९४।२
(ख) चले मत्त गज घंट बिराजी ।
मनहुँ सुभग सावन घन राजी ॥ १।२९९।१
(ग) निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना ।
निज पराइ कछु सुनिअ न काना । १।३००।१
(घ) घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले । ६।४८।छं०
(च) दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा ।
जाचक, चातक, दादुर मोरा ॥ १।३४६।३
(छ) लागत बान जलद जिमि गाजहिं ।
बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं ॥ ६।६७।४
(ज) प्रभु प्रताप उर धरि रन धीरा ।
बोले घन इव गिरा गँभीरा ॥ ६।७४।६
(झ) मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजही । ६।८०।छं०

२– देखिए–४.५

३– मानस १।३१।५, १।३५।२, ३। श्लोक–२, ३।८, ६।४१।२, ६।८५।५, ७।५०।२, ७।११९।९,

४– मानस–३।श्लोक–१, ६।१४।१

५– मानस–१।३४६।१, ६।४०।१, ६।८६।१, ६।८६।२

प्रेम को प्रदर्शित करने[1] अथवा किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए किया हो[2] किन्तु यह निश्चित है कि अपने इस महाकाव्य में, इस कृषि प्रधान देश[3] की प्रगति में वह मेघों का इतना विशद वर्णन करना कैसे भूल सकते थे।

मानस में मेघों के निर्माण के साथ मेघों की गति शीलता का भी सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया गया है। ये वायु के वेग से कभी तो तितर-बितर हो जाते है,[4] कभी विलीन हो जाते हैं[5] और कभी-कभी वायु की गमन दिशा में जाने या स्थान-स्थान पर अपनी स्थिर स्थिति के रूप में भरत[6] एवं तुलसी के आराध्य राम को छाया प्रदान करते हैं।[7] तो कभी सूर्य को ढक लेते हैं।[8]

१- जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ।
जाचत जलु पबि पाहन डारउ।।
चातकु रटनि घटें घटि जाई।
बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई।। २।२०४।२

२- तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई।
गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई।। २।२३१।१

३- कृषी निरावहिं चतुर किसाना।
जिमि बुध तजहिं मोह मद माना।। ४।१४।४

४- (क) मूलं धर्म तरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं।
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहंतापहकृम्
मोहाम्भोधरपूग पाटन विधौ स्वःसम्भवं शङ्करं
बन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूपप्रियम्।। ३।श्लोक-१

(ख) चले निसाचर निकर पराई।
प्रबल पवन जिमि घन समुदाई।। ६।४१।२

(ग) चले मत्त गज जूथ घनेरे।
प्राबिट जलद मरुत जनु प्रेरे।। ६।७८।२

५- कबहुँ प्रबल बहि मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कुपूत के उपजें कुल सद्धर्म न सर्पाहिं।। ४।१५।क

६- किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ जसभा भरतहिं जात।।२।२१६

७- जहँ तहँ जाहिं देव रघुराया।
करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया।। ३।६।३

८- निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी।
प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी।।
जथा गगन घन पटल निहारी।
झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी।। १।११६।१

मेघ, निर्माण प्रक्रिया, तड़ित और गर्जन के वर्णन के साथ–साथ तुलसी बादलों के प्रकार पर भी प्रकाश डालते हैं ।

वह रावण के सिर पर विद्यमान, विशाल और काले छत्र की उत्प्रेक्षा बादलों की काली घटा से करते हुए लिखते हैं:–

छत्र मेघ डंबर सिर धारी ।
सोइ जनु जलद घटा अतिकारी ।। ६।१२।३

अन्यत्र उदाहरण अलंकार के अंतर्गत वह भक्ति हीन मनुष्य की शोभा जल रहित बादलों जैसी बताते हुए लिखते हैं–

भगति हीन नर सोहइ कैसा ।
बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।।

मेघों के आधुनिक अध्ययन के संदर्भ में ये जल रहित बादल पक्षाम मेघों जैसे हैं जो ७५०० से १०५०० मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं । ये जल वर्षा नहीं करते हैं ।[1] ये प्राय: श्वेत होते हैं ।

'जथा गगन घन पटल निहारी'[2] में घन पटल और जलद पटल शब्दों के अर्थ में योंतो कोई अन्तर प्रकट नहीं है किन्तु 'जलद पटल' बादलों का रंग हल्का भूरा होता है ।

इस प्रकार रंग की दृष्टि से मानस में तीन प्रकार के बादलों का वर्णन विद्यमान है ।

१–काले बादल, जिन्हें वर्षी बादल या निम्बस[3] कहते है ।

२–श्वेत बादल, जिन्हें पक्षाभ बादल या सिरस[4] कहते हैं ।

१– मेघ अध्येता अन्तर्राष्ट्रीय आयोग ने सन् १९३० में १० प्रकार के मेघ बताये हैं ।
पक्षाभ, कपासी, स्तरी, पक्षाभ कपासी, पक्षाभ स्तरी, कपासी मध्य, स्तरी मध्य, स्तर कपासी, वर्षास्तरी और कपासी वर्षी मेघ ।
विशेष अध्ययन के लिए देखिए–
–वही भौ० भू० के सिद्धान्त पृ०–४१३ ।

२– मानस–१।११६।१

३– यह बरसने वाले काले घने बादल होते हैं । यह काफी दूर तक फैले रहते है । इनका कोई आकार नहीं होता । इन्हीं बादलों से अधिकतर वर्षा होती है । देखिए–मानस ६।१२।३।

४– पक्षाभ या पंखाकृति वाले बादलों का वर्णन ४,७ में किया जा चुका है । बिनु जल बारिद…।

३–हल्के भूरे बादल, जिन्हें जलद पटल या स्ट्रेटस[1] कहते हैं ।

४.८. **मानस में वर्षी बादलों की ऊँचाई** :–हावर्ड नामक अंग्रेज विद्वान ने मेघों को ४ प्रकारों में बाँटा था । पक्षाभ मेघ, कपासी मेघ, स्तरी मेघ और वर्षी मेघ ।[2] यह वर्षी मेघ ही वर्षा करते हैं । तथा बरसते समय पृथ्वी से लगभग ३०० मीटर की ऊँचाई पर आ जाते हैं । आधुनिक विज्ञान द्वारा निरीक्षित एवं परीक्षित इसी सत्य को तुलसी उद्घाटित करते हैं :–

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ ।
जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ ॥ ४।१३।२

४.९: **वर्षा** :–वायु की आर्द्रता वर्षा का आधार है । वायु में विद्यमान वाष्प जब किसी कारण से ठण्डी होकर जल विन्दुओं का रूप धारण कर लेती है और वायु में इन जल बिन्दुओं की इतनी अधिक मात्रा हो जाती है कि वे वायु में विद्यमान केन्द्रकों में सधे नहीं रह सकते तो वे पृथ्वी पर बरस पड़ते हैं । जल बिन्दुओं का इस प्रकार बरसना 'वर्षा' कहलाता है । मानस में इसी प्रकार से होने वाली वर्षा का भी संकेत किया गया है ।

महा बृष्टि चलि फूटि किआरीं ।
जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारी ॥ ४।१४।४

यद्यपि मानस में मेघ सुख[3], गर्म तेल,[4] रक्त, धूल आदि[5] तथा अमृत[6] की वर्षा करते दिखाए गए हैं । किन्तु इन सब का उद्देश्य भावों की संप्रेषणीयता ही है ।

लेंगम्योर की धारणा के अनुसार बादलों से गिरने वाली बूँदें तीव्र गति के कारण छोटी बूँदों को अपने में समाचयित तथा अवशोषित कर लेती हैं । २० माइक्रोन त्रिज्या की एक बूँद लगभग ५० मिनट में २०० माइक्रोन त्रिज्या की बन

१– यह नीचे कुहरे की तरह बिखरे हुए और अधिक विस्तृत होते हैं । इनका रंग हल्का भूरा होता है । इनकी ऊँचाई लगभग ६०० मीटर होती है । देखिए– मानस १।११६।१ ।

२– वही भौ० भू० के सिद्धान्त पृ०–४१३ ।

३– मानस २।०।१

४– वही ५।१४।२

५– वही ६।१०१।छ–१

६– वही ६।१६ख

जाती है। इतनी बड़ी बूँदे आकाश में निलम्बित नहीं रह सकती अत: वर्षा के रूप में तीव्रता से नीचे गिरती हैं जो आघात की स्थिति उत्पन्न करती हैं। तीव्रता से गिरने वाली इन बूँदों का वर्णन भी तुलसी दास जी करते हैं।

बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें।
खल के बचन संत सह जैसें ।। ४।१३।२

४. १०. **मानस में कृत्रिम वर्षा**–हम जानते हैं कि वायु में नमी की उपस्थिति और जलवाष्प के संघनन के लिए ओस बिन्दु का प्राप्त करना वर्षा की आवश्यक दशा है।

जलवाष्प तो वायु में सदैव विद्यमान रहती है किन्तु ओस बिन्दु को प्राप्त करने के लिए या तो तापक्रम समान रहने पर वाष्प की मात्रा बढ़ाई जाय या हवा को किसी प्रकार ठण्डा कर दिया जाय तो उस निश्चित हवा का ओस बिन्दु प्राप्त हो जायेगा और घनीभवन की क्रिया सम्भव हो सकेगी।[1]

प्राकृतिक रूप में तो नमी की मात्रा समुद्रों के किनारे ही बढ़ती है, जहाँ नमी बराबर प्राप्त होती रहती है और वायु के पर्वतों से टकराकर ऊपर उठने अथवा धरातल के संपर्क से गर्म होकर वायु के ऊपर उठने और शीतल होने या गर्म प्रदेशों से ठण्डे प्रदेशों की ओर अग्रसर होने पर वायु के शीतल हो जाने से ओसांक बिन्दु प्राप्त हो जाता है।

यदि कृत्रिम उपायों द्वारा वायु को ठण्डा कर दिया जाय तो जल बाष्प के संघनन से कृत्रिम वर्षा हो जाती है। बरजेरोन-फिण्डी सेन[2] के सिद्धान्त के आधार पर न्यूयार्क के जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी के इंजीनियरों ने सन् १९४६ में ही हिमयान केन्द्रकों के द्वारा कृत्रिम वर्षा के प्रयोग सम्पन्न किए थे।

शीतल या शान्त कपासी मेघों में कार्बन डाई आक्साइड के ठोस कण अथवा सिल्वर आयोडाइड के महीन कणों की बौछार करने से हिम केन्द्रकों का निर्माण हो जाता है। इन कणों के चारों ओर बर्फ के अनेक कण निर्मित हो जाते हैं जो कृत्रिम वर्षा के बीजक पदार्थ माने जा सकते हैं। इन पदार्थों का विसर्जन वायुयान के

१– वही भौ० भू० के सिद्धान्त पृ० ७४२।

२– एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक जिसने सन् १९३३ में अपने एक सिद्धान्त में स्कन्द क्रिया का प्रधान कारण किसी बादल में जल और हिम ऋणों का सह अस्तित्व बतलाया था।

–जलवायु विज्ञान के मूल तत्व ले० डॉ० अनिल कुमार तिवारी, राजस्थान हिन्दी अकादमी, प्रथम संस्करण १९७४, पृ०–२९२

द्वारा अथवा धरातल में जैनरेटरों के द्वारा किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के शुष्क प्रदेशों में हिम बीजकों के अनेक प्रयोग किये गये हैं। आस्ट्रेलिया में क्रोस और स्क्वायर्स ने सन् १९४७ ई० में एक शांत कपासी बादल का सृजन करके घनघोर वर्षा की थी।[1]

हमारे देश में भी कृत्रिम बर्षा पर प्रयोग किये गये हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में यदि तुलसी के बादल राम राज्य में, माँगने पर जल प्रदान करते हैं तो इसमें न तो अतिरंजना की गंध आती है और न ही इसे कोरी कल्पना कहा जा सकता है।

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागे बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज ॥ ७।२३

सूर्य के तपने से वर्षा के संबंध को विलग नहीं किया जा सकता है—

तुलसी वर्षा से प्राप्त होने वाले आसुत जल (संघनन के फल स्वरूप प्राप्त जल) की स्वच्छता और शुद्धता की ओर भी इंगित करते हुए लिखते हैं।

भूमि परत भा ढाबर पानी।
जनु जीवहिं माया लपटानी ॥ ४।१३।३

४.११. **मानस में संघनित वाष्प के विविध रूपों का वर्णन**—आधुनिक जलवायु विज्ञान बादलों और कुहरे के अतरिक्त ओस, पाला, ओला और हिम को भी वाष्प के संघनित रूप मानता है। इनका भी वर्णन मानस में विद्यमान है।

ईतियों[2] के संदर्भ में वह अति वृष्टि और अनावृष्टि का वर्णन करते हैं। ओस[3], पाला[4], ओला[5] और हिम[6] का वर्णन करते हुए धूप, वर्षा और वायु[7] का

१– वही– जलवायु विज्ञान के मूल तत्व, पृ०–२९४

२– मानस– २।२३४।२ एवं २।२५२।१

३– २।२०३।१

ओस को सन् १८१८ ई० में डॉ० वैल्स ने जलबाष्प के संघनन का रूप और सन् १८८५ ई० स्काट लैण्ड निबासी जान एटकिन ने पौधों से निकली हुई भाप के संघनन का रूप सिद्ध किया था। वही भौ० भू० के सिद्धान्त पृ०–४११

४– २।७०।४, २।१५८।२, २।१६०।१ २।१६३, ६।११४।छ–३

५– १।२।४, ७।१२०।१०

६– १।८९।४, २।६१।२, २।१११ २।१६८।२, ६।६०।२, ७।२९।५ ७।१२१।१०

७– २।६१।२, २।१११, २।१५७।१ ४।–।५, ५।२५, ६।६०।२
पवन–१।७क, १।१०।६, १।२९७।३ ५।५८।१,

वर्णन भी मानस में किया गया है जिसका संबंध जलवायु से है।

४.१२. **मौसम ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन**– आधुनिक विज्ञान के अनुसार भारत में मौसम विज्ञान का प्रारम्भ सन् १७९२ में, मद्रास की वेध शाला की स्थापना से माना जाता है। भारत की प्रथम दैनिक मौसम रिपोर्ट १७ जून १८७८ ई० को प्रकाशित हुई थी किन्तु भारतीय साहित्य में इस विज्ञान की जानकारी प्राचीन काल से ही उपलब्ध है। वेदों में उल्लिखित वरुण, मारुति और इन्द्र का मौसम संबंधी ज्ञान प्रसिद्ध है। ऋग्वेद में पंजाव तथा भारतीय उप-महाद्वीप के उत्तर पश्चिमी भाग की मौसम प्रणालियों का उल्लेख है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्षमान की जानकारी दी गई है। कालिदास का मेघ दूत भी मौसम विज्ञान पर आधारित है। फिर भला 'नानापुराण निगमागम सम्मत, 'मानस' इससे कैसे अछूता रह सकता था।

सामान्य रूप से किसी विशेष समय में वायुमण्डल के तापक्रम, हवा के रुख वायु में नमी के परिणाम और वर्षा आदि के मिले जुले प्रभाव को मौसस कहा जाता है। मानस में वर्णित वर्षा, आतप एवं वायु आदि के अनेक वर्णन मौसम से ही संबद्ध हैं। अच्छे मौसम का वर्णन तो अनेक[1] स्थलों पर किया गया है।

सीतल मंद सुरभि बह बाऊ।
हरषित सुर संतन मन चाऊ॥ १।१९०।२

४.१३. **मानस में ऋतु सम्बन्धी ज्ञान**–मौसम सम्बन्धी सावधिक घटनाओं का सार ऋतु कहलाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से इन ऋतुओं के परिवर्तन का प्रमुख कारण पृथ्वी की वार्षिक गति एवं पृथ्वी का अपनी अक्ष पर झुकाव है।[2] यह हमारे देश की गौरवमयी उपलब्धि है कि ऋतु सम्बन्धी ज्ञान हमारी प्राचीन धरोहर है। विश्व में सबसे अधिक ऋतुनिष्ठ विभिन्नता भी हमारे

१– १।१०५।२, १।२११।४, १।३०२।२
२।१३६।४, २।२७८।२, २।३१०।२
५।१४।३

२– पृथ्वी अपनी अक्ष पर २३½° झुकी है, तथा अपनी अक्ष पर घूमती हुई ३६५¼ दिन में सूर्य की परिक्रम कर लेती है।

देश में है। यही कारण है कि हमारे साहित्यकारों ने ऋतु वर्णन को बड़ी प्रमुखता दी है। तुलसी के मानस में छः हो ऋतुओं का वर्णन विद्यमान है। ये षट् ऋतुयें इस प्रकार हैं–

क्रम संख्या	ऋतु का नाम	महीनों के नाम जिनमें ऋतु रहती है	महीनों के अंग्रेजी नाम जिनमें ऋतु रहती है
१–	बसन्त ऋतु	चैत्र, बैसाख	मार्च, अप्रैल
२–	ग्रीष्म ऋतु	ज्येष्ठ, असाढ़	मई, जून
३–	वर्षा ऋतु	श्रावण, भाद्रपद	जुलाई, अगस्त
४–	शरद ऋतु	अश्विन, कार्तिक	सितम्बर, अक्टूबर
५–	हेमन्त ऋतु	अगहन, पौष	नवम्बर, दिसम्बर
६–	शिशिर ऋतु	माघ, फाल्गुन	जनबरी, फरवरी

इन्हीं उपर्युक्त ऋतुओं का वर्णन करते हुए तुलसी लिखते हैं–

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी।
समय सुहावनि पावनि भूरी ॥ १।४१।१

वे इन ऋतुओं का क्रमबद्ध नामोल्लेख करते हुए, उनका सम्बन्ध, मानस की प्रमुख घटनाओं से जोड़ते हैं।

हिम हिम सैल सुता सिव ब्याहू।
सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू ॥ १।४१।१
बरनब राम बिबाह समाजू।
सो मुद मंगल मय रितु राजू ॥
ग्रीषम दुसह राम बन गवनू।
पंथ कथा खर आतप पवनू ॥ १।४१।२
वरषा घोर निसाचर रारी।
सुर कुल सालि सुमंगल कारी ॥
राम राज सुख विनय बड़ाई।
बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥ १।४१।३

इन्हीं षट्ऋतुओं का वर्णन रूपक के माध्यम से एक अन्य स्थल पर किया गया है।[1] साथ ही इन ऋतुओं को 'रितु अरु कुरितु'[2] या 'सकल

१– मानस–३।४३।१, ३।४३।२, ३।४३।३

२– सब तरु फरे राम हित लागी।
रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी ॥ ६।४।३

रितु"[१] से सम्बोधित किया गया है ।

बसन्त,[२] ग्रीष्म,[३] वर्षा,[४] शरद,[५] हेमन्त[६] और शिशिर[७] का वर्णन केवल पंचम सोपान को छोड़कर शेष सभी सोपानों में किसी न किसी रूप में अवश्य किया गया है। किष्किन्धाकाण्ड में तो प्रवर्षण गिरि पर रहते हुए राम वर्षा ऋतु का विस्तृत वर्णन करते हैं इस ऋतु का महत्व स्वीकार करते हैं-

बरषा काल मेघ नभ छाए ।
गरजत लागत परम सुहाए ।। ४।१२।४
घन घमण्ड नभ गरजत घोरा ।
प्रिया हीन डरपत मन मोरा ।। ४।१३।१
लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि ।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नु भगत कहुँ देखि ।। ४।१३

जल वर्षा के विभिन्न सालंकारिक रूपों में भी वर्षा ऋतु का विवरण प्रस्तुत हुआ है ।

सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं ।
बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं ।। ५।२३।३
दस दिसि रहे बान नभ छाई ।
मानहुँ मघा मेघ झरि लाई ।। ६।७२।२
तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान ।
देव न बरषहि धरनीं बए न जामहिं धान ।। ७।१०१ ख

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानस में मौसम और ऋतुओं सम्बन्धी पर्याप्त ज्ञान है। मौसम के ज्ञान के बिना ऋतु और जलवायु (विज्ञान) के ज्ञान को स्वीकारा

१- कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी।
इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ।। २।१३५।२

२- मानस १।३५।६, १।८५।३, १।२२६।१-३, २।१३३, २।२१४।४, ३।३६।५, ६।१, ६।७८।३, ७।२७।१,

३- ४।११।४

४- १।१९, १।३४।२-३-४-५, १।२६०।२, २।२२।२, २।५३।१, २।२५१, ४।१२।४ से ४।१५ तक

५- १[३०।६, १४६।१, २३१।३, २४२।१, ३१५।२,], २ [५२, ६३।१, ६४।४, ७८, २१५, २१६, २२६, ३२४।२], ३[१२, २९।६], ६।४५।५, ७।६६

६- १।३१।३

७- १।४१।१

नहीं जा सकता। तभी तो ऑस्टिन मिलर ने सन् १९६१ में जलवायु विज्ञान की परिभाषा करते हुए लिखा है–

"यह विज्ञान मौसम की औसत दशाओं का अध्ययन करता है जो एक दीर्घकाल (१५ से २५ वर्ष की औसत) के निरीक्षण का परिणाम होता है।"[1]

मानस में जलवायु विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान के साथ-साथ भूकम्प[2] ज्वार-भाटा[3] एवं ज्योतिष ज्ञान[4] का भी उल्लेख किया गया है। विज्ञान की दृष्टि से इनकी भी समीक्षा की जा सकती है।

१– वही, जलवायु विज्ञान के मूल-तत्व, पृ०–३।

२– कंप न भूमि न मरुत बिसेषा ।
अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा ।। ६।१३।१

३– मानस, १।६।७, २।७

४– वही, १।६७, २।१६।२, २।१८० आदि।

अध्याय ५

मानस का आधुनिक विमान एवं वैमानिकी के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन

५. १. ०. **प्राचीन भारत में विमान और वैमानिकी**–यह जानने के पूर्व कि विमान और वैमानिकी के सम्बन्ध में प्राचीन युग में भारतवासियों की क्या कल्पनायें धारणायें एवं मान्यतायें थी, यह जान लेना आवश्यक है कि उस युग के उड़ान के सम्बन्ध में अन्य देशवासियों के क्या विचार थे।

बाइबिल के अनुसार इजराईल के फरिश्ते हमेशा उड़ते ही रहते थे। उनके कन्धों पर पंख होते थे। मिश्र में भी पंख वाले अनेक देवताओं की कल्पना की गई है।

चींन में तो एक पुरातन कथा के अनुसार सम्राट चेंगतांग के शासन काल में (१८०० ई० पू०) की-कुंगशी नामक किसी व्यक्ति ने ऐसा रथ बनाया था जो हवा में अपने आप उड़ सकता था। कहा जाता है कि वहीं के एक दूसरे सम्राट शुन ने (ई० पू० २२५८–२२०८) पक्षियों की तरह उड़ने वाला एक यंत्र ही नहीं बनाया था, प्रत्युत सरकंडो की बनी हुई बड़ी टोपी के सहारे आधुनिक छतरी-सैनिकों की भाँति हवाई कुदान भी लगाई थी। नभ गामी स्पर्धा के अन्तर्गत पतंग तो विश्व को चीन की ही देन है।

इंगलैण्ड के एक बादशाह ब्लाडुड (८५२ ई० पू०) सुप्रसिद्ध राजा लीअर के पिता, ने आसमान में उड़ने का प्रयत्न किया, लेकिन एपोलिन देवता के मन्दिर पर गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो गया।

ग्रीक के पुराणों में भी उड़ने के प्रयत्नों का उल्लेख है जिनमें डेडालुस और इकारस की कहानी अति प्रसिद्ध है।[1] यह घटना क्रीट के सम्राट मीनास के समय की है। बेबिलान की कथा है कि बाबुल की मीनार के रचयिता कैकाउस ने एक

१– वायुयान; क्रान्ति सक्सेना, प्रथम संस्करण, भूमिका।

लकड़ी का उड़न खटोला बनाया था जिसे चीलें उड़ाती थीं। यहीं के शिलालेखों में यह कथा अंकित है कि इटाना नामक एक गड़रिया एक बार एक चील पर सवार होकर उड़ा था।[1]

भारतवर्ष में भी वैदिक साहित्य से लेकर पुराणों, उपनिषदों, जातकों, लोक कथाओं और प्राचीन लिखित वाङ्मय तक सभी युगों और कालों में मनुष्य के उड़ सकने की कल्पना की गई है।

भगवान विष्णु के वाहन के रूप में गरुड़ की कल्पना की गई है जो उड़कर विष्णु को एक स्थान से दूसरे स्थान तक निमिषमात्र में पहुँचा दिया करते हैं। इन्द्र की अप्सराओं के पक्षियों जैसे पंख माने जाते हैं जिनकी सहायता से वे आकाश में उड़ती रहती हैं। इन परो को उतार कर रखा और पहना भी जा सकता है। देवता, यक्ष और किन्नर विमानों में बैठकर आकाश की सैर किया करते हैं। यहाँ पर कुछ ऐसे योगियों और यतियों की कल्पना की गई है जो बिना पंखों और विमानों की सहायता से आकाश मार्ग में इच्छानुसार विचरण कर सकते हैं। नारद ऐसे ही योगी हैं और वह सदैव आकाश मार्ग से ही आना-जाना पसन्द करते हैं। महाभारत में कई वीरों के आकाश में उड़ने और वहाँ युद्ध करने की बात कही गई है। हिडिम्बा नामक राक्षसी तो भीम जैसे बली को भी अपने साथ उड़ाकर विहार के लिए ले जाया करती थी।[2] हिडिम्बा जिस तरह से स्वयं आकाश मार्ग में उड़ने की क्षमता रखती थी[3] उसी प्रकार भीम द्वारा उत्पन्न हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच भी आकाश में चल फिर सकता था। उसके सैकड़ों साथी भी नभचारी थे[4] महर्षि लोमश भी सिद्ध मार्ग अर्थात् आकाश मार्ग से चलने वाले थे[5] तथा इच्छानुसार सम्पूर्ण लोकों में

१– हिन्दी विश्व भारती, खण्ड ५, कृष्ण बल्लभ द्विवेदी, प्र० सं०, पृ० १७८७।

२– तथेति तत् प्रतिज्ञाय हिडिम्बा राक्षसी तदा।
भीमसेनमुपादाय सोर्ध्वमाचक्रमे ततः ॥ २१
–श्री महाभारते-आदि पर्वाणि-हिडिम्बवधपर्व-चतुष्पञ्चाशदधिक शत तमोऽध्यायः १५, महाभारत मूल संस्कृत, हिन्दी अनुवाद सम्पादक हनुमान प्रसाद पोद्दार, टीकाकार पण्डित रामनारायण दत्त जी शास्त्री पाण्डेय 'राम', गीता प्रेस गोरखपुर सं० २०१२ जनवरी १९५६ वर्ष १, संख्या एवं पूर्ण संख्या ३, पृ० ४६५।

३– वही, महाभारत अध्याय १५१ श्लोक ५ एवं ६, पृ० ४५६।

४– वही महाभारत, वर्ष १, संख्या एवं पूर्ण संख्या ७, गोरखपुर, वैशाख २०१३, मई १९५६ वनपर्वाणि तीर्थयात्रा पर्व अध्याय १४५, श्लोक ४, ५ एवं ७, पृ० १३४९ तथा उपर्युक्त ही, अध्याय १४४, श्लोक २४, पृ० १३४८।

५– वही, महाभारत, अध्याय १४५, श्लोक ९, पृ० १३५०।

विचरण कर सकते थे ।[1]

भारतीय योगियों में प्रचलित खेचरी नामक एक मुद्रा का लिखित विवरण भी प्राप्त है जिसको सिद्ध कर लेने पर व्यक्ति हवा से हलका होकर आकाश में स्वेच्छा पूर्वक विचरण कर सकता है ।

रामायण के अंगद और हनुमान भी आकाश मार्ग से ही लंका गये थे । इन व्यक्तिगत उड़ानों की क्षमताओं के अलावा यदि हम भारत में विमान की उड़ान की प्रारम्भिक कल्पनाओं पर दृष्टिपात करें तो हमें अपने प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों का अवलोकन करना होगा ।

५. १. १. ऋग्वेद में विमान–ऋग्वेद में विमान, वायुयान या आकाश यान का स्पष्ट उल्लेख है ।[2] अनेक मंत्रों में इस तरह का वर्णन पाया जाता है जिससे अनेक वेदज्ञ यह अनुमान लगाते हैं कि ऋग्वेद में विमान का सन्दर्भ है।

ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है 'अश्विन द्वय के रथ में तीन दृढ़ चक्र और रथ के ऊपर अवलम्ब के लिए तीन खंभे लगे हैं । वेना के विवाह के समय देवों ने इसे पहले पहल जाना ।[3]

एक अन्य मन्त्र में कहा है कि अश्विन कुमार त्रिकोण या त्रिलोक में चलने वाले रथ द्वारा पुत्र भृत्यादि संयुक्त धन लावें ।[4] इसी प्रकार एक अन्य मंत्र[5] में भी इसी प्रकार के एक रथ का वर्णन है । इसी आकाश बिहारी रथ का वर्णन ऋग्वेद में ही एक अन्य स्थल पर भी किया गया है ।[6] इसी वेद के एक और अन्य

१– वही, महाभारत, अध्याय ९१, श्लोक ५, पृ० १२१९ ।

२– सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्र्वमिन्वम् । ऋग्वेद २।४०।३

३– हिन्दी ऋग्वेद, राम गोविन्द त्रिवेदी, सन् १९५४, पृ० ५६-५७ (४३.२) । मूल रूप में देखिए–ऋग्वेद संहिताः, श्रीमत्सायणाचार्य प्रथम संस्करण, (तिलक-महाराष्ट्र-विद्यापीठ शाखाभूत वैदिक–संशोधन मण्डलेन प्रकाशितः), प्रथम अष्टक, प्र० मण्डल, तृतीय अध्याय अनुवाद–७, सूक्त ३४, मन्त्र-२ ।

४– हिन्दी ऋग्वेद (४५.१२), मूल ऋग्वेद संहिताः, सायणाचार्य, अ० १, मं०१, अ० ३, अनु० ७, सू० ३४, मं० १२ ।

५– हिन्दी ऋग्वेद (६३.२) मूल ऋग्वेद संहिताः, अ० १, म० १, अ० ४, अनु० ९, सू० ४७, मं० २ ।

६– वही ऋग्वेद (२७४.१०) मूल ऋग्वेद संहिताः, अ० १, मं० १, अं० ४, अनु० २४, सू० १८० मं १० ।

मंत्र[1] में कहा गया है कि हे ऋभुओं, तुम लोगों का कार्य स्तुति योग्य है । तुम लोगों द्वारा प्रदत्त, अश्वनी कुमार का त्रिचक्र रथ, अश्व के बिना और प्रग्रह के बिना अन्तरिक्ष में परिभ्रमण करता है । जिसके द्वारा तुम लोग द्यावा-पृथ्वी का पोषण करते हो । उस रथ निर्माण का महान कर्म तुम लोगों के देवत्व को प्रख्यात करता है । एक अन्य मन्त्र[2] में तो स्पष्ट रूप से एक अश्वरहित रथ का वर्णन है जो द्यावा

१– देखिए–ऋग्वेद संहिता २–५ मण्डलानि (द्वि० भाग) पृ० ६४९ में–अ० ७, व ६, मं–४ अ–४, सूत्र–३६, मं–१ ।

अनश्र्वो जातो अनभी शुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्ततेरजः ।

महत्तद्‍वो देवयस्य प्रवाचेनंद्‌यामृभवः पृथिवीं पच्चपुष्यंथा ॥

इसका अर्थ जयपुर के पं० मधुसूदन विद्यावाचस्पति ने भी बिना घोड़ों का तीन पहिया वाला रथ जो अंतरिक्ष में उड़ सके ही लिया है । देखिए, इन्द्र विजय, पृ० ११४ ।

२– देखिए–ऋग्वेद संहिता ६–८ मण्डलानि, तृतीयोभागः, पृ० २३४ पर अ० ५, अ० १, व० ८, मं० ६, अ० ६, सू० ६६, मं० ७ ।

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्र्वश्चिद्यमजत्यरथीः ।

अनवसो अनभीशु रजस्तूर्विरोदसी पथ्यायाति साधन ॥

व्याख्या–अनेनः । वः । मरुतः । यामः । अस्तु । अनश्र्वः । चित । यम । अजति । अरथीः । अनवसः । अनभीशुः रजःऽतूः । वि । रोदसी । इति । पथ्याः । याति । साधन ॥७॥

[हि मरुतः वः युष्माकं सम्बन्धी यामः रथः अनेनः पापरहितं यथा भवति तथा न रथि रथी । अस्तु प्रादुर्भवतु किंच यं पापम अरथीः । रथिः सारथिः । अंसारथिरपि स्तोता अजति प्रेरयति स रथः अनश्र्वश्र्चत् अश्वरहितोऽपि रजस्तूः उदकस्य प्रेरकः साधन स्तोतॄणां कामान साधयन रोदसी द्यावा पृथिव्यौ पथ्याः पथेऽन्तरिक्ष मार्गान् वि याति विविधं गच्छति ।]

पृथ्वी और अन्तरिक्ष में गमन करता है। इसमें कहा गया है कि मारुतो ! तुम्हारा रथ पाप रहित हो। सारथि न होकर भी स्तोता जिसे चलाता है, वही रथ अश्व रहित होकर भी भोजन शून्य और पाशरहित होकर भी जल प्रेरक और अभीष्ट प्रद होकर द्यावा-पृथ्वी और अंतरिक्ष में गमन करता है।

इसी मन्त्र को संदर्भित करते हुए सन्त श्री श्याम जी पाराशर ने अपनी पुस्तक[1] में रामायण के राष्ट्रीय स्वरूप को निखारा है। इसमें एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि ऋग्वेद[2] में इसी प्रकार के एक अश्वहीन चालक रहित, तीव्रगामी श्रेष्ठ यान का उल्लेख है जो धूल के विशाल बादल उड़ाता हुआ उठता है।

ऋग्वेद में त्रिलोक में चलने वाले, आकाशचारी अन्तरिक्ष बिहारी, त्रिचक्रयुक्त, अश्वहीन रथ की उपस्थिति देखकर ही श्री राम गोविन्द त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक[3] में यह सम्भावनायें व्यक्त की है कि तो क्या यह विमान ही था ? क्या त्रिलोक में साधारण रथ चल सकता है ?

अब रथ में वायु को जोड़ने वाली बात हो (ऋ० ५/४१/६) या त्रितला रथ (ऋ० ९/६२/१७) की या बिजली से चलने वाले विद्युत (ऋ० ३/१४/१) या अश्व रहित, अनश्वरथ की (ऋ० १/१२०/१०) या त्रिचक्र-रथ(ऋ० ९१/११८/२) अथवा ऋभुओं द्वारा निर्मित, सर्वत्रगामी रथ[4] की चर्चा हो या वायुयान का अन्यान्य स्थलों पर वर्णन[5] हो, अथवा आचार्य देवपाल के संदर्भगत प्रसंग कि मरुतो के बल को रथों तथा विमानों के चलाने के अनुकूल प्रयुक्त किया जा सकता है,[6] सभी इस बात के द्योतक हैं कि विमान और वैमानिकी के साहित्यिक सन्दर्भ वेदों में विद्यमान हैं।

१– रामचरित मानस चतुश्शती, सन्त श्याम जी पाराशर, १९७४।

२– ऋग्वेद संहिता ६–८ मण्डलानि तृतीयो भाग पृ० २३४, सन्दर्भ–२९।

३– हिन्दी ऋग्वेद–भूमिका पृ० ५६–५७ (७६३.७ एवं ४५.१२)

४– ऋ० १/२०/३, १०/३९/१२, १/९२/२८ और १२९/४, ५/७५/३ और ७७/३, ८५/२९, १/३४/१२ और ४७/२, ११८/१–२ तथा १५७/३ विस्तार पूर्वक जानने के लिए देखिए 'वेदों में विमान' लेख। (ले० डॉ० बालकृष्ण जी का मासिक 'गङ्गा' का वेदाङ्क, पृ० २०५–२०६)।

५– ऋ १/११६/३–४–५, १/११७/१४–१५, १/२५/७, ६/६२/६ देखिए–१९३२ वैदिक विज्ञान पृ० ९८ से १०४ तक

६– कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक पर अनुसंधान कर्ता श्री शिवपूजन सिंह जी कुशवाहा पथिक का लेख-यातायात के, प्राचीन वैज्ञानिक साधन पृ० ७२८ से ७३० तक

ऋग्वेद[1] के अनुसार मुनि लोग आकाश में उड़ सकते हैं और सारे पदार्थों को देख सकते हैं जहाँ कहीं भी जितने देवता हैं, वे सब के प्रिय बन्धु हैं, वे सत्कर्म के लिए ही जीते हैं। मुनि लोग वायुमार्ग पर घूमने के लिए अश्व रूप हैं, वे वायु के सहचर हैं। देवता उनको पाने की इच्छा करते हैं। वे पूर्व और पश्चिम दोनों समुद्रों में निवास करते हैं।[2]

अश्विनी कुमार द्वय के लिए सर्वत्रगन्ता और सुख वाही त्रिचक्र रथ का निर्माण करने वाले ऋभुगण थे। गोल्डस्टकर के मत से ये प्रसिद्ध मनुष्य, नामी शिल्पी और चिकित्सक थे।[3]

अंगिरा ऋषि के वंश में सुधन्वा थे जिनके ऋभु, विभु और वाज नाम के तीन पुत्र थे। सायणाचार्य के मत से ऋभु लोग पहले मनुष्य थे। तपोवल से देवता हो गये थे।

ऋग्वेद के कौशीत और ऐतरेय ब्रह्मणों में त्रिक का वर्णन है जिसमें लिखा है कि असुरों ने हिरण्मयी पुरी को स्वर्ग में बनाया, रजतमय को अंतरिक्ष में और अयस्मयी को इस पृथ्वी लोक में। तीनों पुरो में एक-एक अमुत कुण्ड बनाया गया था। इन बिमानों को लेकरके असुर तीनों लोकों में उड़ा करते थे।[4] ऋषियों ने बाह्य विश्व का पूर्ण और शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद १/१५/७ तथा १/११६/३ में भी विमानों का वर्णन है।[5]

उपर्युक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वेदों में विमान और

१– अन्तरिक्षेण यतति विश्र्वा रूपाव चाकशत् ।

मुनिर्देवस्य देवस्य सौ कृत्याय सखहि्तः ॥ ४ ॥

बातस्याश्र्व वायौः सागथो 'देवेषितो मुनिः ।

उभौ समुद्रावा सेति पश्र्चपूर्व उता परः ॥ ५ ॥

ऋग्वेद संहिता, चतुर्थो भाग पृ० ८०३ अ० ८ अ० ७, व० २४ म० १०, अ० ११, सू० १३६ ।

२– हिन्दी ऋग्वेद पृ० ५० (१४१९.४.५) मूल ऋ० सं० अ० ८ म० १० अ० ७ अनु ११ सू १३६ म–४, ५

३– हिन्दी ऋग्वेद, भूमिका पृ० ३४

४– असुरः हरिणी (पुरं) ह्रादो दिविचक्रिरे ।
रजतां अन्तरिक्ष लोके अयस्मयीमस्मिन अकुवर्त । कौ० ८/८ ऐ० १/१३
देखिए–मानस पीयूष खण्ड २, अंजनीनन्दन शरण, सं० २०२४, पृ० ४३

५– महर्षि भारद्वाज प्रणीत यंत्र सर्वस्व के वैमानिक प्रकरण का विवेचनात्मक अध्ययन, बोधानन्द वृत्ति के आधार पर ले०डा० प्रकाश मित्र शास्त्री, सं० २०३० अ प्रकाशित शोध प्रबंध के पृ० ८० से उद्धृत ।

वैमानिकी के ज्ञान के संकेत निहित हैं जो विमानों की उपस्थिति के प्रमाण स्वीकार किये जा सकते हैं तभी तो शोध छात्र पं० रघुनन्दन शर्मा लिखते है– 'विमान नामक यंत्र तो वैदिक काल से ही इस देश में प्रचलित था। वेद में विमान के बनाने की विधि बताते हुए कहा गया है कि जो आकाश में उड़ने की स्थिति को जानता है, वह समुद्र आकाश की नाव विमान को जानता है।[१]

प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता राली‍विंसन ने जिन वेदमन्त्रों का उद्धरण देकर प्राचीन भारत के जहाजी बेड़े का परिचय दिया है, उनमें से एक स्वयं अपने बल से चलने वाला, अंतरिक्ष में गति करने वाला जहाज था।[२]

अमेरिकन महिला ह्वीलर विल्लाक्स ने अपनी पुस्तक[३] में स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि वैदिक ऋषियों को विद्युत, रेडियो एलक्ट्रान, हवाई जहाज इत्यादि सब बातों का ज्ञान था, ऐसा प्रतीत होता है।

फ्रान्स के सुविख्यात योगी भी स्वीकार करते हैं कि + + वर्तमान विज्ञान केवल उन्हीं सिद्धान्तों को पुन: प्रस्तुत करता है जो वेदो में वर्णित हैं[४] प्रो० मैक्स-मूलर अपने (Biographieal Essays) में स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि यहाँ तक कि अति नवीन आधुनिक आविष्कारों जैसे स्टीम इंजिन, विद्युत, तार, बिना तार के तार, मारकोनोग्राम का भी प्रतिपादन वेदों में किया गया है। कम से कम बीज रूप में तो अवश्य ही उपर्युक्त वस्तुओं का वर्णन वेदों में है।[५]

आचार्य सत्यव्रत जी अपने संग्रह ग्रन्थ[६] में वेदभाष्यकारो के संबंध में सम्मति लिखते हुए कहते है कि उस समय जबकि फोटोग्राफी, फोटोग्राफी गैस लाइट टेली-ग्राम, टेलीफोन, रेलवे और हवाई जहाजों का भारत में प्रचार न था, किस प्रकार भारत के वेदभाष्य कर्ता उन मन्त्रों के यथार्थ रहस्यो को समक्ष सकते थे जिसमें

१– वैदिक सम्पति, दि० सं०, पृ० ३९४।

२– "Intercourse bet–ween India and the western world" Page–4.

3. Sublimity of the vedas, page–83.
Electricity, Radium, Electreons, Airships, all seem to be known to the sires who found the vedas.

४– Hindu superiority या महान भारत, पृ० ३८३।

५– नारायण अभिनन्दन ग्रंथ, प्र० सं० पृ० १३६–२७।
Even the most recent inventions of modern science were alluded to in the vedas, steamengine, electricity, talegraphy and wireless, marconogram were shown to have been known at least in the germs to the poets of the vedas.
जैसा कि हिन्दू संस्कृति अंक। के पृ० ७३०–३१ में उल्लखित है।

6– 'Trayi–Chatuahtay' Preface, VII–IX

विमानों के समय उपस्थित दृश्यों में कितना साम्य है। इससे तुलसी के विमानों के दृश्यों के चित्रण में संभावित कल्पना की बात समाप्त हो जाती है।

५. २. ८. २. १२ **पुष्पक के अयोध्या में उतरने के समय का मौसम**–जिस समय पुष्पक अयोध्या में उतरता है, उस समय के मौसम का वर्णन करते हुए तुलसी ने लिखा है कि मौसम बड़ा ही सुन्दर और सुहावना है। शीतल मन्द-सुगन्ध युक्त वायु बह रही है और सरयू का जल भी स्वच्छ है जो वर्षा की समाप्ति का सूचक है–

अवधपुरी प्रभु आवत जानी ।
भई सकल सोभा कै खानी ॥
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा ।
भइ सरजू अति निर्मल नीरा ॥ ७।२।५

५. २. ८. २. १३ **अयोध्या में पुष्पक का पृथ्वी तल पर उतरना**–यों तो मानस में जिन विमानों का भी वर्णन प्राप्त है वह सभी पृथ्वी तल से आकाश में उड़े तथा आकाश मार्ग से यात्रा करते हुए पृथ्वीतल पर उतरे अवश्य हैं। आकाश में उड़ते या पृथ्वी पर उतरते समय विमान स्थायित्व और नियंत्रण की आवश्यकता पड़ती है। विमान और वैज्ञानिकी की कृति न होने के कारण मानस में इसका विवरण नहीं दिया गया है।

पुष्पक अपनी तृतीय यात्रा में स्थायित्व और नियंत्रण की प्रक्रिया से गुजरता हुआ राम की इच्छा के अनुसार दण्डकारण्य (६।११९।१) चित्रकूट (६।११९।२) त्रिवेणी तट (६।१२०ख) भरद्वाज आश्रम (६।१२०।२) तथा गंगा तट (६।१२०।४) पर, पृथ्वी तल पर उतरता है और पुनः उड़ाने भर कर अयोध्या आता है। अनेको स्त्रियाँ अट्टालिकाओं से आकाश में उड़ते हुए इस विमान का दर्शन करती हैं। इसी समय तुलसी राम की 'राकाससि'[१] 'कमल दिवाकर' से उपमायें देकर उन्हें विमान स्थिति ही दिखाते हैं, जैसा कि पीयूषकार[२] ने स्वीकार किया है कि इस समय श्री रघुनाथ जी आकाश में विमान पर हैं। अतः राकाशशि और दिवाकर की उपमा बड़ी ही उत्तम है, दोनों आकाश में हैं।

मानस के इस दोहा[३] में रूपक और उत्प्रेक्षा के माध्यम से वैज्ञानिक सत्य को

१– राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान ।
बढ़यो कुलाहल करत जनु नारि तरंग समान ॥ ७।३ ग
इहाँ भानुकुल-कमल दिवाकर
कपिन्ह देखावत नगर मनोहर ॥ ७।३।१

२– देखिए, मानस पीयूष, खण्ड ७, पृ० ४१ नोट–२

३– मानस–७।३ (ग)

उजागर करते हुए राम को पुष्पक पर होने से राकाशशि और अयोध्या को सिन्धु और अट्टालिकाओं पर चढ़ी स्त्रियों की उपमा बढ़ती हुई समुद्र की तरंग तथा जनता के कोलाहल की उपमा समुद्र के चढ़ने से होने वाली अस्पष्ट ध्वनि से दी गयी है ।[1]

राम ने अयोध्या वासियों को आता हुआ देख कर नगर के निकट विमान को पृथ्वी पर उतने की आज्ञा दी ।

आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान ।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान ।। ७।४ क

५. २. ८. २. १४ **विमान चालक**—मानस में विमान चालकों का स्पष्ट उल्लेख कहीं भी नहीं है, क्योंकि कहीं भी सार्वजनिक विमानों का वर्णन नहीं किया गया है । व्यक्तिगत वाहनों में चालकों का महत्वपूर्ण स्थान नहीं होता । उसमें बैठे प्रभुत्व सम्पन्न व्यक्ति की इच्छा या प्रेरणा से ही यान इच्छित स्थानों को चलता और रुकता है । देवयान हों या पुष्पक, उस पर सवार प्रतिष्ठित व्यक्ति की इच्छा या प्रेरणा का ही वह अनुसरण करता है ।

पुष्पक का चालक तो राम की आज्ञानुसार ही लंका से उत्तर दिशा की ओर जाता हुआ विभिन्न स्थानों से जाता है और उन्हीं की प्रेरणा से मनोवांछित स्थानों पर उतरता है ।

शब्द शक्तियों[2] के ज्ञाता कभी भी यह स्वीकार नहीं कर सकते कि राम ने पुष्पक से कहा कि तुम कुबेर के पास चले जाओ (७।४ ख), वह तो सदैव यही स्वीकार करेंगे कि राम ने विमान चालक को आदेश दिया कि पुष्पक को कुबेर के पास ले जाओ । तभी तो राम की प्रेरणा से पुष्पक का चालक हर्ष और विरह (दुःख) प्रकट करता हुआ विमान लेकर चल पड़ता है ।

इसके अतिरिक्त पिछले दिनों कुछ माडल वायुयान इस ढंग से भी तैयार किये गये हैं जो बिना पाइटल (चालक) के केवल रेडियों तरंगों के संकेतों पर ही

१— विशेष अध्ययन के लिए देखें, मानस पीयूष खण्ड—७, पृ० ३९-४० ।

२— काव्यशास्त्र, डाँ० भागीरथ मिश्र, सं० २०२३, पृ० २३६ से २६१ तक शब्द का का अर्थ बोध कराने वाली शक्ति ही शब्द शक्ति है यह एक प्रकार का शब्द और अर्थ का संबंध है । शब्द का अर्थगत व्यापार है । शब्द शक्तियाँ तीन हैं— अभिधा, लक्षण और व्यंजना । इनके संबंध में तीन प्रकार के शब्द होते हैं वाचक, लक्षण और व्यंजक तथा तीन प्रकार के अर्थ होते हैं— वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ । (विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए उक्त पुस्तक) ।

—६

उड़ते हैं ।[1] इन्हें बिना पाइलट के स्वयं क्रिय वायुयान कहा जा सकता है। ग्रहों और उपग्रहों जो जाने वाले मानव रहित यान तो इस कल्पना को भी प्रामाणिक रूप देने में समक्ष हैं कि विमान बिना चालक के भी निर्देशो के अनुसार निर्दिष्ट स्थानों पर जा आ सकते हैं।

उपर्युक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारतीयों को प्राचीन काल में उड्यन बिद्या का ज्ञान[2] था जो बीच में विलुप्त होकर उनकी साहित्यिक कृतियों में सांस्कृति विरासत और कल्पना के पुट से व्यक्त होता हुआ, रामचरित मानस की प्रस्तुति में आ सका है।

आधुनिक युग में विमान और बैमानिकी का अनुशीलन तथा प्राचीन भारतीय विमान एवं वैमानिकी से उसकी तुलना करते हुए, उसे कम महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता ।

५.३.०. तुलना– (तकनीकी वस्तु स्थिति)

तकनीकी दृष्टि से प्राचीन भारतीय वैमानिक ज्ञान एवं अर्वाचीन विमान और वैमानिकी कला के ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

५.३.१. आकार-प्रकार एवं क्षमता– आधुनिक युग में जिस प्रकार छोटे, बड़े और बहुत बड़े आकार वाले अनेक प्रकार के बमवर्षक सीखने वाले ग्लाइडर, हेलीकाप्टर, कृषि कार्यो के लिए प्रयुक्त होने वाले विमानों आदि का निर्माण कुशल अभियंता करते है, उसी प्रकार प्राचीन भारत में भी लघु, दीर्घ एवं दीर्घतम् आकार

१– (क) हिन्दी विश्व भारती, खण्ड ५, ज्ञान विज्ञान का प्रमाणिक कोश, संपादक कृष्ण बल्लभ द्विवेदी प्र० सं०, पृ० १८०४।

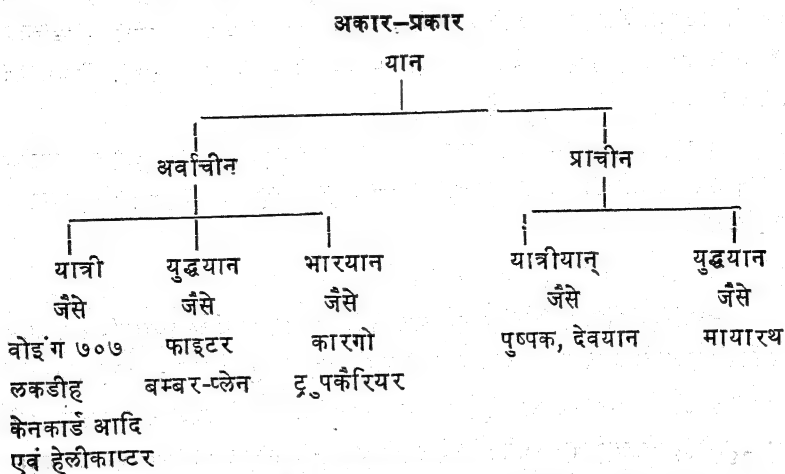
(ख) जर्मनी ने वी-१ एवं वी-२ विमान बनाये थे जो चालक रहित थे। इनका कन्ट्रोल रेड़ियो तरंगों से होता था। इनके द्वरा इग्लैण्ड में बम डाले गये थे।

२– जिनकी महिमा का है अविरल,
साक्षी सत्यरूप हिम–गिरि–वर ।
उतरा करते थे विमान–दल,
जिसके बिस्तृत वक्षः स्थल पर ।।
–स्वप्न (खण्ड काव्य) रचयिता, रामनरेश त्रिपाठी ।

अब तो उड़ने हवाई अड्डों का भी निर्माण होने वाला है जिन्हें स्पेन लोडर नाम दिया गया है। यह विराट वायुयान ही होंगे। ये मीथेन या हाइड्रोजन गैस अथवा परमाणु शक्ति से संचालित होंगे।

–नवनीत, अगस्त १९७९, पृ० ३८

वाले युद्धक तथा यात्रियों की यात्रा हेतु छोटे और बड़े विमानों का निर्माण शिल्पी करते थे जिनका वर्णन इसी प्रकरण में किया गया है। ऐसा लगता है कि यात्रियों की संख्या की दृष्टि से प्राचीन पुष्पक जैसे विमान आधुनिक विमानों की तुलना में पीछे नहीं थे। इस तरह तकनीकी दृष्टि से प्राचीन भारतीय और आधुनिक विमानों के आकार-प्रकार में भी पर्याप्त साम्य लगता है।



५.३.२. **गति एवं ऊर्जा के स्रोत**–आधुनिक युग के विमानों की गति ३० मील प्रति घण्टे से लेकर जेट विमानो में १५०० मील प्रति घण्टे से भी अधिक है, जिस पर पंख काट, पंखे, पक्षक, वातरोध आदि का प्रभाव पड़ता है। किन्तु मानस में वर्णित पुष्पक की गति लगभग ४०० मील प्रति घण्टे की है जो तकनीकी ज्ञान से ही संभव हुआ होगा। कहते हैं कि सुन्दर विमान की आठ हजार (८०००) मील या बारह हजार आठ सौ (१२८००) कि० मी० प्रति घण्टा गति थी। जबकि आधुनिक विमान की गति एक हजार (१०००) मील प्रति घण्टा बताई जाती है।

शकुन विमान की तुलना आधुनिक जेट विमान से की गयी है।[१]

आधुनिक विमानों में सामान्यत: पेट्रोल या मिट्टी के तेल को ऊर्जा के लिए प्रयोग किया जाता है[२] किन्तु प्राचीन भारत में जिन विमानों का विवरण प्राप्त है उनमें पारद, अग्नि, जल, वायु, वाष्प, तैल, बिजली, चुम्बक, सूर्यकिरण आदि का

१– देखिए, वही, डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पृ० ४५९

२– किन्तु नाइट्रोमीथेन, नाइट्रिक अम्ल + एनिलिन और सॉद्र हाइड्रोजन पराक्साइड + मेथिल एल्कोहल आदि भी ऊर्जा प्राप्त करने के व्यवहारिक साधन हैं और इनसे लगभग ५००० मील प्रति घण्टे की जेट चाल प्राप्त की जा सकती है। तरल

ऊर्जा स्रोत के लिए प्रयोग किया जाता था जिसका विवरण इसी प्रकरण में किया गया है। सौर-शक्ति से संचालित त्रिपुर गामी, त्रिपुर विमान का सचित्र वर्णन डॉ० प्रकाश मित्र ने अपने शोध-प्रबंध के अध्याय–५ में सविस्तार किया है–

गति

आधुनिक	**प्राचीन**
मील प्रति घण्टा	मील प्रति घण्टा
३० से १५००	४०० से ८०००

ऊर्जा स्रोत

१– पेट्रोल	१– तेल
२– किरोसिन (मिट्टी का तेल)	२– अग्नि-जल-वायु
३– वायु	३– चुम्बक
४– ऊष्मा (अग्नि)	४– सूर्य किरण
५– गैस	५– पारद
	६– बिजली
	७– वाष्प
	८– चन्द्रकान्त-सूर्यकान्त
	९– वायु

५.३.३. **कार्य प्रणाली**–विमान की उड़ान की निम्नलिखित अवस्थाएँ होती हैं।[1]

१. उड़ान दौड़– इसी क्रिया से विमान अपनी उड़ान आरम्भ करता है। इस अवस्था में विमान पृथ्वी पर दौड़ लगाता हुआ, एक माध्यम को छोड़कर दूसरे माध्यम में जाने के लिए आवश्यक बल प्राप्त करता है।

२. **आरोहण**– उड़ान दौड़ द्वारा प्राप्त उद्भार बल की सहायता से इस अवस्था में विमान वायुमण्डल में उस ऊँचाई पर पहुँचता है जहाँ पर उसका चालक यह समझता है कि विमान सुरक्षि रूप से उड़ान कर सकेगा।

३. **समतल उड़ान**– एक निश्चित ऊँचाई पर पहुँचने के पश्चात् विमान इस क्रिया के अन्तर्गत सुचालन इत्यादि क्रियाओं समेत अपनी उड़ान जारी रखता है।

आक्सीजन और इथिल एलकोहल से लगभग ५५०० मील प्रति घण्टे की जेट चाल प्राप्त की जा सकती है। तरल आक्सीजन + तरल हाइड्रोजन की प्रतिक्रिया से (यदि इसे प्रयुक्त किया जा सके) ८००० मील प्रति घण्टे की जेट चाल प्राप्त की जा सकती है।

–वही वि० और० वै०, पृ० २८३।

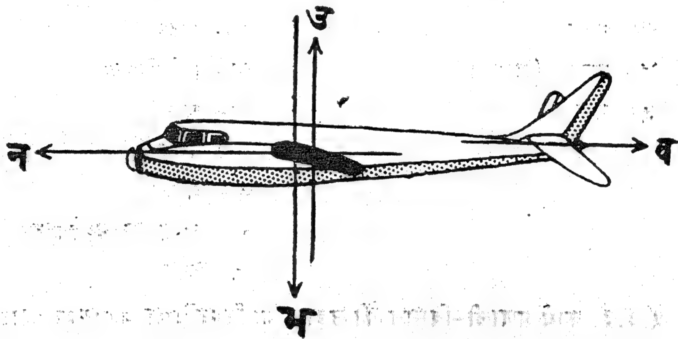
१– वि० और वै०, पृ० १९२।

४. ग्लाइड– नीचे आने से पूर्व विमान इस क्रिया से गुजरता है । इस क्रिया में इंजिन कार्य नहीं करता ।

५. उतरना– इस क्रिया द्वारा विमान पुनः पृथ्वी पर आ जाता है ।

विमान को ऊपर उठाने के लिए आवश्यक मात्रा में उद्भार बल[1] की प्राप्ति करना उड़ान दौड़ का उद्देश्य रहता है। दौड़ आरम्भ करते समय वातरोध[2] को कम करने के लिए विमान की पूँछ को ऊपर की ओर रखते हैं, जब विमान उड़ान की न्यूनतम चात को पकड़ लेता है तो पूँछ को नीचे करने और पक्षों को १५° के आक्रमण कोण पर रखने से विमान में उड़ान की क्षमता आ जाती है ।

आरोहण क्रिया में वातरोध बल की अपेक्षा नोदबल[3] की अधिक मात्रा में



सामान्य उड़ान में विमान पर लगे बल ।
विमान और वैमानिकी से साभार
चित्र–५

१– उद्भार बल वह बल है जिससे विमान का भार ऊपर उठता है । विमान का भार और उद्भार बल एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं । जब उद्भार की मात्रा भार से बढ़ जाती है तो विमान ऊपर की ओर उठता है । यह अधिकांश पंख काट के अगले भाग से प्राप्त होता है । –वि० और वै०, पृ० १३३

२– जब कोई वस्तु हवा या किसी तरह पदार्थ में चलती है तो उसकी गति में सर्वदा एक निश्चित रुकावट पड़ती है । वैमानिकी में इस रुकावट को वातरोध कहते हैं । –वि० और वै०, पृ० ८० ।

३– नोदबल एक चल राशि है । यह इंजन शक्ति और गुरुत्व या केवल गुरुत्व या केवल इंजन शक्ति से ही प्राप्त की जा सकती है । नोद प्राप्त करने के अनेक साधनों में पंखों अर्थात वायुपेंच का आज भी बहुत महत्व है । नोद बल और वातरोध एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं ।

आवश्यकता होती है । उदग्र उड़ान में नोद, वातरोध और भार[1] के योग के बराबर होता है ।

आरोहण क्रिया के बाद विमान वायुमण्डल में अपनी उड़ान आरम्भ करता है । विमान अपनी उड़ान के दौरान बहुत थोड़ी देर के लिए ही एक अपरिवर्तित वेग के साथ सरल रेखा में उड़ान करता है । विमान की ऐसी उड़ान को 'समतल' उड़ान कहते हैं । समतल उड़ान के समय उद्भार, भार के और नोद, वातरोध के बराबर होता है । इन बलो को सन्तुलन में रखने के लिए पुच्छक विमान को कार्य में लाया जाता है ।

विमान की उड़ान में समतल उड़ान तो उसकी उड़ान के केवल एक अंश की पूर्ति करती है । वायुमण्डल में भिन्न-भिन्न दिशाओं तथा चाल पर चालक अपने विमान की उड़ान करता है, उड़ान की इस प्रकार की गति 'सुचालन' कहलाती है ।

विमान जमीन पर आने के लिए पहले कुछ देर के लिए ग्लाइडिंग करता है । इस समय विमान पर ३ बल लगते है । उद्भार, वातरोध तथा नोद बल । ये ही तीनों बल ग्लाइडिंग की प्रक्रिया में विमान को साम्यावस्था में रखते है ।[2]

जिस उतार चाल पर विमान भूमि को छूता है, उसे स्थिर अवस्था में लाने के लिए वातरोध वायु ब्रेकों तथा पहियों के ब्रेकों का उपयोग किया जाता है, जिससे विमान पुन. पृथ्वी पर उतर कर स्थिर हो जाता है ।

चालक विमान को मोड़ने के लिए पक्षकों की सहायता से कन्नी करता है ।

५.३.४ **विमान स्थायित्व और नियंत्रण–** आधुनिक विमानों में अनुदैर्घ्य, पार्श्विक एवं दैशिक नियंत्रण क्रमशः उत्थापकों[3], पक्षकों[4] एवं सुकानों[5] की सहायता

१– भार का अर्थ विमान के भार से हैं ।

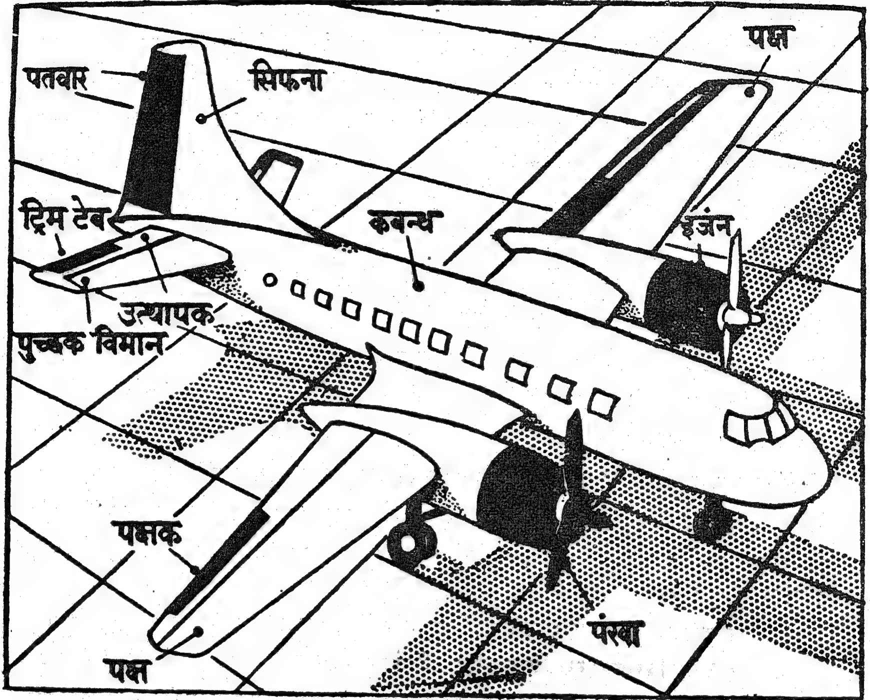
२– वि० औ० वै०, पृ० २२७ (विशेष ज्ञान के लिए देखिए पृ० २२७ से २४१ तक)

३– उत्थापक–यह एक क्षैतिज तल में लगी हुई चादर के रूप में होता है । इसको ऊपर नीचे करके वायु-धाराओं की प्रतिक्रिया द्वारा विमान को ऊपर नीचे उतारा जा सकता है । (पुच्छक विमान के पीछे लगे पल्ले उत्थापक का कार्य करते हैं ।)

४– पक्षक–यह विमान के पक्षों पर किनारे की ओर कब्जे द्वारा लगे हुए पल्ले होते हैं । विमान की दिशा बदलने में इनसे सहायता ली जाती है । (प्रत्येक पक्ष कोण के समीप पंख काटों के पीछे लगे पल्ले इस कार्य को करते हैं ।)

५– सुकान–यह विमान के पिछले सिरे पर धातु की चादर के रूप में लगा होता है । इसको सीधा खड़ा कर लगाया जाता है । इसको ऊर्ध्वतल में लीवरों की सहायता से घुमाया जा सकता है । इससे क्षैतिज तल की गति को नियंत्रित किया जाता है (सिफने के पीछे कब्जों से कसा उदग्र पल्ला ही सुकान कहलाता है)

से होता है । यही तीनों नियंत्रक यन्त्र कहलाते हैं। (देखिए चित्र ६)



–विमान और उसके मुख्य अंग ।
विमान और वैमानिकी से साभार
चित्र–६

अनुदैर्घ्य नियंत्रण में उत्थापक की सहायता से विमान के उड़ान कोंण को बदला जा सकता है और इस प्रकार विमान की नासा इच्छानुसार ऊपर या नीचे की जा सकती है । उत्थापक जायस्टिक द्वारा नियंत्रित रहते हैं । यह चालक कोष्ठक में चालक के सम्मुख रहती है । इसको पीछे खींच कर उत्थापकों को ऊपर उठाया जाता है, जिससे विमान ऊपर उड़ने लगता है तथा इसको आगे चलाकर उत्थापकों को नीचे किया जा सकता है, जिससे विमान नीचे उतरने लगता है ।

पार्श्विक नियंत्रण पक्षकों की सहायता से होता है । पक्षक आपस में जुड़े रहते हैं । इसलिये जब एक पल्ला नीचे झुकाया जाता है, तो दूसरा पक्षकोर वाला पल्ला अपने आप उठ जाता है । जब वायु के झोकों से विमान कुछ कोण बनाता पलट जाता है, तो विमान चालक पक्षकों को दबा कर उठे ठीक कर लेता है । ++ +पक्षकों और उत्थापकों की गति का नियंत्रण, चालक कक्ष में रखे एक यन्त्र से होता है । इस यन्त्र को बायीं ओर दबाने से दायाँ पक्षक नीचे और बायाँ पक्षक

इन वस्तुओं के संकेत हैं । हमारी सम्मति है कि वैदिक काल में हमारे भारत देश ने पर्याप्त उन्नति कर ली थी ।++ उस समय के वैज्ञानिक ग्रन्थ यद्यपि इस समय सर्वथा लुप्त हो गये हैं, तो भी वेदों में उन विज्ञानों के संबंध के पर्याप्त निर्देश मिलते हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि वैदिक काल में उन विज्ञानों का पर्याप्त प्रचार था।

वैदिक ऋषियों ने बहुत सी बातों का पता लगा लिया था जो वर्तमान समय में आधुनिक विज्ञान की सहायता से पुनः जानी जा सकती हैं, बहुत सी ऐसी बातों का भी उन्हें ज्ञान था, जिनका ज्ञान वर्तमान युग में अभी हमें प्राप्त करना है ।[1]

उपर्युक्त कहे गये, अब तक के वैदिक युगीन, साहित्यिक प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वेदों के विज्ञान संबंधी ज्ञान के साथ विमान और वैमानिकी के ज्ञान के संकेत निहित हैं ।

५.१.२ **यन्त्र सर्वस्व में विमान–** वेदो के आधार पर बने हुए यन्त्र सर्वत्र[2]

श्री सत्यव्रत जी कलकत्ता संस्कृत कालेज के वैदिक साहित्य के प्रोफेसर थे । पाश्चत्य तथा प्राच्य वैदिक विद्वानों में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी । बंगाल एसियाटिक सोसाइटी के कई ग्रन्थों का इन्होंने सम्पादन किया है इनके त्रयी चतुष्टय, त्रयीपरिचय, निरक्तालोचन ऐतरेयालोचन आदि ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है।

१– हिन्दी ऋग्वेद- पृ० ३७ पर संदर्भित–दि वैदिक गाड्स' ले०डॉ० बसन्तजीरेले

२– ले० महर्षि भारद्वाज, यह ग्रन्थ बड़ौदा राज्य के पुस्तकालय में हस्तलिखित वर्तमान है जो कुछ खण्डित है उसका वैमानिक प्रकरण, बोधानन्द की बनायी हुई वृत्ति के साथ छप चुका है । इसके पहले प्रकरण में प्राचीन विज्ञान विषय के २५ ग्रन्थों की सूची है, जिनमें अगस्त्य कृत शक्ति सूत्र, ईश्वर कृत सौदामिनी कला-भारद्वाज कृत अंशुभ तन्त्र, आकाश शास्त्र तथा यन्त्र सर्वस्व, शाकटायन-कृत 'वायुतत्व प्रकरण' नारदकृत 'वैश्वानर तन्त्र, धूम प्रकरण आदि हैं। वृत्तिकार बोधानन्द ने लिखा है कि भारतद्वाज मुनि ने वेदरूपी समुद्र का मन्थन करके यन्त्र सर्वस्व नामक ऐसा मक्खन निकाला है जो मनुष्य मात्र के लिए इच्छित फल देने वाला है । उसमें उन्होंने चालीसवें अधिकरण में वैमानिक प्रकरण कहा है, जिस प्रकरण में विमान विषयक रचना के क्रम कहे गये हैं वह आठ अध्याय में विभाजित किया गया है, जिसके एक सौ अधिकार और पांच सौ सूत्र हैं । उसमें विमान का विषय ही प्रधान है ।

एवं विधाय विधिवन्मङ्गलाचरणं मुनिः ।
पूर्वाचार्यश्र्च तद्ग्रन्थान् द्वितीय श्लोकणोऽब्रबीत् ।।
विश्र्तनाथोक्त नामानि तेषांवक्ष्ये यथाक्रमम् ।
नारायणः शौनकश्र्च गर्गो वाचस्पतिस्तथा ।।

नामक ग्रन्थ में विमान की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि जो पृथ्वी जल और आकाश में पक्षियों के समान वेग पूर्वक चल सके, उसका नाम विमान है।[१] वि= पक्षी, यान=अनुरूप या सदृश, पक्षी के सदृश आकाश में उड़ने वाला यान विमान है।[२] विमान के रहस्यो को जानने वाला ही उसके चलाने का अधिकारी है।

चाक्रायणिर्धुण्डिनाथश्चेति शास्त्रकृत: स्वयम् ।
विमान चन्द्रिका व्योमयानतन्त्रस्तथैव च ॥
यन्त्रकल्पो यानबिन्दु: खेटयान प्रदीपिका ।
तथैव व्योमयानार्क प्रकाशश्चेति षट् क्रमात् ।
नारायणादि मुनिभि: प्रोक्तानि ज्ञान वित्तमै: ॥

अर्थात् भारद्वाज मुनि ने विधानपूर्वक मंगलाचरण करके दूसरे श्लोक में विमान शास्त्र के पूर्वाचार्यों तथा उनके बनाए ग्रन्थों के नाम भी कहे हैं। उनके नाम विश्वनाथ के कथनानुसार इस प्रकार हैं। नारायण का विमान चन्द्रिका, शौनक का व्योमयान तन्त्र, गर्ग का यन्त्रकल्प, वाचस्पति का यान विन्दु चाक्रायणि का खेटयान प्रदीपिका और धुण्डि नाथ का व्योमयानार्क प्रकाश।

–संपुष्टि के लिए देखिए कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक १ पृ० सं० ७३६ से ७३८ तक (श्री दोमोदर जी झा साहित्याचार्य का हमारी प्राचीन वैमानिक कला नामक लेख।) इस यन्त्र सर्वस्व में ३३९ प्रकार के भूमिगामी यानो, ७८३ प्रकार के जलयानों तथा अंतरिक्ष मार्ग से लोक लोकन्तरों तक यात्रा करने में सक्षम शताधिक प्रकार के विमानों (अंतरिक्ष यानों) इसके अतिरिक्त रूपाकार्षण (एक्सरे) छायाकर्षण (टेलीविजन) शब्दाकर्षण (रेडियो) भाषा सम्प्रेषण (टेलीफोन या वायरलेस) लिपियत्र, चित्रयन्त्र, पाक्ययन्त्र, पटयन्त्र आदि सहस्रो प्रकार के जीवनोपयोगी अन्य यन्त्रों के निर्माण व प्रयोग की विधि का भी भली भाँति वर्णन किया गया है जो प्राचीन भारत में भौतिक विज्ञान की विशिष्ट उन्नति का ज्वलन्त प्रमाण है।

–देखिए : महर्षि भरद्वाज प्रणीत यंत्र सर्वस्व के वैमानिक प्रकरण का विवेचनात्मक अध्ययन। डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री, अप्रकाशित शोध प्रबंध, पृ० २९।

जिन यंत्रो का आविष्कार हो चुका है अथवा जो आज भी आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान की पकड़ में नहीं आ सके है ऐसे असंख्य यन्त्रों का भी इस ग्रन्थ में वर्णन था।

वही डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री, पृ० ८७।

१– पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेषु खगवद्वेगत: स्वयम् ।
य: समर्थो भवेद् गन्तुं स विमान इति स्मृत: ॥
–रहस्यज्ञोऽधिकारी (भरद्वाज सूत्र अ० । सू० २)

२– डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री का अप्रकाशित शोध–प्रबंध, पृ०–१२०

शास्त्रों में जो बत्तीस वैज्ञानिक रहस्य बताये गये हैं, विमान चालकों को उनका भली भाँति ज्ञान रखना परमावश्यक है। तभी वे सफल चालक कहे जा सकते है।[1] विमान चलाने के बत्तीस रहस्यों में से कुछ रहस्यों का यहाँ संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

कृतक नामक तीसरे रहस्य में कहा गया है कि विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु, मय दानव आदि विमान शास्त्रकारों के बनाये हुये शास्त्रों का अनुशीलन करने से उन–उन धातु–क्रिया आदि में जो सामर्थ्य है, उसका अनुभव होने पर इच्छा के अनुसार नवीन विमान रचना करनी चाहिए।

गूढ़ नामक पाँचवे रहस्य में विमान को छिपाने, अपरोक्ष नामक नवें रहस्य में रोहिणी विद्युत (कोई विशेष प्रकार की बिजली) के फैलाने से विमान के सामने आने वाली वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। सर्पगमन नामक बाईसवें रहस्य के अनुसार बटन दबाने से विमान की गति सांप के समान टेढ़ी हो जाती है पर शब्द ग्राहक पचीसवें रहस्य के अनुसार 'सौदामिनीकला' में कही गयी रीति से विमान पर जो शब्दग्राहक यन्त्र है, उसके द्वारा दूसरे विमान के लोगों की बातचीत आदि शब्दों का आकर्षण किया जाता है। रुपाकर्षण नामक छब्बीसवें रहस्य के अनुसार विमान में स्थित रुपाकर्षण यन्त्र द्वारा दूसरे विमान में रहने वाली वस्तुओं का रूप दिखलाई देता है। दिक्प्रदर्शन नामक अट्ठाईसवें

१– वैमानिकरहस्यानि यानि प्रोक्तानिशास्त्रत:।
द्वात्रिंशदिति तान्येव यानयन्तृत्वक कार्यमणि ॥
एतेन यानयन्तृत्वे रहस्यज्ञानमन्तरा ।
सूत्रेऽधिकारसंसिद्धिर्नेति सूत्रेण वर्णितम् ॥
विमान रचने व्योमारोहणे चालने तथा।
स्तम्भने गमने चित्रगतिवेगादिनिर्णये ॥
वैमानिक रहस्यार्थज्ञानसाधनमन्तरा ।
यतोऽधिकार संसिद्धिर्नेति सम्यग्विनिर्णितम् ॥

सूत्र के अर्थ से यह सिद्ध हुआ कि रहस्य जाने बिना मनुष्य यान चलाने का अधिकारी नहीं हो सकता, क्योंकि, विमान बनाना, उसे जमीन से आकाश में ले जाना, खड़ा करना, आगे बढ़ाना, टेढ़ी मेढ़ी गति से चलाना या चक्कर लगाना और विमान के वेग को कम अथवा अधिक करना आदि वैमानिक रहस्यों का पूर्ण अनुभव हुए बिना यान चलाना असंभव है।

–कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ७३७

रहस्यानुसार विमान के मुख केन्द्र की कीली (बटन) चलाने से 'दिशाम्पति' नामक यन्त्र की नली में रहने वाली सुई द्वारा दूसरे विमान के आने की दिशा जानी जाती है। स्तब्धक नाम के इकतीसवें रहस्य के अनुसार विमान की बायीं बगल में रहने वाली सन्धि मुख नाम की नली के द्वारा अपस्मार नामक (किसी विशेष छेद से निकलने वाले) धुएँ को इक्टठा करके स्तम्भन यन्त्र द्वारा दूसरे विमान पर फेंकने से उस दूसरे विमान में रहने वाले सब व्यक्ति स्तब्ध (बेहोश) हो जाते हैं।

कर्षण नामक बत्तीसवें रहस्य में कहा गया है कि उससे, अपने विमान का नाश करने के लिए शत्रु विमानों के आने पर, विमान के मुख में रहने वाली वैश्वानर नाम की नली में ज्वालिनी (किसी गैस का नाम) को जला कर सत्तासी लिंक प्रमाण (लिंक डिग्री की तरह किसी माप का नाम है।) गर्मी हो, जाती है जिसे दोनों चक्की की कीली (बटन) चलाकर शत्रु विमानों पर गोलाकार में फैलाने से शत्रु के विमान नष्ट हो जाते हैं।[1]

१– यन्त्र सर्वस्व में वर्णित ३२ रहस्यों में से कुछ के मूल संस्कृत विवरण देखिए–

(३) 'कृतक रहस्यो नाम–विश्वकर्मच्छाया पुरुषमनुमयादिशास्त्रानुष्ठान द्वारा तत्तच्छकृत्यनुसन्धानपूर्वकं तात्कालिक सङ्कल्पानुसारेण विमानरचनाक्रम-रहस्यम् ।'

(५) 'गूढ़रहस्यो नाम–वायुतत्वप्रकरणोक्त रीत्यावातस्तम्भाष्टमपरिधिरेखा पथस्य यासावियासाप्रयासादिवात शक्तिभिः सूर्यकिरणान्तर्गततमश्शक्तिमा कृष्य तत्संयोजन द्वारा विमानाच्छादन रहस्यम् ।'

(९) 'अपरोक्षरहस्यो नाम–शक्तितन्त्रोक्तरोहिणीविद्युतप्रसारेण । विमानाभिमुखस्थवस्तूनां प्रत्यक्षनिदर्शनक्रियारहस्यम् ।'

(२२) 'सर्पगमनरहस्यो नाम- दण्डवक्रादिसप्तविधमातरिश्वार्ककिरणशक्तीराकृष्य यानमुखस्थवक्रप्रसारणकेन्द्रमुखे नियोज्य पश्चात्तदाहृत्य शक्त्युद्गमननाले प्रवेशयेत् । ततः तत्कीलीचालनाद्विमानस्य सर्पवद् गमनक्रियारहस्यम् ।'

(२५) 'परशब्दग्राहकरहस्यो नाम–सौदामनीकलोक्तप्रकारेण विमानस्थशब्दग्राहक-यन्त्र द्वारा परविमानस्थजनसंभाषणादिसर्वशब्दाकर्षणरहस्यम् ।'

(२६) 'रुपाकर्षणरहस्यो नाम–विमानस्थरुपाकर्षणयन्त्रद्वारा परविमानस्थित वस्तु-रुपाकर्षणरहस्यमम् ।'

(२८) 'दिक्प्रदर्शनरहस्यो नाम–विमानमुखकेन्द्रकीलीचालनेन दिशाम्पतियन्त्र नालपत्रद्वारा परयानागमनदिक्प्रदर्शन रहस्यम् ।'

(३१) 'स्तब्धकरहस्यो नाम–विमानोत्तरपार्श्वस्थसन्धिमुखनालादपस्मारधूमं संग्राह्य

इसके अतिरिक्त वेगलूर से प्राप्त २२ ग्रन्थों का अति संक्षिप्त परिचय हस्तलिखित 'प्रस्थान त्रय' नामक लघु पुस्तिका के अन्तर्गत संस्कृत भाषा में प्राप्त होता है (श्री पं० वेक्टाचल शर्मा बंगलोर की कृपा से डॉ० प्रकाशमित्र शास्त्री द्वारा प्राप्त ।)

सुब्राय शास्त्री ने सन् १९२८ ई० में तत्कालीन दरभंगा नरेश को लिखे अपने एक बृहत् पत्र में भी प्राचीनतम भौतिक शास्त्रीय (विज्ञान परक) ग्रन्थों का परिचय लिखा है जो अंग्रेजी भाषा में (अनूदित) शिल्प संसार पत्रिका के १९ फरवरी १९५५ अंक में प्रकाशित हुआ है ।[1]

'यन्त्र सर्वस्व' में वर्णित १०६ प्रकार के विमानों का उल्लेख करते हुए डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री[2] ने विमानों को तीन वर्गों में बाँटा है ।

(क) **मान्त्रिक विमान**–यह विमान मंत्र प्रभाव की अधिकता से निर्मित तथा संचालित होते हैं । संभव है अणिमा, महिमा, गरिमा आदि का प्रभाव भी इनके निर्माण व संचालन में सहायक होता हो । इस जाति के पुष्पक, अजमुख, भ्राज, स्वज्योतिमुख, त्रिपुर आदि २५ भेद शास्त्रों में वर्णित हैं ।

(ख) **तांत्रिक विमान**–तान्त्रिक विमान द्यावा पृथ्वी की सन्धि में स्थित शक्ति के सम्मिलन क्रम से प्रचालित होते हैं । इस जाति के अन्तर्गत भैरव, नन्दन, बटुक, गरुडास्य आदि ५६ प्रकार के विमान आते हैं ।

(ग) **कृतक विमान**–इन्हें यान्त्रिक नाम से भी पुकारा जा सकता है । इस जाति के शकुन, सुन्दर, रूक्म आदि २५ प्रकार के विमानों का वर्णन पाया जाता है ।

स्तम्भनयन्त्र द्वारा तद्धूमप्रसारणात् परविमानस्थ सर्वजनानां स्तब्धीकरण रहस्यम् ।'

(३२) 'कर्षणरहस्यो नाम–स्वविमानसंहारार्थ परविमानपरम्परागमने विमानाभिमुखस्थवैश्वानरनालान्तर्गतज्वालिनीप्रज्वालनं कृत्वा सप्तरीतिलिङ्कप्रमाणोष्णं यथा भवेत् तथा चक्रद्वयकीलीचालनात् शत्रुविमानोपरि वर्तुलाकारेण तच्छक्ति प्रसारणद्वारा शत्रुविमान नाशनक्रिया रहस्यम् ॥'

–वही कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ७३७–७३८ पर श्री दामोदर झा द्वारा लिखित 'हमारी प्राचीन वैमानिक कला' नामक लेख के रहस्य सं० ३, ५, ९, २२, २५, २६, २८, ३१ एवं ३२ ।

१– वही, डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पृ० ८४ ।

२– वही, पृ० १६०–६१ ।

मान्त्रिक विमानों का प्रचलन त्रेता युग में, तान्त्रिक का द्वापर पर तथा कृतक का प्रयोग कलयुग में है, ऐसा आचार्यों का मत है ।[1] यन्त्र सर्वस्व में उपर्युक्त तीनों प्रकार के विमानों के सांगोपांग निर्माण एवं प्रयोग की प्रक्रिया का भली भाँति वर्णन किया गया है जिनका प्रयोग मनुष्य, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि सभी करते थे । ये नाना प्रकार के यन्त्रों से सुसज्जित थे । जिससे यान एवं यात्री सुरक्षित रह सकें ।[2]

इसी ग्रन्थ में विमान के ईधन को चतुर्विधि शक्ति के नाम से स्मरण किया गया है । १– घुटिका (ठोस) २– पादुका (द्रव) ३– दृश्य (गैस) ४– अदृश्य (अणु) प्रथम तीन, विमान शास्त्रियों के समाज में सर्वस्वीकृत इन्धन तत्व हैं । द्रव का प्रयोग हो रहा है । किन्तु द्रव ईधन के समान ठोस (बैटरी आदि) और गैसीय ईधन का प्रयोग भी विमान परिचालन के लिए परमोपयोगी है, ऐसा वैज्ञानिकों का निश्चित मत है ।[3] चतुर्थ अदृश्य (अणु) ईंधन के प्रयोग, आधुनिक वैज्ञानिकी में अभी प्रारंभ नही हुए हैं, परीक्षण चल रहे हैं ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट प्रकट होता है कि हमारे पूर्वज विमान और वैमानिकी कला से भली भाँति परिचित थे । वे विद्युत, गति नियंत्रक, टेलीफोन, रूप दर्शक, टेलीविजन, दिक्कम्पास (दिग् दर्शक एवं रेडार) गैस बम, विमान संघारक मिसाइल जैसी रचनाओं वाले यन्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर चुके थे ।

इसी विमान और वैमानिकी कला द्वारा प्राप्त पुष्पक विमान इतना लोक प्रिय हुआ कि उसका वर्णन हमारे आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण में बड़े विस्तार और प्रमुख उल्लेख के रूप में किया है ।

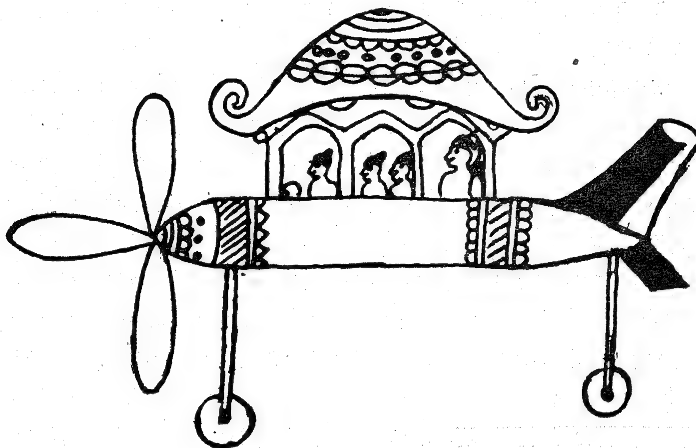
१– (व्योम यान तंत्र बृहत् विमान शास्त्र २३३/४५–४६) मंत्र यंत्र एवं तंत्र की व्याख्या को पं० रघुनन्दन शर्मा की पुस्तक में देखा जा सकता है । जल और वायु के स्तम्भन से जो शक्ति उत्पन्न होती है उसे मंत्र कहते हैं और दण्ड, चक्र, दान्तों की योजना, सरणि और भ्रामक आदि के द्वारा जिस शक्ति का वर्धन व संचालन किया जाता है उसे यन्त्र कहते हैं तथा मनुष्यों और पशुओं की शक्ति से जो कार्य किया जाता है उसे तन्त्र कहते हैं ।

–वैदिक सम्पत्ति ले० प० रघुनन्दन शर्मा, प्रकाशक शेठ शरजी वल्लभदास वर्मा बम्बई–४ सं० १९९६, द्वि० सं०, पृ० ३९३–९४ ।

२– वही, डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पृ० ८५–८६ ।

३– वही, पृ० २२५ ।

५.१.३. **रामायण काल में विमान एवं वैमानिकी**—आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने अपने प्रथम महाकाव्य श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण' में जहाँ पृथ्वी पर चलने वाले रथों का वर्णन किया है, वही परद्रुतगामी आकाश में चलने वाले पुष्पक विमान (देखिए चित्र—४) का भी बड़े मनोयोग से वर्णन किया है। इस पुष्पक नामक



पुष्पक का अनुमानित चित्र

चित्र—४

दिव्य विमान को विश्वकर्मा ने ब्रह्मा जी के लिए बनाया था। कुबेर ने बड़ी भारी तपस्या करके उसे ब्रह्मा जी से प्राप्त किया और फिर कुबेर को बलपूर्वक परास्त करके राक्षस राज रावण ने उसे अपने अधिकार में कर लिया।[1] अनेक प्रकार की विशिष्ट निर्माण कलाओं द्वारा, इस विमान की रचना हुई थी, तथा जहाँ—तहाँ से प्राप्त की गई दिव्य विमान निर्माणोचित विशेषताओं से इसका निर्माण हुआ था। यह विमान रावण को, संकल्प के अनुसार, जहाँ वह जाना चाहता था, वहीं पहुँचा

१— वा०मी०रा०, द्वितीय भाग गी०प्रे०गोरखपुर, प्र० सं०, सं० २०१७ पृ० ८८०, । एवं सर्ग—१५ श्लोक ३७ पृ० १४९३ ।

ब्रह्मणोऽर्थे कृतं दिव्यां दिव यद् विश्वकर्मणा ।
विमानं पुष्पकं नाम सर्वरत्नविभूषितम् ॥ ११
परेण तपसा लेभेयत् कुबेरः पितामहात् ।
कुबेर भोजसा जित्वा लेभेतद्राक्षसेश्र्वरः ॥ १२

—श्रीमद् वाल्मीकीय रामायणे, सुन्दर काण्डे, नवमः सर्गः

देता था।[१] देवताओं के गृहाकार उत्तम विमानों में, सबसे अधिक आदर इस, महा-विमान, पुष्पक का ही होता था।[२] इसमें जो विशेषतायें थीं, वे देवताओं के विमानों में भी नहीं थीं।[३] यह आकाशगामी था जब वह आकाश में उठकर वायुमार्ग में स्थित होता था तब सौर मार्ग के चिह्न-सा सुशोभित होता था।[४]

रावण ने सीता अपहरण के लिए उक्त रथ सभी पुष्पक विमान का ही प्रयोग किया गया था।[५]

जब इन्द्रजित् के बाणों से श्रीराम और लक्ष्मण अचेत हो जाते हैं, तब रावण की आज्ञा से राक्षसियाँ सीता को इसी पुष्पक विमान द्वारा रणभूमि में ले जाती हैं। सीता श्रीराम तथा लक्ष्मण को अचेत देखकर विलाप करती हैं तब त्रिजटा उन्हें समझा-बुझाकर, राम-लक्ष्मण के जीवित होने का विश्वास दिलाकर, विमान से लंका लौटा लाती है।[६]

इसी पुष्पक विमान द्वारा राम अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ अन्य सहयोगियों को लेकर लंका से अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं।[७] श्रीराम की आज्ञा पाकर वह हंसयुक्त उत्तम विमान महान् शब्द करता हुआ आकाश में उड़ने लगता है।[८]

१– तपः समाधानपराक्रमार्जितं, मनः समाधान विचार चारिणम्।
अनेकसंस्थानविशेषनिर्मितं, ततस्ततस्तुल्य विशेषनिर्मितम् ॥ ४
वही, वा० रा०, सुन्दर काण्डे, अष्टमः सर्गः, पृ० ८७९

२– वही, वा० रा० सुन्दर का०, सप्तमः सर्गः, श्लोक–११, पृ० ८७७।

३– वा० रा० सुन्दर का०, अष्टमः सर्गः श्लोक ३।

४– दिवगति वायुपथे प्रतिष्ठितं व्यराजतादित्यपथस्य लक्ष्मतत ।२।

५– अ–वही, वा० रा० प्रथम भाग, अरण्यका० सर्ग ३१ श्लोक ३३ से ३५ तक, पृ० ५६३।
ब–वही, सर्ग ३५ श्लोक ७ व १०, पृ ५७१
स–वही, सर्ग ४९ श्लोक २३, पृ० ६०५
द–वही, सर्ग ५३, श्लोक १, पृ० ६१४।
य–वही सर्ग ५४, श्लोक ७, पृ० ६१६।

६– वही वा० रा० भाग २, युद्धकाण्ड, सर्ग ४७, श्लोक ७, १३ से २४ तक, तथा सर्ग ४८

७– वही, युद्धकाण्ड, सर्ग १२१–२२, पृ० १४२५ से १४२९ तक।

८– वही, युद्धकाण्ड, सर्ग १२३, श्लोक–१, पृ० १४२९।
अनुज्ञातंतु रामेण तद् विमानमनुत्तमम्।
हंसयुक्तं महानादमुत्पपात विहायसम् ॥

विमान पर बैठे हुए राम ने सीता को लंका, युद्धभूमि, समुद्र और उसमें बंधे हुए नल सेतु आदि मार्ग के स्थान दिखलाये । सीता के अनुरोध पर किष्किन्धा में विमान ठहरा और तारा आदि वानर पत्नियों को लेकर विमान फिर आकाश मार्ग में चल पड़ा । ऋष्यमूक पर्वत, पम्पा नामक पुष्पकरिणी तथा जनस्थान के ऊपर से उड़ता हुआ, गोदावरी को पार कर, अगस्त्य के आश्रम, चित्रकूट, जमुना तथा गंगा को पार कर विमान भरद्वाज ऋषि के आश्रम पर आया ।[1] राम ने भरद्वाज ऋषि से अयोध्या और भरत की कुशल क्षेम पूछी तथा एक दिन आश्रम में रुककर, पुष्पक विमान से अयोध्या के लिए पुनः यात्रा प्रारम्भ की ।

गोमती नदी को पारकर विमान अयोध्यापुरी आया । लोग पृथ्वी पर खड़े होकर विमान पर विराजमान रामचन्द्र जी का दर्शन करने लगे । भरत भी हर्ष से पुलकित हो गये ।[2] इतने में ही श्री राम की आज्ञा पाकर, वह महान वेग शाली हंसयुक्त उत्तम विमान, पृथ्वी पर उतर आया ।[3]

राम ने भरत को विमान पर चढ़ाकर विमान पर बैठ सुग्रीव, जाम्बवान, अंगद, नल, नील आदि योद्धाओं से परिचय कराया, और स्वयं माताओं से भेंट करके शेष परिजनों एवं पुरजनों मे भेंट कर सबको आनन्दित किया । भरत ने राम के चरणों में चरण पादुकाएँ पहना कर उन्हें राज्य वापस किया । इसके पश्चात् राम भरत को बड़े हर्ष और स्नेह से गोद में बैठाकर विमान के द्वारा ही सेना सहित उनके आश्रम पर गए । वहाँ पहुँचने पर सेना सहित राम विमान से उतर कर भूतल पर खड़े हो गए और विमान को आज्ञा दी कि देवप्रवर कुबेर के पास चला जाय, और उनकी सवारी में रहे ।[4] राम की आज्ञा पाकर वह परम उत्तम विमान उत्तर दिशा को लक्ष्य करके कुबेर के यहाँ चला गया ।[5]

इस विमान का वेग मन के समान तीव्र था । वह अपने यात्रियों की इच्छा के अनुसार सब जगह आ जा सकता था । चालक जैसा चाहे वैसा छोटा या बड़ा रूप

१– वही, वा० रा०, भाग २ युद्ध काण्ड, सर्ग १२३, पृ० १४२९ से १४३२

२– वही, भाग २, सर्ग १२७, श्लोक २८ से ३८ तक, पृ० १४४२–४३

३– वही, भाग २, सर्ग १२७, पृ० १४४३

ततो रामाभ्यनुज्ञतं तद् विमानमनुत्तमम् ।
हुंसयुक्तं महावेगं तिपतात महीततम् ॥३९

४– वही वा० रा०, भाग २ युद्धकाण्ड, सर्ग १२७, श्लोक ४० से ६१ तक पृ० १४४३–४४

५– उपर्युक्त, श्लोक ६२, पृ० १४४४ ।

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद् विमानमनुत्तमम् ।
उत्तरां दिशमुदिद्श्य जगाम धनदालयम् ॥

धारण कर लेता था। उस आकाश चारी विमान में मणि और सुवर्ण की सीढ़ियाँ तथा तपाये हुए सोने की वेदियाँ बनी थीं[१] इसी पुष्पक से रावण कैलाश पर्वत के समीप गया।[२] जहाँ उसका विमान रुक गया था। रावण पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो सब ओर भ्रमण करने लगा था।[३] उस विमान से ही जाकर उसने उशीर बीज नामक देश[४] के राजा मरुत्त को पराजित किया तथा अन्य नरेशों के नगरों में भी युद्ध की इच्छा से गया[५] तथा वरुण और महेन्द्र को भी पराजित किया। इसके साथ-साथ पृथ्वी के सैकड़ों राजाओं को भी पराजित किया। एक दिन पुष्पक विमान से यात्रा करते समय उसे बादलों के बीच में मुनि श्रेष्ठ देवर्षि नारद भी मिले।[६] रावण यम को जीतने के लिए यम लोक भी इसी विमान से गया।[७] वरुण पुत्रों से युद्ध में विमान का प्रयोग रावण ने किया है।[८] विजय प्राप्त कर रावण आकाश मार्ग से लंका लौट गया।[९] लौटते समय रावण ने नागों, राक्षसों, असुरों, यक्षों और दानवों की बहुत-सी कन्याओं को हर कर विमान पर चढ़ा लिया।[१०]

उत्तर काण्ड के ७५ वें सर्ग में राम के द्वारा पुष्पक से अपने राज्य की सभी दिशाओं में घूम कर दुष्कर्म का पता लगाने का वर्णन है। मेघनाद, हनुमान, विभीषण एवं अन्य अनेक वीरो के आकाश में उड़ने का उल्लेख तो रामायण में यत्र-तत्र अनेक स्थलों पर है। देवताओं की विमान यात्रा का वर्णन भी विद्यमान है।[११]

५. १. ४. **महाभारत में विमान एवं वैमानिकी**-वाल्मीकीय रामायण में वर्णित इस पुष्पक विमान की घटना इतनी लोकप्रिय हुई कि अनुगामी साहित्य में

१- वही वा० रा०, भाग-२, सर्ग १५, श्लोक ३९, पृ० १४८३

मनोजवं कामगमं कामरूपं विहंगमम्।
मणि काञ्चन सोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम्॥

२- वही, वा० रा० उत्तरकाण्ड, सर्ग १६, श्लोक ३, पृ० १४९३

३- वही, सर्ग १८, श्लोक, १ पृ० १४९९।

४- वही, वा० रा०, उत्तरकाण्ड, सर्ग १८, श्लोक, १ पृ० १४९९

५- वही वा० रा०, उ० का०, सर्ग १९, श्लोक-१, पृ० १५०१।

६- वही, सर्ग २०, श्लोक-१, पृ० १५०३।

७- वही, सर्ग २१, श्लोक ९-१०, पृ० १५०६।

८- वही, सर्ग २३, श्लोक ३३, पृ० १५१३।

९- वही, सर्ग २३, श्लोक-५४, पृ० १५१४।

१०- वही, सर्ग २४, श्लोक ३, पृ० १५१५।

एवं पन्नगकन्याश्चराक्षसासुरमानुषीः।
यक्ष दानवकन्याश्चविमानेसोऽध्यरोपयत्॥

११- वही, वा० रा० प्रथम भाग, अरण्यकाण्ड, सर्ग ३५ श्लोक १९, पृ० ५७१

इस घटना का विशेष उल्लेख हुआ । महाभारत[1] के वनपर्व के अन्तर्गत रामोपाख्यान पर्व में दुखी हुए युधिष्ठिर को सान्त्वना के लिए मार्कण्डेय मुनि ने (अध्याय २७३ से २९२ तक) राम का जीवन चरित संक्षेप में कहा है । इसमें उन्होंने कहा है कि ब्रह्मा ने वैश्रवण की महादेव से मैत्री कराकर, नल कूबर नामक पुत्र एवं राक्षसों से भरी लंका नाम की राजधानी दी । साथ ही उन्हें इच्छानुसार विचरने वाला पुष्पक नामक एक विमान दिया तथा कुबेर को यक्षों का स्वामी बना दिया ।[2] रावण ने आक्रमण करके कुबेर से पुष्पक विमान छीन लिया ।[3] इसी पुष्पक से राम ने अयोध्या तक यात्रा की ।[4]

यही नहीं कुबेर अर्जुन को देखने के लिए महा तेजस्वी विमान द्वारा आये । उनके साथ बहुत से यक्ष भी थे ।[5] मतलि के साथ महातेजस्वी रथ के द्वारा जब अर्जुन ने देवराज इन्द्र की प्रियनगरी अमरावती में प्रवेश किया तो वहाँ उन्होंने स्वेच्छानुसार गमन करने वाले देवताओं के सहस्रों विमान स्थिर भाव से खड़े और हजारों इधर-उधर आते जाते देखे थे ।[6] घटोत्कच के गगनचारी होने के कारण, उसके युद्ध को भी वैमानिक युद्ध स्वीकार किया जाता हैं ।

रामायण एवं महाभारत के उपर्युक्त विमान एवं वैमानिक उल्लेखों के संदर्भ में ही आई० आई० टी० (कानपुर) के निदेशक डॉ० अमिताभ भट्टाचार्या ने वायुतरण और उड्डयन केन्द्र आई० आई० टी० के दशवें वार्षिकोत्सव पर आयोजित एक उड्डयन खेल संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए यह स्वीकार किया कि 'संभवतः भारतवासियों को उड्डयन क्रिया का ज्ञान रामायण काल से ही था । पुष्पक विमान

१– महाभारत, १९५६, वर्ष, संख्या एवं पूर्ण सं० ९, पृ०१७१४ से १७७१ तक ।

२– वही महाभारत, वन पर्व में रामोपाख्यान पर्व, वर्ष १, सं० ९ अ० २७४ श्लोक १७ पृ० १७१६ ।

विमानं पुष्पकं नाम कामगं च ददौ प्रभुः ।
यक्षणामाधिपत्यं च राजराजत्वमेव च ॥

३– वही, अध्याय २७५, श्लोक ३४, पृ० १७१९ ।

४– वही, अध्याय २९१, श्लोक ५३ से ५९, पृ० १७६८–६९ ।

५– महाभारत, वनपर्व में कैरात पर्व, वर्ष १ सं० एवं पू० सं० ६, गोरखपुर चैत्र २०१२ अप्रैल १९५६, अध्याय ४१, श्लोक ७ पृ० १०६७ ।

अथ जाम्बूनदवपुर्विमानेन महार्चिषा ।
कुबेरः समनुप्राप्तो यक्षैरनुगतः प्रभुः ॥

६– वही, अध्याय ४३, श्लोक ७, ८ एवं ९, (वन पर्व में इन्द्रलोकाभिगमन पर्व) पृ० १०७३

और घटोत्कच युद्ध का वर्णन इस दिशा में संकेत करते हैं।[१] व्यक्तिगत सम्पर्क[२] में भी उन्होने उक्त कथन की पुष्टि की।

५. १. ५. **श्रीमद्भागवत में विमान और वैमानिकी**–श्रीमद्भागवतकार महर्षि वेदव्यास ने श्रीमद्भागवत में, अनेक विमान और वैमानिकी के सदर्भ दिए हैं। सती, आकाश में चलने वाले देवता, सिद्ध गन्धर्व, विद्याधर आदि उपदेवताओं तथा सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणों से अलंकृत उनकी स्त्रियों को, विमानों पर बैठे एवं अपने पिता दक्ष के यज्ञ की चर्चा करते हुए, तथा उसमें सम्मिलित होने के लिए जाते हुए देखती है।[३] उन्होंने अपने पति शंकर जी से कहा कि यज्ञ में जाने वाली इन देवांगनाओं के राजहंस के समान श्वेत विमानों से आकाश मण्डल कैसा सुशोभित हो रहा है।[४]

युद्ध में भगवान के हाथों मारे गये हिरणाकश्यपु की मृत्यु पर प्रसन्न होकर आकाश में विमानों से आये हुए भगवान् के दर्शनार्थी देवताओं की भीड़ लग गयी थी।[५]

१– एक नम्बर १९७६ के दैनिक जागरण में प्रकाशित समाचार।

२– दिनांक २५-८-१९७९ सायं २ बजे।

३– श्रीमद्भावत (हिन्दी), अनुवादक रूपनारायण पाण्डेय, प्र० सं०, पृ० २३७-२३८ में उल्लखित।

तस्मिन्ब्रह्मर्षयः संवेदेवर्षिपितृदेवता: ।
आसन्कृत स्वस्त्यय नास्तत्यत्न्यश्चसभर्तृका: ।।४
तदुपश्रुत्यनभसिखेचरणां प्रजल्पताम् ।
सतीदक्षायणीदेवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ।।५
व्रजन्ती: सर्वतोदिगभ्यउपदेववरस्त्रिय: ।
विमान याना: सप्रेष्ठानिष्क कण्ठीसुवासस: ।।६

–श्रीमद्भागवत महापुराण, प्रथम खण्ड, चतुर्थ स्कन्ध, अध्याय–३, पृ०–३८०

४– वही, श्रीमद्भागवत् हिन्दी अनुवाद।

पश्यप्रयान्तीरभवान्ययोषितोऽप्यलकृता: कान्तसखावरथश: ।
यासां व्रजद्भि: शितिकण्ठमण्डितं नभोविमानै:कलहंसपाण्डुभि ।।२

–वही भागवत्, चतुर्थ स्कन्ध, अध्याय ३, पृ० ३८० ।

५– वही, श्रीमद्भागवत हिन्दी अनुवाद, सप्तम स्कन्ध, अध्याय ८, श्लोक ३६, पृ० ८२०।

मयदानव द्वारा सोने, चाँदी और लोहे के तीन पुर अर्थात् विमान बनाने का वर्णन है । ये पुर आकाश में आते-जाते दिखलाई नहीं पड़ते थे । असुरों के सेना पति इन विमानों पर बैठकर अलक्ष्य रहकर लोकपाल सहित लोकों का विनाश करते हुए घूमते ; जिससे देवता परेशान होते हैं । तब शंकर देवताओ की प्रार्थना पर इन्हें नष्ट कर देते हैं ।[1]

इन्हीं विमानों से दैत्य बादलों को फाड़कर जैसे बिजली प्रकट होती है वैसे ही आकाश मण्डल में प्रकट होते थे । शंकर द्वारा त्रिपुर को नष्ट करने पर विमानों पर चढ़े हुए देवता, ऋषि, पितर, सिद्ध आदि 'जय हो', 'जय हो', कहकर शंकर के ऊपर फूल बरसाते थे ।[2]

भागवत[3] में कुबेर के पुष्पकयान[4] कर्दम के दिव्य यान[5] और शाल्व के विमान का वर्णन है जो जल, स्थल, पर्वत तथा आकाश में सर्वत्र चलते थे ।[6]

५. १. ६. **पद्म पुराण में विमान एवं वैमानिकी**–इस पुराण में एक स्थल पर उल्लिखित है कि एक दिन श्रीकण्ठ चैत्य की बन्दना करने के लिए वायु के समान वेग वाले सुन्दर विमान के द्वारा सुमेरु पर्वत पर आया ।[7] यह विमान आकाशगामी था ।[8]

वैश्रवण आकाश मार्ग से आया-जाया करता था ।[9] इसका भी एक पुष्पक विमान था । रावण के भृत्यजन इस विमान को रावण के समीप ले आये । यह विमान

१– श्रीमद् भावत् हिन्दी, अनुवाद स्कन्ध ७, अध्याय १०, श्लोक ५३ से ६८ तक, पृ० ५१८ ।

२– देखिए श्रीमद्भागवत अनु० रूपनारायण पाण्डेय, पृ० ५१८–१९

३– महर्षि वेदव्यास प्रणीयतम्–श्रीमद्भागवत महापुराणम्, (स्थूलक्षरं मूलमात्रम्) गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण सं० २०३३ ।

४– वही, श्रीमद्भागवत हिन्दीअनुवाद स्कन्ध नवम, अध्याय १०, श्लोक ३२, पृ० ३२७

५– वही, स्कन्ध ३, अध्याय २३, श्लोक १२ से २१ तक एवं ४१, पृ० १३४–१३५

६– वही, स्कन्ध १० अध्याय ७६ श्लोक ८, २१ एवं २२, पृ० ५५२ ।

स लब्ध्वा कामगं यानं तपोधाम दुरासदम् ।
ययौद्वारावतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥८
क्वचिद् भूमौ क्वचिद् व्योमिन गिरिमूर्ध्नि जलेक्वचित् ।
अलातचक्रवद्भ्राम्यत् सौभं तद् दुखस्थितम् ॥२२

७– पद्पुराण, आचार्य रविषेण, प्रथम भाग, षष्ठं पर्व, श्लोक १३, पृ० ९८ ।

चैत्यानां वन्दनां कर्तुं श्रीकण्ठः सुपर्वतम् ।
गन्तोऽन्यदा विमानेन वायुवेगेन चारुणा ॥१३

८– वही, श्लोक १८ एवं २०, पृ० ९८ ।

९– वही, सप्तम पर्व श्लोक संख्या २३०, पृ० १५५

अत्यन्त सुन्दर था ।[१] मानी दशानन ने शत्रु की पराजय का चिह्न समझ उस पुष्पक विमान को अपने पास रखने की इच्छा की थी, अन्यथा उसके पास विद्या निर्मित कौन सा वाहन नहीं था ।[२] वह उस विमान पर आरूढ़ होकर मन्त्रियों, वाहनों-नागरिक जनों, पुत्रों, माता-पिता तथा बन्धुओं के साथ घूमा ।[३] पद्म पुराण के अष्टम् पर्व के श्लोक १९, २१ एवं श्लोक २५३ से २७१ तक पुष्पक विमान का वर्णन है । यह वर्णन रामायण के पुष्पक विमान की घटना को लोक प्रसिद्धि ही प्रदर्शित करता है । इसमें महर्षि भृगु का विमान द्वारा वायु मार्ग से भगवान् शंकर के पास पहुँचने का वर्णन भी विद्यमान है ।[४]

५. १. ७. **आध्यात्म रामायण में विमान वर्णन**—इस रामायण के युद्ध काण्ड के सर्ग १३ एवं १४ में विस्तार से पुष्पक विमान का वर्णन किया गया है । एक स्थल पर, महादेव जी पार्वती से कथा वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि इन्द्र, यमराज, वरुण, कुबेर, सिद्धाचरी मुनियों सहित ब्रह्मा और पितृगण, ऋषि, साधक, गन्धर्व, अप्सरा और उरग आदि को लेकर सभी देवगण श्रेष्ठ विमानों पर चढ़कर, जहाँ रामचन्द्र जी स्थित थे, वहाँ आये ।[५]

राम-रावण युद्ध समाप्त हो जाने पर राम अयोध्या जाने के लिए तैयार हैं । विभीषण, राम की यथा योग्य प्रसंशा करते हैं और सूर्य के तुल्य प्रकाशमान पुष्पक विमान लाते हैं ।[६]

१– वही, पद्म पुराण, आचार्या रविषेण, अष्ठम पर्व, श्लोक २५८, पृ० १८६

भृत्यैरूपाहृतं तुङ्गं सुरप्रसाद सन्निभम् ।
विमानं पुष्पकं नाम विहाय स्तलमण्डल ।।२५८

२– वही, अष्टम पर्व, श्लोक २५९, पृ० १८६

३– वही, श्लोक २६०, पृ० १८६ ।

सतं विमानभारुह्य सामात्य, सह वाहन. ।
सपौर: सात्मज सार्थं पितृभ्यां सहबन्धुभि: ।।

४– पद्मपुराण, उत्तर खण्ड, अध्याय २५५, श्लोक २६

५– अथ अध्यातम रामायण, युद्धकाण्ड: प्रथम संस्करण

पितरो ऋषय: साध्यागन्धर्वाप्सरसोरगा: एतेचान्ये विमानाग्यैराजग्मुर्य-त्रराधव: । सर्ग १३ (३)

६– वही, सर्ग १३ (४६) अभिनन्द्ययथान्यायविससर्जनहरीश्वरान्
विभीषण समानीत पुष्पकं सूर्य बर्चसम । ४७
आरुहरोहत तोरामस्त द्विमान मनुत्तमम ।

इस पुष्पक पर सेना सहित सवार होकर, सीता को मार्ग के स्थल दिखाते, किष्किन्धा से तारा[1] आदि को लेकर राम अयोध्या पहुँच जाते हैं।

अगस्त्य संहिता[2] इस में भी पुष्पक का वर्णन है।

५. १. ८. **अंश बोधिनी में विमान वर्णन**–भरद्वाज कृत अंश बोधिनी के "शक्त्युद्गमाद्यष्टौ' सूत्र की बोधायन वृत्ति' में शक्त्युद्गम आदि आकश गामी विमान के आठ प्रकार इस तरह बतलाए गए हैं–

१–शक्त्युद्गम (बिजली से चलने वाला)

२–भूतवाह (अग्नि, जल, वायु से चलने वाला)

३–धूमयान [वाष्प से चलने वाला)

४–शिखोद्गम (तैल से चलने वाला)

५-अंशुवाह (सूर्य किरणों से चलने वाला)

६–तारामुख (उल्कारस अर्थात् चुम्बक से चलने वाला)

१– उक्त, अध्याय रामायण, सर्ग १३ एवं १४।

२–(अ) मानस पीयूष-खण्ड ७, पृ० ५० पर उल्लखित।

(ब) अगस्त्य संहिता की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए–अमेरिकन केमिकल सोसाइटी के अधिवेशन में पढ़े गए अपने एक निबन्ध में डॉ० कोकट नूरने लिखा हैं जिसके अनेक उद्धरण श्री द्वारिका प्रसाद गुप्त एम० एस-सी० ने विश्व वाणी में प्रकाशित अपने लेख में प्रस्तुत किये हैं वे लिखते हैं–हाइड्रोजन और आक्सीजन की खोज सबसे पहले केविण्डिश और प्रीस्टले ने नहीं की बल्कि भारत के प्राचीन ऋषियों ने की।·········अगस्त्य ऋषि के नाम का जिक्र ईसा से २००० वर्ष पहले तक भारतीय ग्रन्थों में आता है अतः जो हस्तलिपि अगस्त्य संहिता नाम से पुकारी जाती है। वह बहुत पुरानी है यह वैदिक काल के बाद की किन्तु महाकाव्य काल से पहले की है। इस ग्रन्थ के अनुसार हाइड्रोजन, आक्सीजन आदि गैसें सूखी बैटरी इलक्टोपेन्टिग, पतंग ओर गुब्बारे आदि की खोज का श्रेय अगस्त्य मुनि को है।······ ईसा से ८०० वर्ष पहले की लिखी हस्तलिपियों से पता चलता है कि प्राचीन भारतवासी भौतिक विज्ञान भी जानते थे क्योंकि यह निश्चित रूप से लिखा मिलता है कि प्रकाश, ताप और शब्द लहरों के रूप में आगे बढ़ते हैं निश्चित रूप से अगस्त्य नाम के समान ही अन्य अनेक आचार्यो व उनके द्वारा प्रमाणित शास्त्रों के नाम भी उस समय प्रसिद्धि को प्राप्त थे जो आज काल गह्वर में अर्न्तनिहित हो चुके हैं। वही डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पृ० ६४।

७–मणिवाह (चन्द्रकान्त सूर्यकान्त आदि से चलने वाला)

८–मरुत्सक (केवल वायु से चलने वाला)[1]

आधुनिक युग में पिस्टन, टरबाइन एवं जेट तथा राकेट इंजिन वाले विमान विद्यमान हैं, किन्तु बिजली, चुम्बक एवं सूर्य किरण ऊर्जा से चलने वाले विमानों का अब भी अभाव है। अमेरिका, रूस और जापान में सूर्य ऊर्जा पर प्रयोग चल रहे हैं।[2] वायु से चलने वाले ग्लाइडर (चुपके से जाने वाला बिना इन्जन का हवाई जहाज) और एयर शिप तो हैं, वाष्प से चलने वाले प्रायोगिक ही रहे व्यावहारिक नहीं हो सके। राकेटों को ऊष्मा और जेट विमानों को गैस से चलने वाला, कहा जा सकता हैं।

स्वामीकरपात्री जी इन्हीं संदर्भों में अपने प्राचीन विमान एवं वैमानिकी कला के ज्ञान से इतने प्रभावित हो उठते हैं और गदगद हृदय से कह उठते हैं कि 'रामायण के पुष्पक यान तथा देवताओं के दिव्य विमानों का मुकाबिला करने में आज के विमान कुछ हैं ही नहीं। कथा सरित्सागर एवं बृहत्कथा में वर्णित विमानों का भी आधुनिक विमान मुकाबिला नहीं कर सकते। उनमें उनके कील के दबाने से एक बार की उड़ान में आठ हजार योजन तक जाने की क्षमता थी, खतरे की तो कोई संभावना थी ही नहीं।'[3] निःसंदेह इसे भावुकता नहीं कहा जा सकता। ११ वीं ई० के पूर्वार्द्ध में राजा भोज के पास एक काष्ठमय अश्वाकार यन्त्र था जिसकी ११ कोस प्रति घड़ी गति थी।[4]

१– मार्क्सवाद और रामराज्य, करपात्री जी, सं० २०२३ पृ० ४३७–३८ पर पाद टिप्पणी। संपुष्टि के लिए देखिए–

शक्त्युद्गमो भूत वाहो धूमयान शिखोद्गमः।
अंशुवाहस्तारामुखो मणिवाहो मरुत्सखः।
इत्यष्टकाधिकरणे वर्गण्युक्तानिशास्त्रतः॥

महर्षि भरद्वाज प्रणीत अंशुबोधिनी की चर्चा करते हुए पं० रघुनन्दन शर्मा ने वैदिक सम्पत्ति के द्वि० सं०, सं० १९९६, पृ० ३९५, तथा डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री ने भी अपने अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पृ० २७ पर उल्लेख किया है।

२– अमेरिका ने सूर्य किरणों से चलने वाले सोलर वी–वन विमान का निर्माण कर लिया है। (वर्ष १९८१ के बाद)

३– सन्दर्भ १।

४– घट्यैकया क्रोशदैशकमश्वः सुकृत्रिमो गच्छति चारुगत्या।
वायुं ददाति व्यंजनं सुपुष्कलं विना मनुष्येण चलत्यजस्रम्॥
–समरांगण सूत्र धार।

जैसा कि 'मार्क्सवाद और रामराज्य के पृ० ४३७ की पाद टिप्पणी में उल्लखित है।

५. १. ९. **समराङ्गण सूत्रधार में विमान वर्णन**–समरांगण सूत्रधार के ३१ वें अध्याय में गजयन्त्र, आकाशगामिदारुमय विमानयंत्र द्वारपालयंत्र, योध यन्त्र आदि का वर्णन है ।[1] इन यन्त्रों के बनाने की विधि न कहने के कारण को स्पष्ट करता हुआ कवि कहता है कि यन्त्रों के बनाने की विधि हमने नहीं कही हैं और ऐसा गुप्त रखने के उद्देश्य से किया है । इसलिए नहीं कि, उसके विषय की जानकारी नहीं है, प्रत्युत इसका यह कारण जानना चाहिए कि अगर उनको प्रकट कर दिया जायेगा तो वह फल प्रद नहीं होंगी ।[2] इन मशीनों के बनाने के लिए व्यक्ति में क्या अर्हताएँ होनीं चाहिए, इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है 'कुल परम्परा से वह कार्य होता हो, कार्य करने में कुशल हो, यन्त्र निर्माण में कुशल व्यक्ति से सीखा हो, यन्त्र शास्त्र का अभ्यास हो, वास्तुकर्म में परिश्रम करने का उत्साह हो, उत्तम बुद्धि हो और उपयुक्त स्वच्छ यन्त्र निर्माण की सामग्री उसके पास हो । जिसके पास यह सब होगा वह शीघ्र ही यन्त्र निर्माण विधि सीख लेगा ।[3] इन अन्यान्य यन्त्रों को बनाने की विधि के न कहने तथा यन्त्र बनाने के लिए अपेक्षित वैयक्तिक अर्हताओं पर टी० गनपत शास्त्री ने भी अपने विचार व्यक्त किये है ।[4] तथा उक्त कथन की पुष्टि की है ।

१– समराङ्गण सूत्रधार, मूल सम्पादक–महामहोपाध्याय टी गणपति शास्त्री पुनश्च सम्पादित श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट आफ बरौदा सन् १९६६, पृ० १७५ से १९५ तक,अथ यन्त्र विधानंनामैक त्रिंशीऽध्याय: । भोजराज ११ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में थे ।

२– यन्त्राणां घटना नोक्ता, गुप्त्यार्थं नाज्ञतावशात् ।
तात्रहेतुरयं ज्ञेयो व्यक्तां नैते फलप्रदा: ॥
–वही, समरांगाण सूत्रधार: दि० सं० में प्रथम संस्करण के प्राक्कथन से उद्धृत पृ० १७५ या० द्वि० सं० पृ० १८२, श्लोक ७९–८० ।

३– पारम्पर्यं कौशलं सोपदेशं शास्त्रभ्यासोवास्तुकर्मोद्यमोधी: ।
सामग्रीयं निर्मलस्य सोऽस्मिश्चित्राण्येवं वेत्तितन्त्राणि कर्तुम ॥
–उक्त प्र० स० पृ० १७६ या द्वि० सं० पृ० १८३ श्लोक ८७ ।

4. Second volume of samarangana sutradhara : 1966–preface to the first Edition.

It may be said that, Because the various machines such as the elephant machine, Door keeper machine flying machine etc. mentioned in the work, have not been either seen or heard of before, they are only products of Imagination and not actual machines made and put in to practical use, that is not so, for, even things wnich once existed might, in the long run, come to

समरांगण सूत्रधार में विमान का वर्णन इस प्रकार दिया गया है।

इस यन्त्र (विमान) के निर्माण में चारबीज (गुर) कहे गये हैं वे जल, अग्नि भूमि और पवन हैं जो यथा स्थान रखे गये हैं।[1] छोटी लकड़ी के बने हुए दृढ़ और ठीक से चिपकाये हुए शरीर वाले एवं विशाल पक्षी के आकार वाले विमान का निर्माण कर उसके मध्य (उदर) में पादर का यन्त्र (रसयंत्र) रख दें और उसके नीचे अग्नि से भरा अग्नि पात्र लगा दें। इस प्रकार लोहे के पात्र में डाला हुआ मन्द अग्नि से तपाया हुआ पारद का कुम्भ अग्नि के गुण से तप कर गर्जन करते हुए, पारद की शक्ति से आकाश में उड़ जाता है। इस विमान पर आरुढ़ पुरुष, उसके दोनों पंखों के तीव्र चालन से छोड़ी हुई वायु के द्वारा, अन्दर सोये हुये पादर की शक्ति से विचित्र कार्य करता हुआ, दूर आकाश में उड़ जाता है। इस प्रकार देव मंदिर के समान यह छोटा लकड़ी का विमान उड़ता है। चतुर व्यक्ति को विधि पूर्वक उसके अन्दर पारद से भरे दृढ़ कुम्भ अवश्य रखने चाहिये।[2]

---

be considered as un-real on account of their disuse & things involving much labour, time & money may also get out of use very easily.

It may be asked next why poet has not described the method of constructing the machines. The poet himself answers thus (See on foot note No 2, Page 137 of this chapter,)

The meaning of the line 'व्यक्ता नैते फलप्रदः' is in case the methods are revealed in the work, then every one not Initiated in the art by the preceptor will try to construct the machines and the attempt made by such a person may not only not achieves success but bring about troubles and difficulties. The following sloka contains the qualifications necessary for constructing the machines. (Samarangan Sutradhar vo, I Page : 125, see on foot note No. 3of this chap. Page 137.)

It in also not uncommon, In the case of highly useful machines, to keep unrevealed the methods of constructing them.

१. समरांगण-सूत्रधार–पृ० १८३।

बीजं चतुर्विधमिह प्रवदन्ति यन्त्रे–
ष्वम्भोऽग्नि भूमि पवनैर्निपवनैर्निहितैर्यथावत ॥ ८४ ॥

२. वही समरांगण सूत्रधार–श्लोक ९५, ९६–९७ एवं ९८, पृ० १८३–८४।

लघुदारुमयं महाविहगं दृढ़सुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य।

इसी पुस्तक में एक स्थल पर कवि ने लिखा है कि ये सभी यन्त्र स्थित साधनों के द्वारा सिद्ध होते हैं। अर्थात् जो भू पर विचरने वाले हैं उनकी आकाश में गति होती है और जो आकाश में चलने वाले होते हैं, उनकी पृथ्वी पर गति होती है।[1] एक अन्य स्थल पर कवि यह भी स्वीकार करता है कि अन्यत्र जो-जो भी दुष्कर कार्य समझा जाता है, वह यन्त्र से सिद्ध हो जाता है।[2] विमान एवं अन्य यन्त्रों के विशेष ज्ञान हेतु समरांगण सूत्रधार अवलोकनीय है।

५. १. १०. **अन्य पुस्तकों में विमान वर्णन**—यही नहीं हमारे देश के शिल्प-शास्त्र[3] के आदि आचार्य विश्वकर्मा ने जिन्हें सृष्टि का रचयिता एवं विज्ञान का

उदरे रस यन्त्र मादधीत ज्वलनाधारमक्षोऽस्यचातिग्निपूर्णम् ।। ९५

तत्रारूढ़: पुरुषस्तस्य पक्षद्वन्द्वोच्चाल-प्रोज्झितेनानिलेन ।
सुप्तस्यान्त: पारदस्यास्य शत्याचित्रं कुर्वन्नम्बरे याति दूरम् ।। ९६

इथमेव सुरमेन्दिरतुल्यं स ज्वलत्यलघुदारुविमानम् ।
आदधीत विधिना चतुरोऽन्तस्तस्य पारदभृतानदृढकुम्भान् ।। ९७

अय: कपालाहितमन्दवह्नि प्रतप्ततत्कुम्भ भुवा गुणेन ।
व्योम्रोझगित्या भरत्येति सन्तप्तगर्जद्रसराजशक्त्या ।। ९८

इसी पारे से चलने वाले विमान का वर्णन वृहद् विमान शास्त्र में किया गया है।

महर्षि भरद्वाज प्रणीत 'वृहद् विमान शास्त्र" सम्पादक एवं भाषानुवादकस्वामी ब्रह्म मुनि परिव्राजक, गुरुकुलकांगड़ी (हरिद्वार) प्रकाशक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, नई दिल्ली। प्रथम सं० फरवरी १९५९ ई० पृ० २९० पर श्लोक ३७५।

१. वही, संमराङ्गण सूत्रधार:, पृ० १८०।

ता: मर्वा अपि सिध्यन्ति सम्यग्यन्त्रस्थं सावनात् ।
भू चराणां गति र्व्योम्नि भूमौ व्योम चरागम: ।। ५९

२. वही, स० सू०, पृ० १८२।

दुष्करं पद्य दन्यच्चतन्तद यन्त्रात् प्रसिध्यति । ७९

३. मत्स्य पुराण के अनुसार १८ ऋषियों ने विश्वकर्मा के साथ रह कर शिल्प शास्त्र की रचना की जिसके विभाग इस प्रकार हैं। कृषि शास्त्र, जल शास्त्र, खनिज शास्त्र, नौकाशास्त्र, रथ शास्त्र, विमान शास्त्र (आकाश गामी समस्त विमानों की रचना इसके अन्तर्गत आ जाती हैं) वस्तुशास्त्र, प्रकार शास्त्र (परकोटा

प्रवर्तक माना जाता है ।[१] विज्ञान की १२००० पुस्तकों की रचना की । कल युग में इनमें से ४००० पुस्तकों के शेष रहने की चर्चा पंडित बालाराव जी शास्त्री पूना वालों ने अपने विश्व ब्रह्म कुलोत्साह ग्रन्थ में 'अपराजित' नाम के शिल्पशास्त्री की पुस्तक का उद्धरण देते हुए की है । इन्होने अपने शिल्प शास्त्र में ३२ प्रकार के विमानों का वर्णन किया है, जैसे, पुष्पक, शातकुम्भ वैहायस, गरुण, सर्पाकार, नौकाकार, सोम आदि विमानों का सिद्धान्त भी शिल्पशास्त्र में दिया है ।[२]

इसके अतिरिक्त विमान का वर्णन रघुवंश[३] एवं अभिज्ञान शाकुन्तलम्[४] में भी विद्यमान है । धम्मपाद में बोधिराज कुमार के राज्य में राजधानी (नेपाल) जाने के लिए, एक शिल्पी द्वारा निर्मित गरुण यन्त्र (वायुयान) का भी वर्णन है ।

उपर्युक्त से विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीयों को प्राचीन काल से ही उड्डयन विद्या का ज्ञान था जो किन्ही कारणों से विलुप्त हो गया किन्तु हमारी प्राचीन साहित्यक कृतियों ने हमारे विमान और वैमानिकी संबंधी ज्ञान को सुरक्षित रखा जो तुलसी के मानस के राम की ही तरह सदा-सदा की लिए

निर्माण आदि) भवन निर्माण शास्त्र एवं यन्त्र शास्त्र । शिल्प विषयक कुछ ग्रन्थों के नाम-अयतत्व, विश्वकर्ममत, विश्वकर्मीय, विश्व बोध, वास्तुशास्त्र, प्रसाद-केसरी प्रसाद-कीर्तनवास्तु निर्णय, वास्तु लक्षण वास्तु शिरोमणि' ज्ञान रत्न राजवल्लभ आदि कुल ६२ ग्रन्थ हैं ।

१. विश्वकर्मा का प्रादुर्भाव सम्भवत: प्रथम मन्वन्तर में ब्रह्मवादिनी भुवना (देवगुरुवृहस्पति की बहन) की कोखा से हुआ था । इनके पिता का नाम प्रभास ऋषि था । इसके सम्बन्ध में स्कन्ध पुराण का प्रभास खण्ड ७ अ० २१ श्लोक १६ देखिए बृहस्पतेस्तुभगिनी भुवना ब्रह्मवादिनी, प्रभासस्य तुसा भार्या वसुनामष्टमस्य च । विश्वकर्मा सुतस्तस्य शिल्पकर्ता प्रजापति: । ब्रह्माण्ड पुराण, समरांगण सूत्र धार:, वायुपुराण हरिवंशपुराण तथा महाभारत में भी इसकी पुष्टि है । ऋग्वेद में विश्वकर्मा सूक्त के नाम से १४ ऋचाये हैं । यजुर्वेद के अध्याय १७ मन्त्र १८ से ३२ तक इनका वर्णन है । इन्हीं विश्वकर्मा ने विमान रचना एवं दूरवीक्षण यन्त्र रचना जैसे महत्वपूर्ण कार्य किऐ थे ।

२. दैनिक 'आज' रविवार, १७ सितम्बर १९७८, सौर-१ आश्विनी–२०३५, पृ० ४ पर भारती शर्मा का लेख–शिल्पशास्त्र के आदि आचार्य विश्कर्मा ।

३. कालिदास, सर्ग ५, श्लोक २७ तथा सर्ग १२, श्लोक १०४ एवं सम्पूर्ण सर्ग १३ में पुष्पक वर्णन ।

४. कालिदास, अंक ७, श्लोक ६ एवं ८ ।

अजर अमर हो गया।

जैसा कि हम जानते हैं कि परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है और और विकास मनुष्य का गुण। विकास की ओर अग्रसर होता हुआ मानव विनाश के गर्त में विलीन हो पुनः विकास की ओर अग्रसर होता है। पर वह सदैव अनुभव यही करता है कि जिस काल में वह रह रहा है वह काल ही प्रगति के सर्वोच्च शिखर पर है। ज्ञान और विज्ञान की दृष्टि से वह ही सर्व श्रेष्ठकाल है, भले ही भविष्य में उसकी इस अवधारणा को धक्का लगे।

प्राचीन एवं अर्वाचीन विमान एवं वैज्ञानिकी संबंधी ज्ञान के लिए यह कहा जा सकता है। इसकी पुष्टि स्वामी करपात्री जी करते हुए कहते हैं।

'पुनश्च आधुनिक लोगों के मतानुसार जो छः हजार वर्ष के भीतर ही संसार का ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक काल मानते हैं, उनके लिए भले ही कोई नवीन अद्भुत विकास हो, परन्तु जो अरबों वर्ष की दुनियाँ मानते हैं, वे लाखों वर्ष पहले महायन्त्रों का निर्माण करके उनका दुष्परिणाम भी जान चुके हैं, अतएव उनके निर्माण को पाप तथा अवैध घोषित कर चुके हैं।[१]

अब यह वर्णन चाहे पुष्पक विमान एवं अधुनिक विमानों के सन्दर्भ में हो या यान्त्रिकी के अन्य क्षेत्रों में। इसी सन्दर्भ में। उन्होंने मानव वायु विजय की प्राचीनता भी प्रातिपादित की है।

मानव संस्कृति एवं सभ्यता ने कितने उत्थान-पतन देखे या मानव पतन से लगातार उत्थान की ओर कितन बढ़ा है, यह कह सकना कठिन है, पर जिन साधनों से किसी देश का प्राचीन इतिहास[२] लिखा जाता है उनमें से साहित्य भी एक है। साहित्य सृजित काव्य लोक मुख में अधिक जीवत रहता है। साहित्यकार अपनी साहित्य सर्जना में समग्र मानवीय अनुभवों यह अनुभव चाहे वैज्ञानिक उपलब्धियों को व्यक्त करते हों, चाहे समाजिक, आर्थिक राजनैतिक या धार्मिक एवं अन्य अनुभवों को, व्यक्त करता है। प्रायः वैज्ञानिक साहित्यकार नहीं होते, और और साहित्यकार भी वैज्ञानिक नहीं होते, किन्तु वैज्ञानिक उपलब्धियों से पूर्णतः परिचित हो सकते हैं, यह मानना ही पड़ता है।

५. १. ११. **आधुनिक साहित्य में वैज्ञानिक प्रगति का चित्रण**—३० अगस्त, १९०३ ई० में जन्मे लोकप्रिय साहित्यकार भगवती चरण वर्मा ने सागर पर जहाज और अम्बर पर वायुयान उड़ते देखकर ही इन वैज्ञानिक उपब्धियों का चित्रण अपनी

---

१. वही, मार्क्सवाद और रामराज्य, पृ० ४३७।

२. हर बीती बात ज्ञान, अनुमान एवं कल्पना का सहारा ले इतिहास बन हमें प्रगति करने में सहायक होती है और हमारी त्रुटियों को भी इंगित करती चलती है।

भैंसागाड़ी रचना में किया है, जो १९३८ ई० में लिखी गई थी ।[1]

चरमर चरमर चूँ चरर-मरर
जा रही चली भैंसा गाड़ी ।
गति के पागल पन से प्रेरित
चलती रहती संसृति महान ।
सागर पर चलते हैं जहाज,
अम्बर पर चलते वायुयान ।।
भूतल के कोने कोने में
रेलों-ट्रामों का जाल बिछा
हैं दौड़ रहीं मोटरे-बसें
लेकर मानव का वृहत ज्ञान ।

× × ×

२१ जुलाई १९६९ को चन्द्रमा के धरातल पर उतरने वाले अमरीकी अंतरिक्ष यात्रियों की सफलता पर स्व० कविवर सुमित्रानन्दन पन्त की रचना भी इस सन्दर्भ में अवलोकनीय है ।[2]

चन्द्र लोक में प्रथम बार, मानव ने किया पदार्पण
छिन्न हुए लो, देशकाल के, दुर्जय बाधा बन्धन
दिग्विजयी मनु-सुत, निश्चय ही यह महत् ऐतिहासिक क्षण
भू विरोध हों शान्त, निकट आएँ सब देशों के जन ।

× × ×

(चन्द्र लोक में प्रथम बार)

इसी प्रकार की जोगेन्द्र सक्सेना[3] की 'शरीर के अंग बदलवा लो' रचना भी आवलोकनीय है–

---

१. आज में लोकप्रिय हिन्दी कवि भगवती चरण वर्मा, अमृत लाल नगर, १९६६ पृ० ९३ से ९८ ।

२. काव्य संकलन, उ० प्र० राज्य सरकार के प्राधिकार से प्रकाशित, १९७५ पृ० १३५–३६ (ऋता से)

३. विज्ञान प्रगति, नई दिल्ली, नबम्बर, वर्ष १९, अंक ११ पूर्णांक २१८, पृ० ४०८।

अपने अंगों की
मरम्मत करवा लो।
टूटे फूटे अंगों को
जुड़वा लो, संवरवा लो,
जी हाँ।
विज्ञान का जमाना है यह,
चमत्कार का जमाना है यह।
मानव बहुत आगे बढ़ आया है
चाँद की भी सैर वह कर आया है।
शुक्र, मंगल पर पहुंचने की
तैयारी है।
वहाँ जाकर उपनिवेश
बनाने की ठानी है।

× × ×

रचनाकार, विगत दशकों में अभूतपूर्व प्रगति करने वाली चिकित्सा विज्ञान की एलोप्लास्टिक शाखा के बारे में आगे लिखता है–

वह शाखा है ऐसी
जो हमारे
दिल, पेफड़े, धमनियाँ
गुर्दे, नेत्र, टाँग जैसे
प्राकृतिक अंगों की
मरम्मत करने में,
उनको बदलने में
करती हैं उपयोग
कृत्रिम सामग्री
जैसे–
नाइलॉन, डेकरॉन
प्लेक्सीग्लास, आदि का

× × ×

अब डॉ० हरगोविन्द खुराँना की खोज हो या परख नली शिशु की यदि कवि अपनी कविता में इनकी चर्चा करता है, तो वह वैज्ञानिक उपलब्धियों को ही उद्घाटित करता है। इसका विस्तृत विश्लेषण तो वैज्ञानिक का कार्य है, साहित्यकार का नहीं।

वैज्ञानिक उपलब्धियों की चर्चा या उनकी कल्पना करने वाले रचनाकार को हम वैज्ञानिक नहीं कह सकते हैं। यदि कोई कवि अपनी कल्पना, परम्परा से प्राप्त या साक्षात् अनुभवों अथवा दूसरों के अनुभवों से प्राप्त वैज्ञानिक उपलब्धियों को अपनी कविता में सुरक्षित करे, तो यह भी उसका महान साहित्यिक देय एवं योग है।

अब चाहे आदि कवि वाल्मीकि हों और चाहे तुलसी या अन्य कोई यदि उन्होंने हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियों को उद्घाटित और सुरक्षित किया है अथवा परिकल्पनायें प्रस्तुत करते हुए साहित्य के माध्यम से उन्हें अमर बनाया है तो नि:सन्देह वे महान हैं और प्रस्तुत मानव वायु विजय के इतिहास में उल्लेखनीय योग है।

५. १. १२. **आधुनिक विज्ञान की दृष्टि में उड़ान के प्रयास**—उड़ान-क्षेत्र में वैज्ञानिक ढंग से पहली बार रोजर बेकन, नामक अंग्रेज पादरी ने अपनी पुस्तक[1] में प्रकाश डाला। इस पुस्तक में उसने मनुष्य को ऐसी मशीन बनाने में समर्थ बताया जिसकी सहायता से वह भविष्य में पक्षियों की अपेक्षा अधिक सुगमता से सफल उड़ान कर सकेगा।[2]

सन् १६८० ई० में जी०ए० बोरेली ने यह निष्कर्ष निकाला कि आदमी कृत्रिम पंखा लगाकर कभी उड़ नहीं सकता। इनकी इस स्थापना ने मनुष्य को वायु से भारी उड़ान की दिशा से हटकर 'वायु से हलकी उड़ान' की दिशा की ओर प्रवृत्त करने में बड़ा काम किया जिसे १८वीं शताब्दी के पूर्व का नहीं कहा जा सकता।[3] आधुनिक विमान और वैमानिकी ज्ञान के अनुसार १५ अक्टूबर सन् १७८३ ई० को अग्नि गुब्बारे में रोज्ये ने विश्व का प्रथम उड़ाका होने का सम्मान प्राप्त किया। ९ अगस्त १८८४ ई० को चार्ल्स रेनार्ट और ए० सी० क्रेब्स ने वायुपोत की पूर्ण नियन्त्रित सफल उड़ान का श्रेय प्राप्त किया तथा १७ दिसम्बर १९०३ ई० को विश्व में विमान की पहली नियंत्रित सफल उड़ान सम्पन्न हुई जिसका श्रेय अमेरिका के राइट बन्धुओं को है। यों जर्मनी में हैनोवर निवासी कार्ल जाथो का कहना था कि १८ अगस्त १९०३ को उसने अपने दुपंखी विमान में २४ कि० मी० उड़ान की थी तथा स्काट लैण्ड निवासी जे० वाई० वाटसन के अनुसार उनके भाई

१– सीक्रेट्स आफ आर्ट एण्ड नेचर, १२५० ई०, लैटिन भाषा, (अंग्रेजी अनुवाद १६५९ ई० में)

२– विमान और वैमानिकी, चमनलाल गुप्त, प्रकाशक–सूचना विभाग उ० प्र० प्रथम संस्करण १९५९, पृ०–२ से ४।

३– वही, वायुयान, पृ० ४८–४९।

प्रेस्टन वाटसन ने १९०२ ई० में एक देशी सेन्तूज दूमाँ इञ्जन युक्त दुपंखी विमान से सफल उड़ान की थी।

दिसम्बर सन् १९१८ में पहली बार सरकारी तौर पर पेरिस में होने वाली शान्ति कान्फ्रेंस के सदस्यों को ले जाने के लिए हवाई यात्रा या प्रबन्ध किया गया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १७८३ के पूर्व गुब्बारे, १८८४ ई० के पूर्व वायुपोत, एवं सन् १९०३ के पूर्व विमान द्वारा किसी भी रूप में व्यक्तिगत उड़ाने भी सम्भव नहीं थीं। सन् १९१८ के पूर्व नागरिक विमान यात्रा की सामूहिक सुरक्षित यात्रा का कोई सरकारी साक्ष्य भी नहीं है।[1]

इस प्रकार विमान एवं वैमानिकी तथा मानव वायु बिजय का एक कुतहल पूर्ण अध्याय मानव इतिहास का स्वर्णाक्षरी खण्ड है जिसके निर्माण में विज्ञान और साहित्य दोनों का सामान योग रहा है।

यदि हम प्राचीन भारत के अपने साहित्य में उपलब्ध विमान एवं वैमानिकी सम्बन्धी ज्ञान का विहंगावलोकन करें, तो पता चलता है कि वेदों से लेकर, रामायण महाभारत, भागवत, पुराणों, अंशबोधिनी, अध्यात्म रामायण, कथा सरित्सागर, बृहत्कथा, अगस्त्य संहिता, समरांगण सूत्रधार आदि अनेक ग्रन्थों में यह ज्ञान सुरक्षित है, जिसे इसी परम्परा में आगे सुरक्षित रखने का कार्य तुलसी ने अपने अमर ग्रन्थ 'रामचरित मानस' में किया है।

नि:संदेह तुलसी के बारुद युगीन समय में आधुनिक विज्ञान को विमान और वैमानिकी कला का ज्ञान ही नहीं था। वह तो केवल कल्पना लोक का लुभावना नभ विचरण था। ऐसे समय में तुलसी ने अपनी प्राचीन साहित्यिक परम्परा से प्राप्त विमानों[2] के ज्ञान के योगदान को स्वीकारते हुए, एवं सर्वसाधारण के लिए

१– विस्तृत विवरण हेतु परिशिष्ट एक देखें।

२– नानापुराण निगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषा निबन्धमतिमंजुलमातनोति ।। १/श्लोक ७

अर्थात जिस रामायण में अनेक पुराण, वेद और शास्त्रों का सम्मत कहा गया है और कुछ अन्यत्र से भी कहा गया है, उस रामायण को तुलसी दास अपने अन्त:करण के सुख के लिए अत्यन्त सुन्दर रघुनाथ गाथा को विस्तार से भाषा निबन्ध करते हैं। काव्य रूप में कहते है।

विशेष अध्ययन हेतु देखिए—मानस पीयूष, खण्ड १, बालकाण्ड, पृ० ३७–४६ तक, १/श्लोक ७ की व्याख्यायें।

सुलभ बनाते हुए, उपजीवी काव्य मानस में इसका प्रतिपादन किया ।

५. २. ०. **मानस में विमान एवं वैमानिकी**–इस प्रकार प्राचीन भारतीय विमान और वैमानिकी कला के इस ज्ञान को सुरक्षित रखने वाली अब तक की हिन्दी रचनाओं में श्रेष्ठ रचना 'रामचरित मानस' है। जिसमें व्यक्तिगत एवं सामूहिक उड़ानों का विस्तार से विवरण विद्यमान है । इस विवरण का विश्लेषणात्मक अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

५. २. १. **मानस में विमान और उसके लिए प्रयुक्त अन्य शब्द**–मानस में विमान शब्द का स्पष्ट रूप से प्रयोग चौबीस बार[१] किया गया है । बिमान=१५, बिमाना=५, बिमानु=३, बिमानन्हि=१

पुस्पक विमान के लिए पुष्पक शब्द का प्रयोग पाँच[२] बार किया गया है ।

यद्यपि विमान शब्द जहाँ तीन बार 'बिमानु' के रूप में प्रयुक्त हुआ है, वहाँ दो बार विमान या वायुयान के अर्थ को द्योतित करता है। एक बार मृत बृद्ध मनुष्य की अर्थी (रथी) जो सज-धजकर निकाली जाती है, के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । राजा दशरथ की दाह क्रिया करने के लिए, गुरु वशिष्ठ भरत को आज्ञा देते हैं । राजा के शव को वेदोक्त विधि से स्नान कराया जाता है। शव यात्रा के लिए परम विचित्र विमानु[३] बनाया जाता है तथा सरयू के तट पर उनका दाह संस्कार किया जाता है ।

इसी प्रकार मानस में पाँच बार प्रयुक्त बिमाना शब्द एक बार 'सतखण्डे

१– देखिए–(क) मानस शब्द सागर, संकलनकार बद्रीदास अग्रवाल, १ जनवरी १९५५ ।

(ख) तुलसी रामायण शब्द सूची, डॉ० सूर्यकान्त, प्रथम संस्करण ।

बिमान=१५ मानस १।९१, ३।२०ख, ६।१०९क, ६।११४(क), ६।११६।२, ६।११६।३, ६।११८।१, ६।११८।१, ६।११८।२, ६।११९।१, ६।१२०।३, ७।३ख, ७।४ (क), ७।४ (क), ७।११ (ग) ।

बिमाना=५, मानस १।६०।२, १।१९०।३, १।२४५।४, २।२१३।२, ६।८०।१ ।

बिमानु=३, मानस २।१६९।१, ६।११८।३, ६।११९।२ ।

बिमानन्हि=१, मानस १।३१३।१ ।

२– वही, मानस शब्द सागर एवं तुलसी रामायण शब्द सूची ।

पुष्पक–५ मानस १।१७८।४, ६।११६।२ ७।श्लोक १, ७।४ख, ७।६७।२ ।

३– देखिए–नृपतनु बेद बिदित अन्हवावा ।

परम बिचित्र बिमानु बनावा ॥ २।१६९।१

महलों' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।[1]

यदि हम मानस में तुलसी द्वारा प्रयुक्त विमान के पर्यायवाची शब्दों का विश्लेषण करें तो पता चलता है कि मानस में सवारी के रूप में 'जान' शब्द का तेरह बार प्रयोग इस प्रकार हुआ है, रथ, पालकी एवं अर्थी के लिए एक-एक बार,[2] सवारी के लिए चार बार,[3] तथा छः बार[4] विमान के लिए ।

वास्तव में उपर्युक्त प्रयोगों में तुलसी का 'जान' शब्द, संस्कृत के पुल्लिग शब्द 'यान' का ही तद्भव रूप है जिसका अर्थ सवारी या वाहन[5] आदि होता है। तुलसी ने इसे इसी अर्थ में प्रयुक्त भी किया है । अब चाहे वह सवारी रथ, पालकी, अर्थी, विमान या जलजान अथवा जलयान[6] ही क्यों न हो ।

इसके अतिरिक्त एक बार जान[7] शब्द 'जाने देने के लिए' तथा लगभग ६० बार[8] 'जानने के' अर्थ में प्रयोग हुआ है ।

इसी प्रकार रथ=६६, रथन्ह=१ रथहि=१, रथारुढ़=१, रथांग=१,

१– देखिए–अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना ।
जेहि बिलोकि बिलखाहि बिमाना ॥ २।२१३।२

२– मानस–२।८५, २।२२८, ६।५७ ।

३– वही, १।२९८।२, १।२९९।३, १।३५०।२, २।२७१।२।

४– वही, १।६०।१, १।१७८।४, ३।२२।४, ३।२८।१२, ६।१२०।४, ७।२ख ।

५– वृहत् हिन्दी कोश, सम्पादक कालिका प्रसाद, संवत २०३०, पृ० ९२९ ।

६– मानस–२।२८क, २७६।३, ५।१३।१, ५।६० ।

७– मानस–तब तब बदन पैठिहउँ आई ।
सत्य कहउँ मोहि जान दे माई ॥ ५।१।३

८– मानस–१ (१८।२-२-४, २४।१, २७।५, ४८क, ५०।२, ५८, ८९।१-२, ९६।२, १०२छ, १२१।२, १२२, १४८।३, १५९।३, १६७।३, १७९।४, १७१।२, १८४।१, १९५।३, १९८।२, २००, २३०।२, २४३।४, २७५।१, २८१।१, ३१६ छ, ३२० छ, ३३६, ३४०।४, ३५५।२)
२ (२२।४, ३८, ४२, ४८।४, ५३।४, ५४।३, ७८।२, १२६।३, १८६, २५३।३, २५७।४, २८१।२)
३ (१५, २८।७)
५ (१४।३, ४७।१)
६ (१३ (क), २४।१-२, ३५।५, ८२ छ)
७ (३।छ–२, १२क, ५९।३, ६२क, ७३ख, ८६।२, ९६।४)

रथी=२, रथु=११ बार प्रयुक्त हैं,[1] किन्तु तीन स्थलों को छोड़कर शेष सभी स्थलों पर 'रथ' शब्द सामान्य रथ (पृथ्वी पर चलने वाला) के अर्थ को ही प्रकट करता है। निम्न पंक्तियों में प्रयुक्त रथ शब्द का अर्थ आकाश पर चलने वाला रथ है।

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गमन पथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ ॥ ३।२८

मेघनाद माया मय रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास ॥ ६।७२

सुरपति निज रथ तुरत पठावा।
हरष सहित मातलि लै आवा ॥ ६।८८।१

उपर्युक्त विश्लेषणात्मक विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तुलसी ने मानस में विमान के पर्याय के रूप में 'जान' और 'रथ' शब्द का प्रयोग किया है जो क्रमशः छः और तीन बार आया है और स्वयं विमान शब्द भी अपने आकार भेद के कारण अपने विमान के अर्थ के साथ-साथ एक बार अर्थी और एक बार सतखण्डे महलों के अर्थ को भी प्रकट करता है। इस प्रकार मानस में २२ बार बिमान, ६ बार जान, ३ बार रथ कुल मिलाकर बिमान शब्द ३१ बार प्रकट या प्रच्छन्न रूप में प्रयुक्त हुआ है।

जान शब्द का यात्री विमान के लिए प्रयोग तो उपयुक्त है ही। इस अर्थ में रथ शब्द का प्रयोग इस समय अप्रचलित-सा लगता है, क्योंकि यह शब्द पृथ्वी पर चलने वाले रथ के लिए रूढ़ सा हो गया है किन्तु तुलसी के समय में इस शब्द का प्रयोग बिमान के लिए होता था। वेद[2], रामायण[3] एवं महाभारत[4] आदि ग्रन्थों में इस अर्थ का प्रचलन है तथा गो० तुलसीदास जी द्वारा इस अर्थ में प्रयोग हमारे प्राचीन वैमानिकी ज्ञान को सुरक्षित रखने का उल्लेखनीय प्रयास है।

१– देखिए, वही मानस शब्द सागर।

२– देखिए, शोध प्रबन्ध ५. १. १

३– वही, वा० रामा०, प्रथम भाग, अरण्यकाण्ड, अध्याय ३१, पृ० ५६३।

स रथो राक्षसेन्द्रस्य नक्षत्रपथगो महान्।
चञ्चूर्यमाणः शुशुभे जलदे चन्द्रमा इव ॥ ३५

तथा

कामगं रथमास्थाय शुशुभे राक्षसाधिपः।
विद्युन्मण्डलवान् मेघः सबलाक इवाम्बरे ॥ १०

वही वा० रा० अध्याय ३५, पृ० ५७१।

४– वही, महाभारत, वर्ष १, संख्या एवं पूर्ण संख्या ८, वन पर्व, अध्याय १६५, पृ० १४१२।

५. २. २. **विज्ञान शब्द का अर्थ**–कोशों[1] विमान शब्द के अनेक अर्थ इस प्रकार दिए हैं । १–आकाश मार्ग से गमन करने वाला रथ जो देवताओं आदि के पास होता है, उड़न खटोला (वायुयान या देवयान) २– मरे हुए बृद्ध मनुष्य की अर्थी जो सजधज के साथ निकाली जाती है। ३–रथ, गाड़ी ४–अश्व घोड़ा, ५–सात खण्ड का मकान ६–असम्मान, अनादर ७–परिणाम ८–प्राचीन वास्तु विद्या के अनुसार वह देव मंदिर जो ऊपर की ओर गाव दुम या पतला होता हुआ चला जाय (देव मंदिर), राज प्रासाद, राम लीला में काम आने वाला एक तरह का यान, एक तरह की मीनार कुंज, पोत, फैलाव आदि ।

किन्तु यदि अर्थ प्रक्रिया पर विचार करें तो पता चलता है कि किसी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, ध्वनि, मुहावरा, लोकोक्ति आदि) को किसी भी इन्द्रिय (कान, आँख, नाक, जीभ, त्वचा) से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है, वही अर्थ है ।[2] इस अर्थ की प्रतीति का मूलाधार आत्म अनुभव हो या पर अनुभव ।

यदि आत्म अनुभव के आधार पर डॉ० तिवारी की परिभाषा के अनुसार विचार करें तो आधुनिक युग की विमान की परिभाषा 'वह वायु से भारी मशीनें जो वायु में उड़ती हैं, विमान कहलाती हैं',[3] से ध्वनित अर्थ और तुलसी को परम्परागत एवं विरासत में प्राप्त विमान शब्द के अर्थ, आकाश गामी रथ के जिसका मूलाधार पर अनुभव है, में, कोई अन्तर नहीं है और न इस शब्द के अर्थ में उत्कर्ष या अपकर्ष हुआ है । यदि अर्थादेश के लक्षण माने जाँय तो वह वायुयान के समीप अधिक जा रहा है ।

ततः कदचिद्धरिसम्प्रयुक्तं
महेन्द्रवाहं सहसोपयातम् ।
विद्युत्प्रभं प्रेक्ष्य महारथानां
हर्षोर्ज्जुनं चिन्तयतां बभूव ॥ १

स दीप्यमानः सहसान्तरिक्षं
प्रकाशयन् मतलि संग्रहीतः ।
बभौ महोल्केव घनान्तरस्था
शिखेवचाग्रेर्ज्वलिता विधूमा ॥ २

१. देखिए–(क) हिन्दी शब्द सागर, श्री श्यामसुन्दर दास, प्रथम संस्करण
(ख) वही, वृहत् हिन्दी कोश ।

२. भाषा विज्ञान, डॉ० भोलानाथ तिवारी, प्रथम संस्करण प्रकरण, अर्थ विज्ञान ।

३. वही, वि० और वै० चौथा अध्याय, विमान युग, पृ० ३६ ।

इसी संदर्भ में डॉ० भोलानाथ तिवारी ने अपनी एक अन्य पुस्तक[1] में, स्पष्ट रूप से 'विमान' शब्द को संस्कृत का शब्द बताते हुए, उसका अर्थ वायुयान या हवाई जहाज स्वीकार किया है।

इस तरह से आधुनिक युग में आत्म-अनुभव द्वारा प्राप्त विमान का अर्थ और पर अनुभव द्वारा प्राप्त तुलसी के विमान का अर्थ, वायुयान ही निकलता है, जिनका प्रयोग आकाश मार्ग से यात्राओं के लिए किया जाता है।

५. २. ३. **मानस में पुष्पक विमान**—मानस के पूर्ववर्ती ग्रन्थों[2] में जिस प्रकार विमानों का नामकरण किया गया है उसी प्रकार आधुनिक युग में विमानों के नाम हैं डकोटा, वाइकिंग, स्काई मास्टर, हीरोन, सिगल बीच अवरो, बोइंग ७०७, ७४७, जेट, ब्रिटेन के कामेट और ब्रिटेनियाँ, यूगोस्लाविया का टूपोलेव इंगलैण्ड और फान्स के द्वारा मिलकर बनाया गया कैंदकाई जो आवाज से २.४ गुना तेज चलता है तथा ८०० यात्री ले जाता है, रूसका फ्लाइंग क्रेन जो जल जहाजों को उठा सकता है तथा अमेरिका का हरक्युलिस जो टैंक ले जा सकता है।

कारगो, बम्बर, फाइटर, ट्रुपकैरियर, हैलीकाप्टर एवं ग्लाइडर आदि विमानों के विभिन्न नाम उनके कार्यों के आधार पर रक्खे गये हैं।

भारत के यच० टी०—२ ट्रेनर, हालहुल २६, पुष्पक हाल्हहोप २७, कृषक, हाल एच० एफ० २४, मारुत एवं हाल एच० जे० टी १६, किरन तथा जर्मनी के एच० आई० एफ० ३२०, हंस आदि।[3]

मानस में विमानों का उल्लेख बिना नामकरण के है। जिस विमान का बिशेष नामोल्लेख है, वह है 'पुष्पक'। पुष्पकाकार होने से कारण ही इसका नाम पुष्पक पड़ा था।[4] इस पुष्पक का उल्लेख तुलसी ने मानस में निम्नलिखित स्थलों पर किया है।

रावण को पुष्पक विमान कहाँ से और कैसे प्राप्त हुआ इसकी चर्चा करते हुए तुलसी ने मानस में एक स्थल पर कहा है कि विश्रवा मुनि के पुत्र, इन्द्र की नवों निधियों के भण्डारी राजा कुबेर पर एक बार रावण ने आक्रमण किया और और युद्धोपरान्त जय स्मारक स्वरूप पुष्पक विमान छीन लिया—

एक बार कुबेर पर धावा।
पुष्पक जान जीति लै आवा ॥ १।१७८।४

---

१. तुलसी शब्द सागर, डॉ० भोलनाथ तिवारी प्रथम सं०, पृ० ४२७।

२. देखिए, शोध प्रबन्ध, ५.१.२, ५.१.८, एवं ५.१.९,

३. विशेष अध्ययन हेतु देखिए, दि एयर क्राफ्ट आफ दि वर्ल्ड, १९६५, पृ० ७६।

४. वही, मानस पीयूष, खण्ड—२, पृ० ७८२ दोहा १७९ का अर्थ।

राम रावण युद्ध समाप्ति पर विभीषण द्वारा यही पुष्पक विमान, राम को शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या पहुँचाने के लिए राम की सेवा में प्रस्तुत किया जाता है ।

लै पुष्पक प्रभु आगे राखा ।
हँसि करि कृपासिंधु तब भाषा ।। ७।११६।२

मानस के सप्तम सोपान के प्रथम श्लोक में पुष्पक विमान पर अरूढ़ श्री रामचन्द्र जी को नमस्कार करते हुए तुलसी विमान का उल्लेख करते हैं–

केकीकण्ठाभनीलं सुरबरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
पाणौनाराचचापं कपिनिकरयुत बन्धुना सेब्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारुढ़रामम् ।।

गरुड़ जी के आग्रह पर भुशुण्डि जी रघुनाथ जी की कथा कहते हुए, एक स्थान पर इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि राम बानरों सहित पुष्पक विमान पर चढ़कर अवधपुरी को प्रस्थान करते हैं । देखिए–

पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता ।
अवध चले प्रभु कृपा निकेता । ७।६७।२

राम लंका से अयोध्या तक पुष्पक विमान से यात्रा करते हैं । अयोध्या आ जाने पर वह उसे उत्तर दिशा के अधिष्ठाता धन के स्वामी कुबेर के पास भेज देते हैं ।

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु ।
पेरित राम चलेउ सो हरष बिरहु अति ताहु ।। ७।४ ख

५. २. ४. **मानस में पुष्पक के अलावा अन्य विमान**–मानस में केवल पुष्पक विमान का ही वर्णन हो ऐसा नहीं है, इसमें बिना नामकरण किये हुए अनेक विमानो का उल्लेख किया गया है जो देव जाति के पास विद्यमान थे । इनका प्रयोग वे आकाश मार्ग से यात्रा करने में करते थे ।

ब्रह्मा के दक्ष को सब प्रकार से योग्य देख कर प्रजापतियों का नायक बना दिया । तब इसी हर्षोल्लास में दक्ष ने एक महान यज्ञ का अनुष्ठान प्रारंभ किया जिसमें शिव को छोड़कर सभी देवताओं को आमंत्रित किया । ये देव स्त्रियों सहित यज्ञ में सम्मिलित होने हेतु अपने-अपने विमानों द्वारा आकाश मार्ग से प्रस्थान करते हैं–

किंनर नाग सिद्ध गन्धर्बा ।
बधुन्ह समेत चले सुरसर्बा ।।

विष्नु बिरंचि महेसु बिहाई ।
चले सकल सुर जान बनाई ॥ १।६०।१

इन्हीं देवताओं के अनेक प्रकार के सुन्दर विमानों को आकाश मार्ग से जाते हुए सती ने देखा—

सतीं बिलोके ब्योम बिमाना ।
जात चले सुंदर बिधि नाना ॥ १।६०।२

सती कैलाश[1] पर्वत से विमानों का अवलोकन कर रही हैं। इसी पर सिद्ध, तपस्वी, योगी, देवता, किन्नर और मुनियों के समूह भी रहते हैं।[2] इन मुनियों के समूह का भी ध्यान, आकाश में उड़ते हुए विमानों की ध्वनि एवं उन पर सवार सुर सुन्दरियों के कलगान[3] से छूट जाता है[4] और वे भी आकाश में जाते हुए विमानों को देखने लगते हैं। इस तरह देवता, उत्तराखण्ड और कैलाश पर बने अनेक मुनियों के आश्रमों के ऊपर से उड़ते हुए विमानों द्वारा जा रहे हैं।[5] इसी आकाश मार्ग से देवता दक्ष के यज्ञ में पहुँच जाते हैं।

यही नहीं शिव के विवाह की लग्न पत्रिका जैसे ही ब्रह्मा मुनियों, और देवताओं को सुनाते हैं वैसे ही सब देवता अपने भाँति भाँति के बाहन और विमान सजाने लगते हैं—

लगे सवाँरन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान ।
होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपछरा गान । १।९१

यहाँ भी देवताओं के विमानों का उल्लेख करते हुए कुबेर के पुष्पक, ब्रह्मा का

---

१. (क) सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं ।
मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं ॥ १।५८
(ख) परम रम्य गिरिबरु कैलासू ।
सदा जहाँ सिव उमा निवासू । १।१०४।४
२. सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृंद ।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद ॥ १।१०५
३. देखिए, वही मानस पीयूष, खण्ड २, पृ० १४५ पर नोट श्री सीता रामीय बाबा हरिहर प्रसाद प्रसाद जी कृत रामायण परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश सं० १९५५ में कलगान वही कहा गया है जिससे ध्यान छूटे (देखें कलगान सुनिमुनि ध्यान-त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं । १।३२१।छं०)
४. सुर सुंदरी करहिं कलगाना ।
सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना ॥ १।६०।२
५. वही, मानस पीयूष, खण्ड २, पृ० १४५, नोट—२

हंस या हंसाकार एवं विष्णु के गरुड़ विमानों आदि की ओर संकेत किया गया है।

इसके अतिरिक्त तुलसी के देवता, राम जन्म के समय, सीता स्वयंबर और राम के विवाह में राम के दर्शनों के लिए अपने विमानों पर ही सवार होकर आते हैं।

सो अवसर बिरंचि जब जाना।
चले सकल सुर साजि बिमाना ।। १।९०।३
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना।
बरषहिं सुमन करहिं कलगाना ।। १।२४५।४
शिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा।
चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा ।। १।३१३।१

मानस में अन्य विमानों की उपस्थिति को स्वीकार करते हुए प्रो० भगवान दीन 'दीन' ने चौपाई १।३१३।१ की व्याख्या में कहा है कि 'यहाँ बरूथा और 'जूथा' एक ही अर्थ के दो शब्द आये हैं परन्तु यहां पुनरुक्ति नहीं है क्योंकि 'बिबुध बरूथा' से देवताओं का समूह कहा गया है। इस समूह में अनेक यूथ हैं। जब विमानों पर चढ़े तो अनेक यूथ हो गये, एक-एक यूथ एक-एक विमान पर हैं, जितने विमान हैं उतने ही 'यूथ' हैं। यहाँ 'जूथ' विमानों के लिए है और बरूथ देवताओं के लिए। एक किस्म के जितने विमान हैं वे एक यूथ में चले। विमान बहुत तरह के होते हैं, कोई हंस कोई मोरपंखी, कोई पुष्पकाकार इत्यादि।[1]

पंचवटी में जब राम खर-दूषण आदि अनेक राक्षसों का बध कर डालते हैं, तब देवता हर्षित होकर फूल बरसाते हैं और आकाश में नगाड़े बजाते हैं। तदुपरान्त वे सब राम की स्तुति कर के अपने विमानों पर चढ़ कर अपने-अपने स्थानों को लौट जाते हैं।

हरषित बरषहिं सुमन सर बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान ।। ३।२०ख

लंका काण्ड में, मेघनाद का मरण सुनकर तथा आगे अंगद और हनुमान से रावण युद्ध का देखने और अन्त में राम-रावण युद्धोपरान्त राम विजय पर हर्षोल्लास में पुष्प वर्षा करने हेतु देवता विमनों द्वारा ही आते हैं।

तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा।
चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा ।। ६।७६।१
सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना।
देखत रन नभ चढ़े बिमाना ।। ६।८०।१

---

१. मानष पीयूष खण्ड ३, पृ० ७२२ पर टिप्पणी २–(क)।

सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान ।
देखि सुअवसरु प्रभुपहिं आयउ संभु सुजान ॥६/११४ क

यही नहीं सीता की अग्नि परीक्षा के याद जब वह राम के बाम भाग में बिराजित हुईं तो उस समय भी देवता हर्षित होकर फूल बरसाते हैं । आकाश में डंके बजाते हैं । किन्नर गाते हैं और विमानों पर चढ़ी अप्सराएँ नाचने लगती हैं ।

बरषहिं सुमन, हरषि सुर बाजहिं गगन निसान ।
गावहिं किनर सुर बधू नाचहिं चढ़ी बिमान ॥६।१०९ क

लंका से अयोध्या लौटने पर सीता राम के वामाङ्ग में बैठी हैं । उन्हें देखकर सब माताएँ अपना जीवन सफल समझ कर हर्षित होती हैं । काक भुशुण्डि, गरुड़ से कहते है कि इस समय ब्रह्मा, शिव और मुनियों के समूह और सब देवता विमानों पर चढ़कर आनन्दकन्द राम के दर्शन करने के लिए आये–

सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा शिव मुनि बृंद
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुख कंद ।७/११ (ग)

उपर्युक्त अर्द्धालियाँ और दोहे इस बात के प्रमाण हैं कि मानस में पुष्पक विमान के अतिरिक्त देवताओं, मुनियों, सिद्धों और किन्नरों आदि के पास अनेकों विमान थे । वे इन विमानों पर बैठकर अनेक यात्रायें भी करते थे जो आकाश मार्ग से ही पूरी की जाती थीं ।

देवता इन विमानों का प्रयोग आकाश से राम जन्म,[१] युद्धों को देखने,[२] एवं

१– विमानों की अधिक संख्या के कारण ही राम जन्म के सुअवसर पर निर्मल आकाश देवताओं के समूहों से भर जाता है और गन्धर्वो के दल राम के गुणों का गान करने लगते हैं ।

गगन बिमल संकुल सुर जूथा ।
गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा ॥१।९०।३

२– इसी प्रकार रावण वध की तैयारी, लक्ष्मण मेघनाद युद्ध, कुम्भकरण बध तथा सीना की अग्नि परीक्षा को भी देवता आकाश से देखते हैं–

कौतुक देखि सुमन बहु बरषी ।
नभ ते भवन चले सुर हरषी ॥५।३३।४
देखहिं कौतुक नभ सुर बृंदा ।
कबहुँक बिसमय कबहुँ अनन्दा ॥६।५।४
गगनोपरि हरि गुन गन गाए ।
रुचिर बीर रस प्रभु मन भाए ।६।७०।६

पुष्प वर्षा और मंगल वाद्य बजाने में करते हैं । अब यह समय चाहे शिव की लग्न पत्रिका के बाचने का हो या शिव-पार्बती के पाणि ग्रहण का अथवा अन्य कोई हर्षोल्लास का अवसर हो ।

सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे ।
मंगल कलस दसहुँ दिस साजे ॥१।९०।४
बार्जाहि बाजन बिबिध बिधाना ।
सुमन बृष्टि नभ भै बिधि नाना ॥१।१००।३

क्योंकि विमान तो उनके पास विद्यमान ही है ।[1]

मानस में देवताओं द्वारा अनेकों स्थलों[2] पर आकाश से की गयी सुमन वृष्टि एवं मंगल वाद्य वादन जहाँ मन को उबाने वाला हैं, वहां विमानों की उपस्थिति को सिद्ध करने के लिए, अपेक्षित भी है और दूषण न होकर भूषण हैं, फाटक नहीं, हाटक है ।

यही नहीं मेघनाद के मायामय रथ[3] (युद्धक विमान) से ही आकाश में चढ़ कर आग, विष्ठा, पीब, खून, बाल और हड्डियों आदि की वर्षा की जाती है । जैसी कि आज के युद्धक विमानों की सहायता से बम वर्षा आदि की जाती है ।

नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा ।
महि ते प्रगटहोहिंजलधारा ।५।६।१।१
विष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा ॥
बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा ॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा ।
सूझ न आपन हाथ पसारा ॥६।५१।२

५. २. ५. **मानस के हनुमान की आकाश मार्गी यात्रा**-मानस में देव और राक्षस जातियों के विमानों का विवरण विद्यमान है । हम उनकी वैमानिक यात्राओं

श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली ।
जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली ।
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे ।
प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे ॥६।१०८।छ,

१- मानस १।९१
२- १(९०/४, १००/३, १९०/४, २४७/३, २६१/२, २६४/१-२, २८५, ३०१/३, ३०५/१, ३०८/२, ३१३/१, ३१६ छ, ३१७/छ, ३१८/३-४, ३२३/४, ३२२/छ१ ३२४, ३२४/४छ, ३२५/छ ४, ३२६ ।छ ४, ३३९ ३४७, ३४७/२)२(१९३/१ २०५, २३०/१, २४२/१)३/२० ख, ५/३३/४, ६/७०/५, ६/१०७/७, ६/१०८ छ, ७/८ ख ।
३- मानस ६/७२

पर संदेह नहीं करते, उसी प्रकार हनुमान द्वारा की गयी व्यक्तिगत आकाश मार्गीय यात्राओंको स्वीकार करते हुए उनके पास विमान की अनुपस्थिति को स्वीकार नहीं किया जा सकता, नहीं तो बिना देवया राक्षस/जाति के सहयोग एवं समुद्र में पुल निर्माण के पूर्व वे लंका कैसे जाते ?[1] तथा द्रोणागिरि से रातो रात संजीवनी कैसे ले आते ।[2] तुलसी ने रामदल के पास त्रिमान की उपस्थिति का संकेत करते हुए लिखा है–

सेतु बंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं ।६/४

जिससे हनुमान की यात्राओं को व्यक्तिगत वैमानिक यात्राओं के परिप्रेक्ष्य में सरलता से देखा जा सकता है ।

५. २. ६. मानस के विमानों के आकार, प्रकार एवं रंग–मानस में विमानों के आकार (लघु, दीर्घ एवं दीर्घतम आदि) प्रकार (पुष्पाकार, हंसाकार आदि) तथा रंगों (स्वेत, हरे या अन्य रंग वाले) आदि का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है, पर

१५५– सिंधु तीर एक भूधर सुंदर ।
कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर ।।
बार बार रघुबीर सँभारी ।
तरकेउ पवन तनय बलभारी । ५/०/३
जेहि गिरि चरन देइ हनुमंता ।
चलेउ सो गा पाताल तुरंता ।।
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना ।
एही भाँति चलेऊ हनुमाना ।।५/०/४

२– राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन ।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवन सुत लेन ।।६/५५
राम चरन सरसिज उर राखी ।
चला प्रभंजन सुत बल भाषी ।।६/५५/१
देखा सैल न औषध चीन्हा ।
सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ।।
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ । अवध पुरी ऊपर कपि गयऊ ।।६/५७/४
तात गहरु होइहि तोहि जाता । काम नसाइहि होत प्रभाता ।६।५९।३
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ ।
राम उठाइ अनुज उर लायउ ।। ६/६०।१
प्रभु प्रलाप सुनि कान, बिकल भए बानर निकर
आइ गयउ हनुमान, जिमि करुना महँ बीर रस ।।६।६१

निम्न पंक्तियाँ उसमें वर्णित विमानों के अनेक आकार-प्रकार एवं रंगों का सहज अनुमान लगाने में सबल प्रमाणों के रूप में देखी जा सकती हैं।

आकार के लिए–

लघु विमान– मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयऊ अकास ।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास ॥६।७२

दीर्घ विमान– सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा ।
(देवयान) चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा ॥१।३१३।१

दीर्घतम विमान– अतिसय प्रीति देखि रघुराई ।
(पुष्पकयान) लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई ॥६।११८।१

प्रकार के लिए–

मेघनाद का मायामय रथ, पुष्पक विमान एवं देवताओं के विभिन्न प्रकार के विमानों का उल्लेख, विमानों के विविध प्रकार ही संकेतित करता है।

लगे सँवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान । १/९१
अस्तुति करि–करि सब चले सोभित बिबिध बिमान ॥३/२० ख

रंग के लिए–

सती बिलोके व्योम बिमाना ।
जात चले सुंदर बिधि नाना ॥१/६०/२
सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान । ६/११४ क

उपर्युक्त दोहों एवं अर्द्धालियों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मेघनाद का मायामय रथ छोटे आकार का था, क्योंकि वह एक व्यक्ति की उड़ान के लिए था देवताओं के विमान एकाधिक के लिए थे तथा पुष्पक अनेक व्यक्तियों की यात्राओं के लिए प्रयुक्त होने के कारण देवयानों से अधिक बड़ा था।

मानस पीयूषकार[1] ने एक दोहे[2] की व्याख्या करते हुए कहा है कि देवताओं के विमान दिव्य होते थे। उनमें घटने-बढ़ने, छोटे-बड़े हो जाने की शक्ति होती थी। मय दानव द्वारा बनाये गये तीनों विमानों का आकार पुरों के समान बड़ा था। ये लोहे, चाँदी और सोने के बने थे। इन विमानों का आना-जाना नहीं जाना जाता था। महाभारत के अनुसार तारक सुर के तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक तीन पुत्रों ने मय से अपने लिए विमान बनवाये थे।[3] पुष्पक विमान का आकार वाल्मीकीय रामायण में इतना विशाल चित्रित किया गया है कि समस्त वानर यूथ एवं मंत्रियों

१– मानस पीयूष, खण्ड २, पृ० ३१९

२– मानस, १।९१

३– विशेष अध्ययन के लिए देखिए–पीयूष, खण्ड २, पृ० ४३ से ४५

सहित विभीषण भी यात्रा के लिए इस पर सवार हो जाते हैं ।[१]

आधुनिक युग में भी २ से ४ सीट वाले कृषक मारुत या किरन, ट्रेनर जैसे छोटे विमान हैं, सेसिना (४ यात्रियों के लिए) जैसे मध्यवर्ती तो २६० से भी अधिक यात्रियों को ले जाने वाला होता है, लकडीह का एल–१०११–५०० विमान और इससे भी बड़े केनकार्ड जैसे विमान भी विद्यमान हैं ।

उपर्युक्त १/९१ एवं ३/२० ख में प्रयुक्त 'बिबिध बिमान' शब्द एवं मेघनाद का मायामय रथ विमानों के विविध प्रकारों को ही बतलाता है, अब चाहे वे पुष्पाकार हो या हंसाकार, गरुणाकार हो, या सर्पाकार या युद्धक विमान हों । आजकल तो अनेक प्रकार के विमान हैं । अमेरिका के युवा इंजीनियर पालमोलर ने एक तस्तरी नुमा यान तैयार किया है ।[२]

१/६०/२ तथा ६।११४ क में प्रयोग किये गये शब्द 'सुन्दर' और 'रुचिर' विमानों के सुन्दर रंगों की ओर संकेत करते हैं । भागवत में विमानों के आकार हंसों की भाँति बताते हुए उनका रंग राजहंसों के समान श्वेत कहा गया है ।[३] वाल्मीकीय रामायण में भी विमानों का रंग श्वेत ही कहा गया है[४] आधुनिक युग में यात्री विमानों के रंग श्वेत एवं सैनिकों हेतु प्रयोग होने वाले विमानों का रंग हरा देखने में आता है । यों तो विमान को किसी भी रंग का तैयार किया जा सकता है । प्रायः विमानों में दो या दो से अधिक रंगों का प्रयोग किया जाता है जैसे श्वेत-नीला, श्वेत-लाल, चितकबरे आदि ।

५. २. ७. **मानस के विमान यात्री एवं विमानों में यात्रियों की संख्या**–देव, यक्ष, राक्षस, कपि, ऋक्ष, सिद्ध, गन्धर्व मुनि, किन्नर, नाग नर आदि मानस के विमान यात्री हैं जो समय-समय पर विमानों द्वारा यात्रायें करते रहे है । महिला यात्रियों

१– वाल्मीकि रामायण, भाग २, युद्ध काण्ड, अध्याय १२२ पृ० १४२८
क्षिप्रमारोह सुग्रीदविमानं सह वानरैः ।
त्वमप्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्रविभीषण ।।२३
ततः स पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह बानरै
आरूरोह मुदायुक्तः सामात्यश्र्चविभीषणः ।।२४

२– २३ जुलाई १९७८ ई० का 'दैनिक जागरण' परिशिष्ट, पृ० १

३– श्रीमद्भागवतम्, ४।३।१२
पश्य प्रयान्तीरभवान्ययोषितोऽभ्यालंकृताः कान्तसखावरथाशः ।
यासां ब्रजद्भिः शितकण्ठमण्डितं नमोविमानैः कलहंसपाण्डुभिः ।।१

४– वा० रा०, अरण्यकाण्ड, सर्ग ३५, पृ० ५७१
पण्डुराणि विशालानि दिव्यमाल्ययुतानि च ।
तूर्यगीताभिजुष्टानि विमावनि समन्ततः ।।१९

में किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व एवं देवताओं की पत्नियों तथा सीता आदि को गिनाया जा सकता है ।[1]

देव विमानों पर यात्रियों की संख्या का स्पष्ट उल्लेख मानस में नहीं है, किन्तु विमान एवं वैमानिकी के परिप्रेक्ष्य में इसका आद्योपान्त अनुशीलन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष अवश्य निकलता है कि इन पर अनेक यात्रियों के एक साथ बैठने की व्यवस्था थी और यूथ के यूथ एक ही विमान पर बैठ जाते थे ।[2] जहाँ तक पुष्पक के यात्रियों की संख्या का सम्बन्ध है, इससे यथावसर एक या दो या अनेक व्यक्तियों ने यात्रायें की हैं । रावण, सीता हरण का उपक्रम करता हुआ अपनी मदद हेतु मारीच के पास अकेले ही जाता है–

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ ।
बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥३।२२।४

सीता के अपहरण प्रकरण में, रावण एवं सीता दो ही यात्री इससे यात्रा करते हैं–

सीतहिं जान चढ़ाइ बहोरी ।
चला उताइल त्रास न थोरी ॥३।२८।१२

इसी पुष्पक पर राम, जब अयोध्या के लिए यात्रा करते हैं उस समय इस पर अनेक लोगों को चढ़ा लेते हैं ।

अतिशय प्रीति देखि रघुराई ।
लीन्हे सकल विमान चढ़ाई ॥६।११८।१

यदि विमानों के आकार की स्थिरता के अतिरिक्त उनकी परिवतन शीलता के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय जैसा कि वाल्मीकीय रामायण में पुष्पक को परिवर्तनशील आकार वाला कहा गया है, तो इसकी तुलना अमेरिका स्थित कैलीफोर्नियाँ के परिवर्तनशील विमानों से की जा सकती है ।[3]

५. २. ८. **मानस में पुष्पक विमान की यात्रायें**–मानस में पुष्पक की चार यात्राओं का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है–

१–कुबेर के निवास स्थान (कैलाश पर्वत) से लंका तक ।
२–लंका से पंचवटी एवं पंचवटी से लंका तक ।
३–लंका से अयोध्या तक ।
४–अयोध्या से कुबेर के निवास स्थान तक ।

१– देखिए मानस–१।३१३।१, ३।२८, ७।६७।२, १।६०।१, ६।७६।१, ६।१०९ क, ६।११८।१ आदि ।

२– मानस १।३१३।१

३– डाँ० प्रकाश मित्र शास्त्री का, अ० प्र० शे० प्र०, पृ० ४७४–७५

पुष्पक की उपर्युक्त चारों यात्राओं में प्रथम और चतुर्थ यात्रा का तुलसी ने विशद् वर्णन नहीं किया है, मात्र सूचना के तौर पर एक चौपाई–

'एक बार कुबेर पर धावा ।
पुष्पक जान जीति लै आवा ॥१।१७८।४'

और मात्र एक दोहा लिखकर ही चलता कर दिया है ।

'उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहिं, तुम्ह कुबेर पहिं जाहु ।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु ॥७।४ ख'

शायद तुलसी के इष्ट राम का इन यात्राओं से प्रत्यक्ष या परोक्ष का सम्बन्ध नहीं है । इसीलिये उनका मन इन यात्राओं के विशद् वर्णन में नही लगा हैं । पुष्पक की द्वितीय यात्रा का सम्बन्ध राम की पत्नी सीता और तृतीय यात्रा का संबंध से राम से है, अस्तु उन्होंने द्वितीय का किंचित् अधिक एवं तृतीय का विशद् वर्णन मानस में प्रस्तुतकिया है ।

५. २. ८. १. **पुष्पक की द्वितीय यात्रा**–जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि यह यात्रा लंका से पंचवटी और पंचवटी से लंका तक की गयी है । इस यात्रा का प्रमुख उद्देश्य रावण द्वारा सीता का अपहरण है ।

पंचवटी में खर-दूषण का विध्वंस देखकर सूर्पणखा लंका जाकर रावण को भड़काती है ।[१] तथा अपने नाक कान कटने का बदला लेने के लिये एवं सीता के रूप सौन्दर्य का वर्णन कर अपनी रानी बनाने के लिए, सीता के अहरण के लिए रावण को प्रेरित करती है ।[२] रावण बड़े सोच-विचार के बाद अपहरण का निर्णय करता है ।[३] हरण में सहयोग लेने हेतु, वह समुद्र तट वासी मारीच के पास यान द्वारा जाता है ।[४]

रावण मारीच के सहयोग से दण्डकारण्य में सीता का अपहरण करता है और उसे रथ बैठा लेता है –

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ ।
चला गगन पथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ ॥३।२८

१– धुआँ देखि खर दूषन केरा ।
जाइ सुपनखा रावन प्रेरा ।३।२०।३

२– रूप रासि बिधि नारि सँवारी ।
रति सतकोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज काटे श्रुति नासा ।
सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा ॥३।२१।५

३– जौं नर रूप भूप सुत कोऊ ।
हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥३।२२।३

४– मानस ३।२२।४

यह रथ आकाश मार्ग से ही यहाँ आया था और आकाश मार्ग से ही वापस लंका की ओर आ रहा है। पुष्पक यान, रावण को कुबेर से मिल ही चुका था। अस्तु, इसका प्रयोग ही वह यहाँ कर रहा हैं।

आगामी संदर्भ में जटायु के पंख काट कर, रावण, विलाप करती हुई सीता को यान पर चढ़ाकर आकाश मार्ग से ले जाता है।

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी ।
चला उताइल त्रास न थोरी ॥
करति बिलाप जाति नभ सीता ।
ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता ॥३।२८।१२

सीता के विलाप और विमान की समवेत ध्वनि से आकृष्ट होकर ही ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुए कपियों ने वायु मार्ग से जाते हुये इस पुष्पक विमान को देखा था। जिससे कोई स्त्री करुण क्रन्दन कर रही थी। इस घटना की पुष्टि के माध्यम से सीता के मिलने की संभावना व्यक्त करता हुआ सुग्रीव राम से कहता हैं—

कह सुग्रीव नयन भरि बारी ।
मिलिह नाथ मिथलेश कुमारी ॥४।४।१
मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा ।
बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा ॥
गगन पंथ देखी मैं जाता ।
परबस परी बहुत बिलपाता ॥४।४।२

सीता ने इन्हीं कपियों को बैठा हुआ देखा कर, अपने जाने के मार्ग को चिह्नित करते हुये, राम नाम लेकर, कुछ वस्त्र डाल दिये थे—

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी ।
कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी ॥३।२८।१३
+ +
राम राम हा राम पुकारी ।
हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी ॥४।४।३

राम के माँगने पर सुग्रीव वह पर उनकी सेवा में प्रस्तुत करता है।

माँगा राम तुरत तेहिं दीन्हा ।
पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥४।४।३

इस प्रकार रावण सीता का अपहरण करके पुष्पक यान द्वारा लंका पहुँचता है। पुष्पक की यह द्वितीय यात्रा पूरी होती है।

एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ ।
बन अशोक महँ राखत भयऊ ॥३।२८।१३

५. २. ८. २. **पुष्पक की तृतीय महत्वपूर्ण यात्रा**–पुष्पक की यह यात्रा लंका से अयोध्या तक है। इसका प्रमुख उद्देश्य राम को पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण सहित यथा शीघ्र लंका से अयोध्या पहुँचना है।

अनेक विमानों द्वारा की गयी मानस की अनेक यात्राओं में, तुलसी का मन सब से अधिक इस यात्रा के वर्णन में रमा है। इस यात्रा में तुलसी के राम स्वयं यात्री है। अपने अभिलषित उद्देश्य की पूर्ति के बाद भरत की प्राण रक्षा[1] हेतु पुष्पक की यात्रा द्वारा शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या पहुँचना चाहते हैं।

राम बनवास और पुनरागमन की तिथियों पर अनेक विद्वानों के विचारों की समीक्षा करते हुए मानस पीयूषकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि 'रहीं अवधि की बात से चौदह वर्षों में एक दिन का बाकी रह जाना सबसे सुनिश्चित है।[2]

इसी अवधि में एक दिन रह जाने एवं भरत[3] तथा परिजनों[4] के दुर्दिनों की आशंका के कारण राम शीघ्र अयोध्या पहुँचने के लिए विभीषण से अनुरोध करते हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों में पुष्पक का उपयोग ही एक मात्र आय समझ कर एक ही दिन में राम को लंका से अयोध्या पहुँचाने के लिए विभिषण मणियों एवं वस्त्रों से भरा हुआ विमान अपने भवन से लाकर राम की सेवा में प्रस्तुत करते है।

बहुरि विभीषन भवन सिधायो।
मनि गन बसन बिमान भरायो॥
लै पुष्पक प्रभु आगे राखा।
हँसि करि कृपा सिंधु तब भाषा॥ ६/११६/२

मणियों और वस्त्रों से भरे हुए विमान को देखकर, राम अपने मित्र विभीषण

१– बीते अवधि जाउँ जौं, जियत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक सरीर॥ ६७।११६ग

२– पीयूष–खण्ड ७ पृ० ९ एवं १०

३– रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥ ७/०/१
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥ ७/०/४

४– रहा एक दिन अवधि कर, अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर, कृसतन राम बियोग॥७। प्रथम दोहा
तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन, जो रघुबीर न ऐहौं।
तौ प्रभु चरन–सरोज सपथ, जीवत परिजनहिं न पैहौं॥४
–गीता वली, अयोध्या काण्ड। ७६

से कहते हैं कि विमान पर सवार हो कर आकाश में जाओ और वस्त्रों एवं गहनों को सम्पूर्ण सेना में बरसा दो जिससे सभी सैनिक इन्हें प्राप्त कर सकें।

चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन।
गगन जाइ बरषहु पट भूषन ॥ ६/११६/३

विभीषण राम की आज्ञा मान विमान द्वारा आकाश से उक्त वस्तुओं की वर्षा करते हैं–

नभ पर जाइ विभीषन तबही।
बरषि दिए मनि अंबर सबही ॥ ६/११६/३

मणि वस्त्रों की वर्षा करने के बाद बिभीषण पृथ्वी तल पर आकर पुष्पक यान राम की सेवा में समर्पित कर देते हैं। यहीं से यह यान अपनी तृतीय यात्रा हेतु तैयार हो जाता है।

५.२.८.२.१. **पुष्पक की तृतीय यात्रा के यात्री–** आधुनिक यात्री विमानों में यात्रा करने वाले यात्रियों की संख्या निश्चित होती है। किन्तु तुलसी ने मानस में पुष्पक की तृतीय यात्रा के यात्रियों की संख्या तो निश्चित नहीं की है, पर उस पर यात्रा करने वाले यात्रियों की संख्या अधिक बताते हुए कुछ लोगों के नाम अवश्य गिनाये हैं। वे वाल्मीकि की भाँति असंख्य यात्रियों को पुष्पक पर सवार नहीं होने देते बल्कि बड़ी ही कुशलता और चतुरता से बानरों एवं ऋक्षों की सेनाओं को राम की प्रेरणा से अपने अपने घरों को भेज देते हैं–

प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि।
हरष विषाद सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाषि ॥ ६/११८क

केवल वानर राज सुग्रीव, नील, ऋक्षराज जाम्बवान, अंगद, नल और हनुमान तथा विभीषण सहित कुछ बलवान बानर सेनापति ही रह जाते हैं जो राम से कुछ कह नहीं सकते, प्रेमवश नेत्रों में अश्रु भर कर निर्निमेष दृष्टि से राम की ओर देखते हैं–

कपिपति नील रीछ पति अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान ॥ ६/११८ ख
कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि।
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि ॥ ६/११८ग

राम इन्हीं उक्त सेनापतियों को उनका विशेष प्रेम देखकर विमान पर चढ़ा लेते हैं–

अतिशय प्रीति देखि रघुराई।
लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई ॥ ६/११८/१

इस मिमान पर राम, पत्नी एवं लक्ष्मण सहित विद्यमान हैं । इस विमान पर एक अत्यन्त ऊँचा मनोहर सिंहासन है, जिस पर सीता सहित राम बैठते है । अन्य यात्री भी अपने-अपने यथोचित स्थान ग्रहण कर लेते हैं ।

सिंहासन अति उच्च मनोहर
श्री समेत प्रभु बैठे ता पर ।। ६/११८/२

तुलसी उत्प्रेक्षा के माध्यम से सिंहासन पर बैठे युगल सरकार का चित्र उपस्थित करते हैं–

राजत रामु सहित भामिनी ।
मेरु सृंग जनु घन दामिनी ।। ६।११८।३

इस तरह से पुष्पक अपने यात्रियों को लेकर उड़ान भरने के लिए तैयार हो जाता है ।

५.२.८.२.२. **पुष्पक की उड़ान के समय का मौसम**–आज कल भी जब कोई यात्री विमान उड़ान भरने के लिए तैयार होना है तो सबसे पहले यह देखा जाता है कि मौसम कैसा है ? यदि तेज वर्षा, ओले, आँधी और तूफान चलता होता है तो वायुयानों की उड़ाने रद्द कर दी जाती हैं और स्वच्छ मौसम में ही उड़ानों की आज्ञा दी जाती है ।

जिस समय पुष्पक अपनी इस यात्रा की उड़ान भर रहा है, उस समय के मौसम का वर्णन करते हुए तुलसी लिखते हैं कि सुख देने वाली शीतल मन्द सुगंधित वायु चल रही है । समुद्र, तालाब और नदियों का जल निर्मल हो गया है–

परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी ।
सागर सर सरि निर्मल बारी ।। ६/११८/४

इससे स्पष्ट है कि वर्षा ऋतु समाप्त हो गयी है । वायु का वेग भी प्रचण्ड नहीं है । वह विमान की उड़ान के समय चारो ओर सुन्दर शकुनों के साथ-साथ स्पष्ट रूप से, यह भी बतलाते हैं कि आकाश और दिशाये निर्मल हैं, सबके मन प्रसन्न हैं–

सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा
मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा ।। ६।११८।४

यहाँ विचारणीय है कि वायुयान की निरापद उड़ान के लिए इससे भी अच्छा मौसम क्या हो सकता है, जब न तो वायु का तेज वेग है, आकाश और दिशाएँ निर्मल हैं तथा वर्षा की भी कोई संभावना नहीं है ।

५.२.८.२.३. **पुष्पक के चलने पर ध्वनि**– कोई भी विमान जब उड़ान भरने के लिए चलता हैं तो प्रोपाइलर द्वारा हवा के काटने, सुपर सोनिक जहाजों में

प्रेसरपल्स एवं जेट विमानों में टरबाइन के ब्लेडों द्वारा हवा के तेजी से काटने के कारण इंजिन से एक विशेष प्रकार की ध्वनि होती है।[1] इस ध्वनि को अगर शोर कहा जाय तो अनुचित न होगा।

तुलसी पुष्पक के चलने का ऐसा दृश्य उपस्थित करते हैं जिससे आज के विमानों के उड़ते समय होने वाली ध्वनि का जीता-जागता दृश्य उपस्थित हो जाता है और स्वीकार करना पड़ता है कि प्राचीन एवं अर्वाचीन विमानों में ध्वनि की दृष्टि से पूर्णतः साम्य है–

चलत बिमान कोलाहल होई।
जय रघुबीर कहइ सबु कोई ॥ ६।११८।२

यहाँ सभी के द्वारा कही गई 'राम की जय' या 'रघुवीर की जय' तो स्पष्ट है किन्तु विमान के चलने से होने वाली ध्वनि अस्पष्ट है। इस तेज और अस्पष्ट ध्वनि को ही वैज्ञानिक भाषा में शोर और सीहित्यक भाषा में कोलाहल कहा जा सकता है। इसी तथ्य को स्वीकारते हुए, बाबा हरिहर प्रसाद[2] जी ने कहा है कि गरुड़ पक्ष की रीति से विमान से साम ध्वनि निकल रही है, उससे कोलाहल हो रहा है।[3] वाल्मीकि रामायण[4] में भी यही स्वीकार किया गया है कि ध्वनि विमान से ही हो रही है।

५.२.८.२.४ **पुष्पक के उड़ने की दिशा–** आधुनिक विमानों को किसी दिशा विशेष में ले जाने के लिए विमान के विभिन्न अंगों के माध्यम से दैशिक नियंत्रण किया जाता है। तुलसी ने पुष्पक के दैशिक नियंत्रण के माध्यम से उत्तर दिशा की ओर पुष्पक की चलाने की बात कही है। अयोध्या जाने के लिए पुष्पक को लंका से उत्तर दिशा की ओर ही जाना पड़ेगा।

मनमहुँ बिप्र चरन सिरु नायो।
उत्तर दिसिहि बिमान चलायो ॥ ६।११८।१

१– विशेष अध्ययन हेतु देखिए–
(i) 1975 : L. M. Nicolai : Fundamentals of aircraft Design Psge 4 to 8.
(ii) Herris : Hand Book of noice control.
(iii) 4th Eiition : Daniel 0. Dommasch : Air plane Aerody Namics :

२– रामायण परिचर्या, सं १९५५।

३– मानस पीयूष– खण्ड ६, पृ० ६००।

४– वाल्मीकीय रामायण, द्वितीय भाग, युद्धकाण्ड, अ० १२३, पृ० १४२९

अनुज्ञातं तु रामेण तद् विमानमनुत्तमम्।
हंसयुक्तं महानादमुत्पपात विहायसम् ॥

यह उत्तर दिशा को जाता हुआ सुन्दर विमान बड़ी शीघ्रता से चलता है और देवता हर्षित होकर पुष्पों की वर्षा करने लगते हैं।

रुचिर बिमानु चलेउ अति आतुर।
कीन्हीं सुमन बृष्टि हरषे सुर॥ ६।११८।४

५.२.८.२.५ **पुष्पक विमान की आकाश मार्ग से यात्रा**– यदि वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उड़ने का अर्थ है गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के विरुद्ध वायु में ठहरे रहना[1] लियोनादों दाविचों[2] ने एक स्थान पर लिखा है कि किसी भी वस्तु का वायु जितना ही प्रतिरोध करती है। वह वस्तु भी वायु का उतना ही प्रतिरोध करती है। (न्यूटन के तृतीय नियम की पूर्व परिकल्पना) इसके अतिरिक्त आर्कमिडीज का सिद्धान्त[3] आज भी विमान शास्त्र और उड्डयन का मूल सिद्धान्त माना जाता है भले ही प्रोपाइलर और पंखे तथा पक्ष विमान को ऊपर उठने और आगे बढ़ने में मदद करते हो और पतंग के उड़ने के नियम अधिक अनुकूल हों। निःसन्देह आकाश में उड़ते विमान अनेक नियमों एवं सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के विरुद्ध वायु में चलते रहते हैं।

तुलसी ने देव यानों और पुष्पक की चारों यात्रायें आकाश मार्ग से ही दिखाई है, इनको आकाश में उड़ता हुआ दिखाया है। जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है।

आकाश मार्ग में चलने वाले विमानों की कल्पना को यथार्थतः उड्डयन के सिद्धान्तों का पालन करना ही पड़ेगा, अन्यथा आकाश में उड़ान सम्भव ही नहीं हो सकती।

५.२.८.२.६. **पुष्पक की गति या चाल**–मानस में पुष्पक की गति का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है, किन्तु लंका में कार्य सिद्धि के पश्चात् भरत से मिलने की आकुलता एवं शीघ्र अयोध्या पहुँचने की आतुरता और अवधि समाप्ति पर अयोध्या पहुँचने पर भरत के जीवित न मिलने को आशंका से राम शीघ्र पहुँचने के लिए

१– वही वायुयान, उड्डयन सिद्धान्त, पृ० ५०

२– इतालवी कलाकार (१४५२ई०–१५१९ ई०) जिसने पैराशूट (हवाई छतरी और हेलीकाप्टर के अभिकल्प बनाए थे।

३– जब कोई वस्तु किसी द्रव से डूबती है या डबोई जाती है तो उसके भार में कमी आ जाती है। यह कमी वस्तु द्वारा हटाए गये द्रव के भार के बराबर होती है। (अब इस सिद्धान्त की वैमानिकी में मान्यता नहीं है।) यूनानी वैज्ञानिक आर्कमिडीज २८७–२१२ बी०सी०)

विवश हैं । तथा लंका से अयोध्या की दूरी को एक दिन में[1] ही तय करने के लिए वह विभीषण से आग्रह करते हैं ।

इसी तथ्य को स्वीकारते हुए स्व० प्रो० रामदास गौड़ एम० एस–सी० ने पीयूष[2] में लिखा है कि एक ही दिन शेष रह गया था । उसी दिन पहुँचने के लिए पुष्पक यान छोड़ कर कोई उपाय न था । नवाभिषिक्त राजा विभीषण ने सरकार (राम) को पुष्पक विमान प्रस्तुत किया कि वह शीघ्र से शीघ्र भरत की व्यथा को दूर करें । यह विभीषण की भेंट थी । जिसने सेना के प्रमुखों और सखाओं सहित प्रभु को अयोध्या पुरी तक पहुँचा दिया ।

आगे वह पुष्पक की गति के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि पुष्पक ने हर्ष पूर्वक यह सेवा की । लगभग ४०० मील प्रति घण्टे के हिसाब से वह विमान चला । उसकी सेवा पूरे दिन भर भी नहीं रही । फिर भी इस अलभ्य अवसर की प्राप्ति का उसे अति हर्ष हुआ । लंका से अयोध्या की दूरी को बताते हुए संत श्याम जी पराशर ने अपनी पुस्तक[3] में लिखा है कि राम अयोध्या से ३००० मील दूर थे । यह दूरी और विमान की गति यह पुष्ट करती है कि यात्रा पूरे दिन भर की भी नहीं थी ।

जैसा कि हम जानते हैं कि आजकल जेट विमानों की गति १४०० मील प्रति घण्टे[4] और स्पूतनिकों[5] की गति लगभग १७४४० मील प्रति घण्टे तथा अन्तरिक्ष यानों की गति लगभग ४३ हजार किलो मीटर[6] प्रति घण्टा या इससे भी अधिक है किन्तु वायुयानों की गति अब भी ७६० मील[7] प्रति घंटा ही उचित समझी जाती है । अस्तु, विमान ४०० मील प्रति घण्टा के वेग से सरलता से उड़ सकता है । इस वेग से उड़ने वाले विमानों को आधुनिक युग में अध:स्वनिक विमान (मेश[8] संख्या एक से

१– मानस ७।प्रथम दोहा,

२– मानस पीयूष, खण्ड ७ पृ० ५०

३– मानस चतुश्शती, पृ० ३३२

४– वही वि० और वै०, पृ०, १९०

५– वही पृ० २८७

६– ९ सितम्बर १९७९, दैनिक जागरण, कानपुर, पृ० ४ पर विज्ञान भिक्षुकी 'विज्ञानवार्ता'

७– वि० और० वै०, अध्याय १२ द्रुतगामी विमान, पृ० २५७

८– मेश संख्या-वास्तव में यह संख्या ध्वनि के चाल के आपेक्षिक विमान की चाल को व्यक्त करती हैं, यदि किसी विमान की मेश संख्या १/२ है तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि विमानध्वनि की चाल से आधे पर उड़ान कर रहा है । मेश सं० के आधार पर विमान तीन प्रकार के होते हैं–

(१) अध: स्वनिक (मेश सं० एक से कम पर उड़ रहा हो)

कम पर उड़ान करने वाले) कहा जाता है। इनका वेग ध्वनि के वेग (लगभग ७६० मील प्रति घंटा) से कम होता है। पुष्पक इसी कोटि का विमान है।

५.२.८.२.७. **विमान का पृथ्वी तल से ऊपर उठकर आगे बढ़ना**–आधुनिक विमानों की ऊपर उठने और आगे बढ़ने की प्रक्रिया निम्न प्रकार से होती है–

आरम्भ में विमान को जमीन पर दौड़ने पर उसके भार से हवा का जोर बढ़ जाता है, जिससे वह ऊपर उठ पाता है। इस क्रिया में विमान के सामने के पंखे सहायता देते हैं और फिर वह अपनी बगल में दोनों ओर लगे पक्षों की सहायता से उड़ान आरम्भ कर देता है। निःसन्देह विमान की उक्त उड़ान का सादृश्य पतंग की उड़ान से है और विमान का इंजन मानो पतंग उड़ाने वाला हो।[1]

उद्भार बल और विमान का भार एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं। जब उद्भार की मात्रा विमान भार से बढ़ जाती है तो विमान ऊपर की ओर उठता है। कम हो जाने पर नीचे तथा बराबरहोने पर स्थिर अवस्था में रहता है। कुछ विमान ४० मील प्रति घण्टा कुछ १०० मील प्रति घण्टा की चाल पर हवा में ठहरने योग्य हो जाते हैं।

ज्यों ही विमान अपनी उड़ान आरम्भ करता है, उद्भार बल उत्पन्न होना आरम्भ हो जाता है। परन्तु प्रत्येक विमान की एक निश्चित चाल है, जिस पर वह अपने पंख-काट की सहायता से उद्भार बल की इतनी मात्रा उत्पन्न कर लेता है। जो इस भार को आकाश में उड़ाने में समर्थ हो जाती है। इस चाल को इष्ट उड़ान चाल कहते हैं।[2]

विमान वायु को चीरता हुआ आगे कैसे बढ़ता है, इसका वर्णन करते हुए विमान और वैमानिकी[3] में कहा गया है कि 'वायुपेंच के उदग्रतल में घूमने से विमान वायु को चीरता हुआ आगे बढ़ता है। कहा जा सकता है कि वायु पेंच (पंखा) हवा में पेच कसता हुआ, उस विमान को हवा में से खींचता या ढकेलता है जिसमें वह लगा होता है। जब वायु पेंच विमान के मुख्य भाग के सामने होता है, तब वह वायु पेंच धुरादण्ड पर तनाव डालने के कारण, विमान को आगे की ओर खींचता

(२) अधिस्वनिक (मेश सं० एक से अधिक पर उड़ रहा हो)
(३) अतिस्वनिक (क्रान्तिक मेश सं० पर उड़ रहा हो)
–वही वि० और वै०, पृ०, २६० से ६२

१– वि० और वै०, पृ० ६६।
२– वही, पृ० १३३–३४।
३– वही, पृ० १७३।

है । इस दशा में वायुपेंच को कर्षक वायुपेंच कहते हैं । जब वायुपेंच विमान के मुख्य भाग के पीछे होता है तो यह विमान को आगे की ओर ठेलता है । इस दशा में वायुपेंच को ठेलने वाला वायुपेंच अथवा 'पंखा' कहते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक विमान, पृथ्वी तल से ऊपर उठकर पक्षों एवं पंखों की सहायता से वायु को चीरता हुआ आगे बढ़कर अपनी यात्रा पूरी करते हैं ।

मानस में विमानो की उड़ानों और आकाश मार्ग से यात्राओं का विवरण प्रस्तुत किया जा चुका है । पुष्पक की सभी यात्रायें आधुनिक विमानों की उड़ानों से साम्य खाती है भले ही उनकी ज्ञान तकनीकी का वर्णन यहाँ न हो, क्योंकि मानस साहित्यिक कृति है, न कि विमान और वैमानिकी से संबंधित तकनीकी पुस्तक ।

५.२.८.२.८. **विमान की पृथ्वी तल से ऊँचाई**–मानस में आकाश में उड़ते हुए पुष्पक की जो ऊँचाई दिखाई गयी है, वह पृथ्वी तल से अधिक ऊँचाई नहीं है । राम ने पुष्पक द्वारा आकाश मार्ग से यात्रा करते हुए लंका और अयोध्या के बीच पड़ने वाले अनेक महत्वपूर्ण स्थान सीता को दिखाये है ।[1] यदि विमान अधिक ऊँचाई पर होता तो इन स्थानों को देख सकना कठिन हो जाता ।

मानस के सप्तम सोपान के प्रथम श्लोक 'केकीकण्ठाभ नीलं[2], में प्रयुक्त राम के अनेक विशेषणों में से प्रथम विशेषण मोर के कण्ठ की आभा के समान श्याम (वर्ण) विचारणीय है जिसका संबंध विमान की ऊँचाई से जोड़ा जा सकता है ।

'केकीकण्ठाभनीलं' की व्याख्या करते हुए मानस पीयूष[3] में पीयूषकार ने इस उपमा के कारण को बताते हुए स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि मोर आकाशगामी है और बहुत ऊँचा नहीं उड़ता, प्रभु भी इस समय आकाश मार्ग से चले आ रहे हैं और विमान भी बहुत ऊपर नहीं है । अतएव मोर से रूपक दिया । पुन: अन्य काण्डों में श्यामता की उपमा नील, जलज, जलद तथा नीलमणि आदि से दी है वे सब जड़ हैं, उनका सुख दूसरों को होता है, उनको स्वयं सुख नहीं होता। इस काण्ड में मोर की उपमा दी गयी है, जो चेतन है । मोर को स्वयं भी उस आभा का सुख होता है और देखने वालों को भी ।[4] अस्तु नभगामी और कम ऊँचाई पर

१– मानस ६।११८।५ से ६।१२० क तक

२– वही ७/प्रथम श्लोक

३– मानस पीयूष, खण्ड–७ पृ० ३ (ग)

४– उक्त पर, श्री मानस शंकावली, श्री महादेव दत्त कृत पुस्तक से उद्धृत

उड़ने वाले मयूर से उपमा देकर पुष्पक को कम ऊँचाई पर उड़ते हुए दिखाना विज्ञान की दृष्टि से पूर्णतः सार्थक है। इसी पुष्पक की विभिन्न ऊँचाइयों पर उड़ानों का वर्णन करते हुए कालिदास ने रघुवंश में लिखा है कि राम सीता से कहते हैं कि यह विमान कभी तो देवताओं के मार्ग से, कभी बादलों के मार्ग से, और कभी पक्षियों के मार्ग से होकर उड़ता है। जब जैसी मेरे मन की अभिलाषा होती है, विमान तब उसी ऊँचाई को ग्रहण करके उड़ता है।[1] आधुनिक विमान वायुमण्डल के ट्रोपो स्फीयर में ही उड़ते हैं, जबकि राकेट द्वारा स्टैटोस्फीयर व आइनो स्फीयर में भी उड़ा जाता है। पुष्पक की उड़ान की तीनों ऊँचाइयों, २०००', १००००' तथा ३६०००' की तुलना आधुनिक विमानों की उड़ने की ऊँचाइयों से की जा सकती है।

५.२.८.२-९- **पुष्पक से स्थल के दृश्य एवं अयोध्या की यात्रा**– आधुनिक विमानों के कम ऊँचाई (२०००') से उड़ने पर, स्थल के दृश्यों को सरलता पूर्वक देखा जा सकता है। यह ऊँचाई २०००' से १००००' तक हो सकती है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि पुष्पक की उड़ने की ऊँचाई पृथ्वी तल से अधिक नहीं है और न ही सम्भवतः देखने वाले स्थलों पर गति ही तीव्र रही होगी क्योंकि ऊँचाई कम होने और गति तीव्र होने पर भी स्थल के दृश्यों को सरलता से नहीं देखा जा सकता है।

जैसे ही पुष्पक लंका की रणभूमि के ऊपर से निकलता है राम, सीता को युद्ध भूमि दिखाते हुए कहते हैं–

कह रघुबीर देखु रन सीता।
लछिमन इहाँ हत्यो इँद्रजीता॥
हनूमान अंगद के मारे।
रनमहि परे निसाचर भारे॥ ६।११८।५
कुंभकरन रावन द्वौ भाई।
इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई। ६।११८।६

इसके उपरान्त समुद्र को पार करते हुए उसमें बँधा पुल और अपने द्वारा की गयी शिव की स्थापना को दिखला कर सीता सहित शम्भु को प्रणाम करते हैं–

इहाँ सेतु बाँध्यों अरु, थापेउँ सिव सुखधाम।
सीता सहित कृपानिधि, संभुहि कीन्ह प्रनाम॥ ६।११९क

१– क्वचित्पथा संचरते सुरणां क्वचिद्घनानाम्ततांक्वाचि्च।
यथा विधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम्॥ १९
–कालिदास विरचित, रघुवंश, सर्ग–१३

सीता अपहरण के बाद बन में, राम ने जहाँ-जहाँ निवास या विश्राम किया था उन स्थानों को विमान से दिखाते हुए, उनके नाम भी सीता को बताते हैं[१]-

ये स्थल चाहे ऋष्यमूक पर्वत हों या पंपासर या शबरी आश्रम या कबंध वध का स्थान या गृद्धराज का वह पवित्र स्थान जहाँ सीता की रक्षा में उन्होंने प्राण त्यागे थे अथवा पंचवटी ।

उक्त स्थलों से होता हुआ पुष्पक विमान दण्डकारण्य में आ जाता और राम विमान से उतर कर अगस्त्य आदि अनेक मुनियों के आश्रमों में जाते हैं-

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा ।।
दंडक बन जहँ परम सुहावा ।।
कुंभजादि मुनि नायक नाना ।
गए रामु सब कें अस्थाना ।। ६।११९।१

ऋषियों से आर्शीवाद प्राप्त कर राम चित्रकूट आते है । यहाँ मुनियों को सन्तुष्ट करके विमान द्वारा तेजी से अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं ।

सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा ।।
चित्रकूट आए जगदीसा ।।
तहाँ करि मुनिन्ह केर सन्तोषा ।
चला बिमान तहाँ ते चोखा ।। ६।११९।२

राम विमान से सीता को यमुना गंगा त्रिवेणी आदि नदियों के दर्शन कराते हुए प्रयाग और अवध के दर्शन कराते हैं तथा सीता सहित अवध को प्रणाम करते हैं-

बहुरि राम जानकिहि देखाई ।
जमुना कलिमल हरनि सुहाई ।।
पुनि देखी सुरसरी पुनीता ।
राम कहा प्रनाम करु सीता ।। ६।११९।३
तीरथ पति पुनि देखु प्रयागा ।
निरखत जन्म कोटि अघभागा ।।
देखु परम पावनि पुनि बेनी ।
हरनि सोक हरि लोक निसेनी ।। ६।११९।४

१- जँह जँह कृपा सिंधु बन, कीन्ह बास बिश्राम ।
सकल देखाए जानिकिहि कहे सबन्हि के नाम ।। ६।११९ख

पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि ।
त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि ।। ६।११९।५
सीता सहित अवध कहुँ, कीन्ह कृपाल प्रनाम ।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम ।। ६।१२०क

त्रिवेणी पर तो राम विमान से उतर कर, कपियों सहित स्नान करके ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान भी देते हैं ।

पुनि प्रभु आइ त्रिबेनीं हरषित मज्जनु कीन्ह ।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि कीन्ह ।। ६।१२०ख

यहीं से राम हनुमान को समझा कर अयोध्या भेजते हैं और भरत को अपनी कुशल सुनाने और उनका समाचार लेकर शीघ्र आने के लिए कहते हैं–

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई ।
धरि बटु रूप अवध पुर जाई ।।
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु ।
समाचार लै तुम्ह चलि आएहु ।। ६।१२०।१

हनुमान तुरन्त चल देते हैं । तब राम पुनः विमान पर चढ़कर भरद्वाज आश्रम पर आते हैं । भरद्वाज जी राम का सत्कार करते हैं और आर्शीवाद देते हैं । राम दोनों हाथ जोड़कर मुनि चरणों की बन्दना करके विमान पर चढ़ आगे चलते हैं ।

तुरत पवन सुत गवनत भयऊ ।
तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ ।।
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही ।
अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही ।। ६।१२०।२
मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी ।
चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी ।। ६।१२०।३

इधर शृंगवेरपुर में निषाद राज को जैसे ही सूचना मिलती है कि रामचन्द्र जी चौदह वर्षों की अवधि पूरी कर आ रहे हैं, तो वह भाव विह्वल होकर 'नाव कहाँ है' ? नांव कहाँ है' ? पुकारते हुए लोगों को बुलाता है ।

इहाँ निषाद सुना प्रभु आए ।
नाव नाव कहँ लोग बोलाए ।। ६।१२०।३

इसी बीच पुष्पक गंगा को लाँघ कर इस पार आ जाता है और राम की आज्ञा पाकर वह किनारे पर उतर जाता है ।

सुरसरि नाघि जान तब आयो ।
उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो ।। ६।१२०।४

विमान से उतरकर सीता जी गंगा की पूजा करके आर्शीवाद प्राप्त करने के लिए गंगा के चरणों पर गिर पड़ती हैं–

तब सीता पूजी सुरसरी ।
बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी ।। ६।१२०।४

राम के विमान से उतरने की बात सुनते ही निषाद राज गुह प्रेम में विह्वल होकर दौड़ पड़ते हैं तथा परम सुख से परिपूर्ण होकर वह राम के समीप पहुँच जाते हैं । राम उनका प्रेम देखकर हर्ष के साथ उन्हें हृदय से लगा लेते हैं और अत्यन्त निकट बैठाकर कुशल क्षेम पूँछते हैं ।

सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल ।
आयउ निकट परम सुख संकुल ।। ६।१२०।५
प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही ।
परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही ।।
प्रीति परम बिलोकि रघुराई ।
हरषि उठाइ लियो उर लाई ।। ६।१२०।६

बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती ।। ६।१२०, छ०१ चरण २
राम गंगा के किनारे से पुष्पक पर चढ़कर पुन: चलते है ।[1]

राम द्वारा भेजे गए हनुमान नन्दिग्राम में भरत से भेंट करके उन्हें राम की कुशलता से अवगत कराते हैं । भरत के सम्पूर्ण समाचार लेकर राम को बतलाते हैं । तब प्रसन्न वदन राम, विमान पर चढ़ कर अयोध्या की ओर पुन: प्रस्थान करते हैं ।

भरत चरन सिरु नाइ, तुरित गएउ कपि राम पहिं ।
कही कुसल सब जाइ, हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि । ७।२ख

जब विमान अयोध्या के ऊपर मडराने लगता है, तो राम विमान पर सवार अपने मित्रों को अयोध्या दिखाते हुए वहाँ की सुन्दरता, पवित्रता और महत्ता से सब को परिचित कराते हैं । वहाँ के निवासियों के प्रति अपने प्रेम भाव को भी प्रकट करते हैं–

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर ।
कपिन्ह देखावत नगर मनोहर ।।

१– मानस ७/प्रथम श्लोक ।

सुनु कपीस अंगद लंकेसा ।
पावन पुरी रुचिर यह देसा ।। ७।३।१
जद्यपि सब बैंकुठ बखाना ।
बेद पुरान बिदित जगु जाना ।
अवध पुरी सम प्रिय नहि सोऊ ।।
यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ।। ७।३।२
जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि ।
उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ।।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा ।।
मम समीप नर पावहिं बासा ।। ७।३।३
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी ।
मम धामदा पुरी सुख रासी ।।
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी ।
धन्य अवध जो राम बखानी ।। ७।३।४

५.२.८.२.१० **विमान द्वारा समुद्र नदियाँ पहाड़ और जंगलों को पार करना-**
आधुनिक विमान और वैमानिकी के इतिहास पर यदि दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि वायु गुब्बारे का प्रयोग करते हुए ७ जनवरी १७८५ ई० को ब्लांशार (फ्रांसीसी युवक) ने एक अमेरिकन, डाँ० जैफरिज के साथ डोवर से कैले तक उड़ान करके इंगलैण्ड और यूरोप के बीच के समुद्र को पार किया था ।[1]

वायुपोत के द्वारा अटलाण्टिक महासागर को १९१९ ई० में पार किया गया था ।[2] फ्रान्स के मनोप्लेन एक पंखी विमान ने २५ जुलाई[3] सन् १९०९ को इंग्लिश चेनल को उड़ान से पार कर 'डेली मेल' का १००० पौण्ड का पुरस्कार

१- वि० और वै०, पृ० १२ ।

2. 'The first airship across the Atlantic-'
It was in 1919 that the Atlantic was first crossed by air- The Amarican N. C. H. flying boat making a Journey by stages from new found Land to play mouth, and the British flyers, Alcock whitten–Brown, flying nonstop from New found Land to Ireland-
—The History of airship--Page–112.

३- १९०९ में ब्लेरिआट ने भी इंग्लिश चैनल पार की थी ।
–वायुयान, कान्ति सक्सेना, पृ० ४८–४९

जीता था ।[१] भारत में लोक सेवा वैमानिकी विभाग की स्थापना सन् १९२७ ई० में हुई थी और ३० मार्च सन् १९२९ को लंदन-कराची सेवा का उद्घाटन हुआ था ।[२] इसके पूर्व विमान द्वारा समुद्र, नदियों, पहाड़ों और जंगलों के पार करने का उल्लेख नहीं है ।

मानस में तुलसी के पुष्पक का तीनों यात्राओं में समुद्र पार करने का संकेत है ।[३] अन्य देवयान भी लंका में समुद्र पार करके ही जाते और आते हैं ।[४]

तुलसी ने जहाँ विमान द्वारा जमुना (६।११९।३) गंगा (६।११९।३) और त्रिवेणी (६।११९।४) को पार करने की बात कही है[५] वहाँ एक स्थल पर गंगा को पार करने का स्पष्ट उल्लेख भी किया है ।

सुरसरि नाघि जान तब आयो ।
उतरेऊ टत प्रभु आयसु पायो ।। ६।१२०।४

यही नहीं विमान द्वारा दण्डक बन (६।११९।१) और अष्यमूक पर्वत को पार करने के संकेत[६] भी मानस में विद्यमान है ।

यह स्वयं सिद्ध तथ्य है कि जब आकाश मार्ग से यात्रा की जायेगी तो पृथ्वी के कोई भी यात्रा के व्यवधान (समुद्र, नदी, जंगल, पहाड़ और नगर आदि) यात्रा में बाधक नहीं हो सकते । तुलसी के विमान इन व्यवधानों को पार करते चले जाते हैं तो इसे आश्चर्य का विषय नहीं माना जा सकता ।

५. २. ८. २. ११ अयोध्या निवासियों की राम के दर्शन की उत्कण्ठा और अट्टालिकाओं से पुष्पक दर्शन–प्राय: ऐसा देखा जाता है कि किसी नगर या ग्राम

१– वही, वि० और बै, पृ० ४५ ।

२– वही, पृ० ५५ ।

३– लंका में कुबेर का विमान बिना समुद्र पार किये नहीं आ सकता (१।१७८।३) रावण लंका से पंचवटी और पंचवटी से लंका बिना समुद्र पार किये नहीं आ जा सकता (३।२२।४, ३।२८, ३।२८।१२-१३) लंका से अयोध्या की यात्रा में समुद्रपार करने का तो स्पष्ट उल्लेख ही है । देखिए मानस ६।११८।५-६ तथा ६।११९ (क)

४– मानस–६।५२।४, ६।७०।६, ६।७६।१, ६।८०।१, ६।१०७।-छ०१, ६।१०९ क, ६।११४ क, ७।११ ग,

५– मानस–६।१२० ख

६– वही–३।२८।१३, ४।४।२ ।

के पास, निश्चित तिथि एवं समय पर कोई भी विमान या हेलीकाप्टर उतरता है तो स्त्रियाँ आसपास की अट्टालिकाओं पर चढ़कर उसका दर्शन करती हैं। अयोध्या निवासियों को भरत द्वारा ज्ञात हो चुका है कि राम पुष्पक विमान से आज अयोध्या आ रहे हैं—

हरषि भरत कोशलपुर आए।
समाचार सब गुरहिं सुनाए ॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई।
आवत नगर कुसल रघुराई ॥ ७।२।१
सुनत सकल जननीं उठि धाईं।
कहि प्रभु कुसल भरत समुझाई ॥
समाचार पुरबासिन्ह पाएँ।
नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥ १।२।२

अस्तु अनेक स्त्रियाँ और पुरुष तो राम की अगवानी हेतु नगर के पास उस स्थल पर पहुँच जाते हैं, जहाँ पुष्पक विमान उतरता है।

दधि दुर्बा रोचन फल फूला।
नव तुलसी दल मंगल मूल ॥
भरि भरि हेम थार भामिनी।
गावत चलि सिंधुर गामिनी ॥ ७।२।३
जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं।
बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं ॥
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई।
तुम्ह देखे दयाल रघुराई ॥ ७।२।४
हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपा निकेत ॥ ७।३ (क)

किन्तु बहुत सी स्त्रियाँ अट्टालिकाओं पर चढ़ी आकाश में विमान देख रही हैं और उसे देखकर हर्षित होकर मीठे स्वर से सुन्दर मंगल गीत गा रही हैं—

बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान ॥ ७।३ ख

ये वे स्त्रियाँ हैं जिनको बाहर निकलने में संकोच है या परदे वाली स्त्रियाँ हैं।[1]

तुलसी द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त चित्रण और आधुनिक युग में उतरने वाले

१– मानस पीयूष, खण्ड ७, पृ० ३९।

ऊपर उठ जाता है । इसके साथ ही विमान का बायाँ पक्ष नीचे और दायाँ पक्ष ऊपर उठ जाता है । इस प्रकार पूरा विमान बायीं ओर मुड़ जाता है ।

दैशिक नियंत्रण के लिए विमान चालक कोष्ठ में रखे सुकान (रडर) के नियंत्रक को पैरों से चलाता है । दाहिना पैर आगे की ओर दबाने से सुकान का पिछला हिस्सा दाहिनी ओर चलेगा और विमान भी दाहिनी ओर मुड़ेगा । सुकान की सहायता से बिमान अपने सही मार्ग पर चलता है और बिमान मोड़ने में पक्षकों के साथ काम में लाया जाता है । सामान्यतः सुकान की गति से सिफने पर और उत्थापक की गति से पुच्छक बिमान पर बल उत्पन्न होता है ।

स्थायित्व और नियंत्रण में अन्तर है । एक ओर स्थायित्व के उपकरण जिनमें पुच्छक विमान, सिफना इत्यादि सम्मिलित है । बिमान के गड़बड़ा जाने से उसे पुनः अपने पहले उड़ान मार्ग पर ले आने का प्रयत्न करते हैं । दूसरी ओर नियंत्रण उपकरण जैसे उत्थापक, सुकान इत्यादि का उपयोग कर विमान-चालक विमान को किसी भी इच्छित स्थान पर ले जा सकता है ।[1]

उपर्युक्त बिमान की कार्य प्रणाली के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मानस में जिन विमानों का वर्णन अपने प्राचीन ज्ञान के अनुसार किया गया है उनके पृथ्वी से चलने, आकाश में उड़ने, पृथ्वी पर उतरने और विभिन्न दिशाओं में मोड़ने, आदि में निःसन्देह उन्हीं प्रक्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता होगा जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है । तभी वे विमान इच्छित स्थानों पर ले जाये जा सकते होंगे ।

इसके अतिरिक्त मानस में देवताओं द्वारा युद्ध देखने एवं अनेक स्थलों पर पुष्पवर्षा करने के लिए प्रयुक्त विमानों की तुलना रूस द्वारा निर्मित उस उड़ने वाली कुर्सी से सरलता से की जा सकती है, जो १५ मिनट तक एक स्थान पर आकाश में स्थिर रह सकती है ।[2]

इस प्रकार मानस में व्यक्तिगत एवं सामूहिक उड़ानो का विस्तृत विवरण विद्यमान है तथा उसे आधुनिक विमान और वैमानिकी ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में सरलता से देखा जा सकता है ।

मानस में संरक्षित यह ज्ञान हमारी प्राचीन वैमानिक उपलब्धियों की विरासत है जो हमें गौरवान्वित कर इस दिशा मे आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करती रहेगी ।

———

१– वि० और वै०, पृ० २५४–५५ ।

२– डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पृ० ४७३–७४

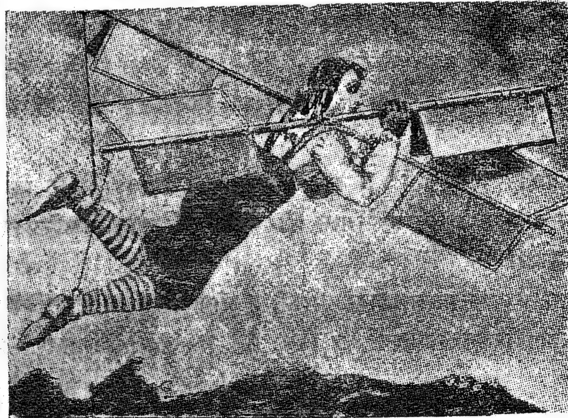
परिशिष्ट–१

आधुनिक विमान एवं वैमानिकी तथा मानव वायु विजय

५. ०. ०. ईसा की बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है, जब मानवीय मेधा, प्रकृति का निस्सीम दुरूहता, उसके गोपन रहस्यों तथा आकर्षण-विकर्षणों की गाँठ-गाँठ गुत्थी खोलती हुई चन्द्र एवं मंगल ग्रहों के धरातलों पर अवतरण कर रही है और पता नहीं, इस फैलते हुए विश्व के चप्पे-चप्पे की खोज में कहाँ-कहाँ तक न पहुँच जाय।

उड़ान सम्बन्धी प्रयासों के उद्‌गम के सम्बन्ध में तो निश्चय पूर्वक कोई धारणा स्थापित नहीं की जा सकती केवल इतना ही कहा जा सकता है कि मनुष्य की अनुकरण करने की प्रवृत्ति ने इसमें अवश्य महत्वपूर्ण योग दिया है। पक्षियों को उड़ते देखकर ही शायद उसने उड़ने की कल्पना की होगी। देखिए, बासनिये का प्रयत्न, चित्र–७।

यों तो उड़ान के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ढंग से सोचने-विचारने में अंग्रेज पादरी



बासनिये ने उड़ने की एक मशीन बनायी
(रेडियो टाइम्स हल्टन पिक्चर लाइब्रेरी के सौजन्य से)
चित्र–७

रोजर बेकना, लैओनार्डो डाविंची और विलकिन्स (सन् १६१४–७२) की कल्पनाओं का विशेष महत्व है। इन्हीं विकलिन्स से प्रेरणा से लेकर सन् १६७८ ई० में ताला बनाने वाले एक फ्रांसीसी युवक बासनिये ने उड़ने की एक मशीन बनाई, जिससे उड़ान करने का परीक्षण किया गया किन्तु असफल रहा।

१७ वीं शताब्दी में ही एक फ्रांसीसी पादरी और गणितज्ञ फ्रांसेस्को द लाना ने उड़ने की हलकी मशीनों के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक ढंग से थोड़ा बहुत सोचने का प्रयास किया। इन्हीं के सिद्धान्तों के आधार पर पुर्तगाल में कोइम्ब्रा विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फायर गजमैन ने लगभग १७३६ ई० ७ फीट व्यास की कागज से ढकी लचीली टहनियों की बनी टोकरी सी बनायी जो वायु में लगभग २०० फीट ऊपर तक ही उड़ सकी।[1]

१७५५ ई० में जोजेफ गेलयन ने एक सुझाव दिया कि कपड़े के बड़े-बड़े थैले बनाये जाँय और इन थैलों में यदि कोई विरल वायु भर दी जाय तो वायु में इनकी उड़ान संभव हो सकती है। सौभाग्य से १७६६ ई० में हेनरी कैवेण्डिश नामक अंग्रेज रसायनज्ञ ने वायु से सात गुनी विरल गैस खोज निकाली, जिसका लवुआसिये नामक रसायनज्ञ ने हाइड्रोजन नाम रखा।[2] १७८२ ई० में केवेलो ने उड़ान में इस गैस को प्रयोग करने का असफल प्रयास किया किन्तु अब मनुष्य का ध्यान एक ऐसी मशीन के निर्माण की ओर गया जो उस वायु से हलकी हो जिसका उसे विस्थापन करना हो और जो अपनी उड़ान में हवा के उत्प्लावन गुण का लाभ उठा सके। ये मशीने गुब्बारे अर्थात बैलून के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

५. ०. १. **गुब्बारे**–फ्रांस में लिओन के समीप आनोने के रहने वाले दोनों भाई जोजेफ और एतिन मोंगोलफिये ने १७८३ ई० में सौ फीट परिधि के कागज के गुब्बारे में धुआँ भरकर सार्वजनिक प्रदर्शन किया। गरम हवा भर जाने के कारण गुब्बारा १० मिनट से कम समय में ६००० फीट की ऊँचाई तक पहुँच गया। इस प्रकार के गुब्बारे को बाद में अग्नि गुब्बारों का नाम दिया गया और हाइड्रोजन गस से भरे गुब्बारे गैस के गुब्बारे कहे जाने लगे।

पेरिस में चार्ल्स के सुझाव पर सिल्क के बनाये गये गुब्बारे में हाइड्रोजन गैस भरने की व्यवस्था की गई और २३ अगस्त १७८३ ई० को यह प्रयोग सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। इसी समय फ्रांस के सम्राट के अनुरोध पर मोंगोलफिये बन्धुओं

१– विमान और वैमानिकी, ले० चमन लाल, सूचना बिभाग उ० प्र०, प्र० सं० १९५९, पृ० ५।

२– अकार्बनिक रसायन, ले० पंचाननडे तथा नरोतम भार्गव, प्र० भाग, १९६९, पृ० ३३२।

ने १९ सितम्बर १७८३ ई० को वर्सेल्स में ऐसा ही एक प्रदर्शन किया। इस अग्नि गुब्बारे में पहली बार एक भेड़, बत्तख और मुर्गे ने उड़ान की।[1] (देखिए–चित्र–८)



मोंगोलफिये के अग्नि-गुब्बारे में पहली बार भेड़ बत्तख तथा मुर्गे ने उड़ान की
(रेडियो टाइम्स हल्टन पिक्चर लाइब्रेरी के सौजन्य से)
चित्र–८

फ्रांस के रोज्ये नामक एक साहसी युवक वैज्ञानिक, १५ अक्टूबर १७८३ ई० को, एक बन्दी गुब्बारे में आकाश में लगभग ८० फीट की दूरी तक गये। इस प्रकार विश्व की वैमानिकी के इतिहास में पहली बार उड़ान करने का सम्मान इन्हें प्राप्त हुआ। रोज्ये ने ही अपने एक अन्य साथी के साथ २१ नवम्बर १७८३ ई० को पहली यात्रा सम्पन्न की। इस प्रकार की यात्रा विश्व के हवाई यात्रा के इतिहास में पहली बार सफलता पूर्वक सम्पन्न की गयी थी। उन्होंने अपनी इस उड़ान में ७६ फीट ऊँचे और ४६ फीट व्यास के एक अग्नि गुब्बारे का प्रयोग किया था। ये दोनों साथी

१– वही, वि० और वै० (गुब्बारे), पृ० ७-८।

आकाश में ३०० फीट की ऊँचाई पर लगभग ५.५ मील की दूरी तक उड़े। इसमें इन्हें २५ मिनट लगे। इसके बाद १ दिसम्बर १७८३ ई० को चार्ल्स औद राबर्ट ने गैस गुब्बारे में पहली उड़ान की।[1] इसके बाद तो गुब्बारों का युग ही आ गया।

जून १७८४ ई० में स्वीडन के सम्राट की उपस्थिति में श्रीमती तिबल ने एक अग्नि गुब्बारे में उड़ान की। यह पहली महिला थी जिन्होंने पहली बार वायु में उड़ान की थी। इंग्लैण्ड में पहली सफल वायु-यात्रा का श्रेय इटली के रहने वाले, लुनार्डि को है। इन्होंने लगभग २५ मील की यात्रा कुत्ता, बिल्ली और कबूतर के साथ १५ सितम्बर १७८४ ई० को मूरफील्डज़ के आर्टिलरी के मैदान में दो बजकर पाँच मिनट से ३ बजकर ३० मिनट तक की और मिम्मस के दक्षिण में नीचे उतर आये।[2]

इसके पश्चात् २८ नवम्बर १७८३ ई० को अमेरिका में जेम्स विलकाक्स ने, १८०४ ई० में प्रो० राबर्टसन तथा जर्मनी के डॉ० झुन्गयस ने कई सफल उड़ाने की।

गुब्बारों ने मनुष्य के लिए उड़ान करना सम्भव बना दिया था परन्तु इनके चालन की कोई यान्त्रिक व्यवस्था नहीं थी, जिसके कारण गुब्बारों को नियन्त्रण में रक्खा जा सके और इनको अपनी इच्छानुसार मोड़ा तथा अपने स्थान पर वापस लाया जा सके।

५. ०. २. **वायुपोत**–ब्रिटिश वैमानिकी के जनक, लंकाशायर के सर जार्ज कैलि (१७७३ से १८५७ ई०) ने सन् १८३७ ई० में एक ऐसी मशीन का प्रोजेक्ट तैयार किया जिसमें वाष्प शक्ति द्वारा उसके सुकान (रडर) और पंखों के संचालन की व्यवस्था की गई थी। कुछ कारणों से वह अपने इस मॉडल के निर्माण में सफल न हुए।

कैलि का अनुकरण करते हुए फ्रांसीसी हेनरी गिफरड ने १८५१ ई० में तीन अश्व शक्ति वाले एक वाष्प-इन्जन का आविष्कार किया जो ११ फीट व्यास के पंखे को ११०० चक्र प्रति मिनट घुमा सकता था। इसका वजन ३५० पौण्ड था। अगले वर्ष उसने उड़ने की एक मशीन बनाई जो १४४ फीट लम्बी और ४० फीट व्यास की थी। इसी में उसने अपना वाष्प-इन्जन लगाया तथा विश्व के इतिहास में पहली बार आंशिक नियन्त्रण व्यवस्था युक्त उड़ने की एक मशीन का सफल आविष्कार किया। गिफरड ने हाइड्रोजन गैस का प्रयोग किया था। २४ सितम्बर सन् १८५२ ई० को ५ मील प्रति घण्टे की चाल से लगभग १७ मील की उड़ान की गई।[3]

१– वही, वि० वै० (गुब्बारे), पृ० ९।

२– वही, वि० और वै०, पृ० १०-११।

3– The History of airships : 'The air ship decome a Practical, Page–29.

इन स्वत: चालित उड़ने की मशीनों को, जो वायु से हलकी, गैस से भरी होती थीं और अपने उत्प्लावन के कारण वायु में ठहर सकती थीं, 'एयर शिप' (वायुपोत) का नाम दिया गया।

इसके पश्चात् वायुपोतों में, पेट्रोल इन्जन का प्रयोग हुआ। जर्मनी के पॉल हैनलिन ने सन् १८७२ में तथा ८ अक्टूबर सन् १८८३ ई० को दो फ्रांसीसी भाइयों अल्बर्ट और गास्टन टिसडियर ने जिस वायुपोत में उड़ान की थी उसमें १५ अश्व-शक्ति की विद्युत मोटर का प्रयोग हुआ था। वायुपोत की पूर्ण नियन्त्रित सफल उड़ान का श्रेय चार्ल्स रेनार्ट और ए०सी० क्रेब्स को है। इनके द्वारा निर्मित (लाफ्रांस) नामक वायुपोत ९ अगस्त सन् १८८४ ई० को १३ मील प्रति घण्टे की चाल से ५ मील की यात्रा पूरी करके पहली बार अपने स्थान पर वापस आ गया।[1]

इसी तारतम्य में अदृढ़, अर्द्ध दृढ़ एवं दृढ़ वायुपोतों का क्रमश: निर्माण हुआ। अनेक देशों, जर्मनी, ग्रेटब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका ने वायुपोतों के निर्माण में सहयोग दिया। वायुपोतों के विकास और निर्माण में ब्राजील निवासी किन्तु पेरिस में रहने वाले सेन्तूज दूमों एवं जर्मन सेना के रिटायर्ड अफसर जेपलिन का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। सन् १९१० से १९१५ के मध्य जैपलिन वायुपोतों की लगभग १६०० उड़ानों में ३७२५० यात्रियों ने सफल और सुखदयात्राएँ की थीं। वायुपोतों का उपयोग विश्व युद्धों में भी किया गया था।

इस तरह से इंग्लैण्ड, फ्रांस एवं रूस आदि ने सन् १९४७ तक वायुपोतों का निर्माण एवं उपयोग किया किन्तु अब वायुपोतों का भी समय समाप्त हो गया है।

५. ०. ३. **आधुनिक युग में विमान और वैमानिकी**–मनुष्य अब तक गुब्बारों तथा वायुपोत–जैसी हलकी मशीनों की सहायता से उड़ाने करता रहा था। इसके बाद उसने हवा में भारी मशीनों का प्रयोग किया। इन मशीनों को विमान कहा गया।

आधुनिक वैमानिकी के जनक पर जार्ज कैलि, अंग्रेज टामस वाकर (१८१० ई०) एवं सैम्यूल हैनसन के विचारों से प्रेरणा लेकर हैनसन के साथी स्ट्रिंगफैलो ने अकेले ही वाष्प इन्जन बनाने में सफलता प्राप्त की। यह हल्का था और विमान को

"It was on 24 September, 1852 that Giffard (Henri Giffard) magnificently dressed for the-occasion, cast off from the ground at Hippodrome in Peris and flew, at a speed of nearly 5 m. p. h. to trappes about 17 miles away. This flight was the birth of controlled lighter than air travel even though it left much to be desired in the matter of control."

१– वही, वि० और वै० पृ० १९-२०।

ऊपर उठाने की क्षमता भी रखता था। इसे उन्होंने १० फीट के विमान माडल में लगाया। सन् १८४८ ई० में इस वाष्प इन्जन युक्त विमान ने अपनी प्रथम सफल उड़ान की। इसने, ४० फीट की यह उड़ान एक बन्द कारखाने में की। उसके पश्चात् वह बाहर हवा में १२० फीट तक उड़ा।[1]

विश्व में सर्वप्रथम विमान में उड़ान किसने की, यह अब भी निर्णीत नहीं है। कुछ लोगों का कहना है कि टामसमाय ने स्वनिर्मित वाष्प-इन्जन युक्त विमान में सन् १८७५ में क्रिस्टल पैलेस में थोड़ी देर के लिए उड़ान की थी। रूसी वैज्ञानिकों के के अनुसार मौजहाइस्की ने सन् १८८२ ई० में अपने एक पंखी वाष्प-इन्जन युक्त विमान से सफलता पूर्वक उड़ान की। १९ अक्टूबर सन् १८९० में फ्रांस के क्लेमोंआदे (१८४१ से १९२५ ई०) अपने एक पंखी विमान 'लाआल' में पृथ्वी से ऊपर लगभग ५० गज गये, किन्तु यह भी विमान की अनियन्त्रित उछल कूद थी।

जर्मनी के ओटोलिलियन्थल ने विश्व में ग्लाइडर से पहली बार उड़ान करने का श्रेय प्राप्त किया। वह ७५ गज की ऊँचाई पर ४४० गज की दूरी तक उड़ान करने में सफल हुए। नियन्त्रण के लिए वह अपने शारीरिक प्रयत्नों पर ही विश्वास करते थे। इनकी मृत्यु १ अगस्त १८९६ ई० को अपने बनाए हुए शक्ति संचालित विमान में उड़ान करते हुए नियन्त्रण खो बैठने के कारण हो गई। इनके कार्य को इंग्लैण्ड में पर्सी पिल्चर ने तथा अमेरिका में आक्टेवचनूटे ने आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। इन्होंने ग्लाइडर उड़ान में काफी सफलता प्राप्त की।

अमेरिका के साइकिल निर्माता, दो भाइयों, आरविल राइट और बिलवर राइट के दृढ़ निश्चय और कठिन परिश्रम से १७ दिसम्बर १९०३ ई० को विश्व में विमान की पहली नियन्त्रित सफल उड़ान सम्पन्न हुई। उस दिन अमेरिका में उत्तरी केरोलिना के किटीहाक में 'किलडेविल हिल' द्वीप में आरविल राइट ने ११ बजने से कुछ पहले अपने विमान के निचले पंख पर लेटकर इन्जन चलाया और १२ सेकेण्ड में १२० फीट की दूरी तय की। उसी दिन इन्होंने चौथी उड़ान में ५९ सेकेण्ड में ८५२ फीट का फासला तय किया।[2] १९०५ में उन्होंने उस वर्ष की अपनी सबसे अच्छी उड़ान की। ३८ मिनट ३ सेकण्ड में उन्होंने २४.५ मील की दूर तय की।

कहा जाता है कि इनसे पूर्व १८९६ ई० में डॉ० सैम्यूल पिरपान्ट लेंगले ने एक छोटे वाष्प-इन्जन युक्त विमान में बड़ी सफलता पूर्वक उड़ान की थी। जर्मनी के हैनोवर निवासी कार्ल जाथो का कहना था कि १८ अगस्त १९०३ ई० को उसने अपने दुपंखी विमान में २४ किलोमीटर की उड़ान की थी।

१– वही, वि० और वै०, पृ० ३७।

२– वही, वि० और वै० पृ०, ४२।

कुछ भी हो राइट बन्धुओं के प्रयत्नों से ही नियन्त्रित विमान की उड़ानों का प्रारम्भ हुआ। फिर तो अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन एवं जर्मनी आदि देशों में विमानों का निर्माण होने लगा और आकाश में विमानों का आधिपत्य हो गया।

अमेरिकी डॉ० राबर्ट एच० गाडरड ने सन् १९२६ ई० में द्रव ईंधन से चलने वाले राकेट को आकाश में छोड़कर राकेट युग का प्रारम्भ किया।

४ अक्टूबर सन् १९५७ को रूसी वैज्ञानिकों ने राकेटों की सहायता से आकाश में कृत्रिम उपग्रह (स्पूतनिक-१) छोड़कर कृत्रिम उपग्रह युग का शुभारम्भ किया। इस उपग्रह ने १७००० मील प्रति घण्टे की चाल से ९५ मिनट में पृथ्वी का पूरा चक्कर लगा लिया।

परमाणु उर्जा के विकास से अब ग्रहों एवं उपग्रहों में आने-जाने की समस्या हल हो गयी है।

आधुनिक युग में वायुमण्डल में यात्रा के लिए जेट इन्जन युक्त वायुयानों एवं अन्तरिक्ष यात्रा के लिए राकेट यानों का उपयोग व्यापक रूप से प्रचलित हो गया है। सिद्धान्ततः एक समान होते हुए भी जेट इंजिन में ईंधन को जलाने के लिए आक्सीजन वायुमण्डल से ली जाती है परन्तु राकेट इन्जन में आवश्यक आक्सीजन का भण्डार राकेट में ही रहता है। आक्सीजन का यह भण्डार द्रव आक्सीजन या किसी उच्च आक्सीजन अंश वाले पदार्थ जैसे हाइड्रोजन पर आक्साइड के रूप में लिया जाता है। अतः जेट इन्जिन केवल पृथ्वी के निकट वायुमण्डल में ही उड़ सकते हैं जबकि राकेट वायुरहित अंतरिक्ष में भी कार्य कर सकते हैं।

५. ०. ४. **आधुनिक युग में अंतरिक्ष की खोज**—अंतरिक्ष सदैव से ही मानव की उत्सुकता का विषय रहा है। यहाँ के ग्रहों उपग्रहों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए मनुष्य सतत प्रयत्नशील रहा है। अन्तरिक्ष खोज में सन् १९५७ ई० में रूस ने पहल की। फिर अमेरिका भी सक्रिय हुआ। १२ अप्रैल और ५ मई सन् १९६१ को क्रमशः प्रथम अन्तरिक्ष यात्री यूरीगोगरिन (रूस) और एलन बी० शेपर्ड (अमेरिका) ने अंतरिक्ष में रहकर पृथ्वी की परिक्रमा की।

अमेरिका ने जैमिनी और अपोलो यानों द्वारा और रूस ने सोयूज, लूना, वाष्टोक आदि यानों द्वारा बड़ी-बड़ी उपलब्धियाँ प्राप्त कीं। अन्त में दिनांक २१ जुलाई १९६९ को चन्द्रमा के 'सी आव ट्रानक्विलिटी' नामक स्थान पर अपोलो-११ के मिशन कमाण्डर, अंतरिक्ष यात्री नील आर्मस्ट्रांग के प्रथम मानवीय चरण चन्द्रतल पर पड़े। इनके दो अन्य साथी थे लूनर मोड्यूल (ईगल) के पाइलट, एडविन

१– वही, वि० और वै०, पृ० २८७।

एल्डरिन एवं कमाण्डमोड्यूल (कोलम्बिया) के पाइलट माइकिल कौलिन्स।

अपोलो शृंखला में अपोलो, १७ अन्तिम यान था जो ११ दिसम्बर सन् १९७२ को चन्द्रमा पर उतरा था। अमेरिका ने अपोलो योजना पर कुल २४ अरब डालर व्यय किया था।

चन्द्रमा की खोज में रूस ने भी बहुत प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की है। इसने लूना शृंखला में अनेक यान चन्द्रमा के लिए भेजे हैं। १४ सितम्बर १९५९ ई० को रूस का मानव रहित राकेट यान 'लूनिक द्वितीय' चन्द्रमा पर पहुँच गया था।[1] १० नवम्बर १९७० ई० को भेजा गया लूना १७, चन्द्रगाड़ी 'लूना खोद-१' के साथ १६ नवम्बर १९७० को चन्द्रमा की सतह पर उतरा था। लूना-२० (मानव रहित) १४ फरवरी १९७२ को भेजा गया और २१ फरवरी को चन्द्रमा पर उतरा तथा चन्द्र-मिट्टी के नमूने लेकर २६ फरवरी १९७२ को वापस आ गया।

मंगल ग्रह पर जीवन की खोज में अमेरिका ने अपना वाईकिंग १ यान, २० जुलाई १९७६ को उतार दिया और उसने अपनी खोज प्रारम्भ कर दी थी। वाईकिंग ११ भी कार्य पूर्ण कर चुका है।

बृहस्पति (जुपीटर) की खोज में पायनियर १० एवं पायनीयर-११ (मानव रहित) जो क्रमशः ३ मार्च एवं ५ अप्रैल १९७२ को भेजे गये थे, अब भी खोज में संलग्न हैं। इनकी गति ४३ हजार किलो मी० प्रति घण्टा है। शुक्र (वीनस) की खोज हेतु सोवियत यूनियन ने वीनस शृंखला के यान भेजे थे जिन्होंने अनेक वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी दी। वीनस-९ का यान २२ अक्टूबर १९७५ को और वीनस-१० का यान २५ अक्टूबर १९७५ को शुक्र के धरातल पर उतर गया। अन्य ग्रहों एवं उपग्रहों की खोज भी जारी है। आशा है वायजर द्वितीय जनवरी १९८६ तक यूरेनस ग्रह और सितम्बर १९८९ तक नेपचून ग्रह के निकट पहुँच जायेगा।

अन्तरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में ऐतिहासिक तथा अभूतपूर्व घटना तब हुयी जब १७ जुलाई १९७५ को दो अन्तरिक्ष यान अपोलो (अमेरिका का) और सेयूज (रूस का) अन्तरिक्ष में मानव जाति की भलाई के लिए आपस में मिले। अन्तरिक्ष की वैज्ञानिक गवेषणाओं के लिए अमेरिका की अन्तरिक्ष प्रयोगशाला (स्काईलैब)* तथा रूस की सलयुट प्रयोगशाला का विशेष महत्व है। रूस ने १६ जून १९७६ को ही

१- वही, वि० और वै० पृ० ६५।

* ११ जुलाई १९७९ को आस्ट्रेलिया के पश्चिमी क्षेत्र में आकाश से हिन्द महासागर में विश्व के मानवों को भयभीय करती हुई गिर गई किन्तु जन धन की हानि नहीं हुयी।

केरियट राकेट के द्वारा आठ उपग्रहों का एक समूह क्रीसमेस शृंखला में ही अन्तरिक्ष में प्रक्षेपित किया । इन उपग्रहों में अन्तरिक्ष की खोज करने के लिए यन्त्र रक्खे गये हैं ।

भारत ने १९ अप्रैल सन् १९७५ में सोवियत प्रक्षेपण स्थान से भारतीय इंजीनियरों द्वारा निर्मित कृत्रिम प्रथम उपग्रह 'आर्य भट्ट' अन्तरिक्ष में प्रक्षेपित किया जिसने अन्तरिक्ष के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी दी है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में, मनुष्य ने अपने उड़ान सम्बन्धी प्रयासों का प्रारम्भ पक्षियों की उड़ान से प्रेरणा लेकर किया । इस क्षेत्र में जो अनुसंधान कार्य उसने किया, उसमें वह गुब्बारों, वायुपोत, विमान, आधिस्वनिक विमान, राकेट जैसी कड़ियों को पार करता, आज कृत्रिम उपग्रहों तक पहुँच गया है । मनुष्य ने वायुमण्डल पर विजय प्राप्त की और अब अन्तरिक्ष पर अपना आधिपत्य स्थापित करता हुआ सतत प्रयत्नशील है ।[1] अमेरिका और रूस के वैज्ञानिकों की योजना के अन्तर्गत, अन्तरिक्ष स्टेशनों की स्थापना के बाद अन्तरिक्ष यात्री यानों में बैठकर इन स्टेशनों में जाया करेंगे । चन्द्रमा पर भी स्टेशन और कैम्प स्थापित किये जायेंगे तथा निकट भविष्य में ही मंगल एवं अन्य ग्रहों पर मानव भेजा जाएगा । इस सन्दर्भ में अमरीका की पहली मानव युक्त अंतरिक्ष गाड़ी का सफल परीक्षण १८ जून १९७७ को किया जा चुका है । इसी अन्तरिक्ष गाड़ी ने (स्पेश शटल) जिसका नाम 'एंटरप्राइज' है, बोइंग ७४७ जम्बो जैट के बल पर सफलता पूर्वक उड़ान की । इस गाड़ी पर अंतरिक्ष यात्री फ्रेडहेज और गोर्डन फुलटर्न सवार थे ।

यह गाड़ी यात्रियों और उपकरणों को अन्तरिक्ष स्टेशनों तक ले जाने और वापस लाने के लिए बनाई गयी है । यह गाड़ी धरती से राकेट की भाँति रवाना होती है और वापसी यात्रा में विमान की भाँति उतरती है ।[2] इस तरह ग्रहों एवं उपग्रहों में अंतरिक्ष गाड़ी द्वारा यात्राओं का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है । फिर भी राकेट एवं कृत्रिम उपग्रहों के इस युग में भी हवाई यात्रा के लिए विमानों का ही उपयोग किया जाता है ।

५. ०. ५. आधुनिक भारत में विमान और वैमानिकी–भारत में विमान

देखिए–मुक्ता, सम्पादक एवं प्रकाशक, विश्वनाथ, कार्यालय ई–३–झंडे वाला एस्टेट, रानी झांसी मार्ग, नई दिल्ली–५५, अक्टबर, प्रथम सं० १९७९, अंक ३१७, पृ०–७४ ।

१– वि० और वै०, पृ० २८८ ।

२– दैनिक जागरण, १९ जून १९७७ में प्रकाशित समाचार

उड़ान का सबसे पहला प्रदर्शन कदाचित् सन् १९११ में हुआ । १८ फरवरी १९११ ई० को फ्रांसीसी चालक पिकेट ने डाक ले जाने के उद्देश्य से इलाहाबाद से नैनी तक (६ मील) उड़ान की थी । इसी उड़ान से विश्व में पहली बार विमान द्वारा डाक भेजना आरम्भ हुआ था ।

२ दिसम्बर १८९२ ई० को कलकत्ता में जन्में, आज के पूर्वी बंगाल में लकुटिया के एक जमीदार श्री पी० एल० राय के द्वितीय पुत्र, १८ वर्षीय, इन्द्रलाल राय ने अप्रैल १९१७ ई० में रायल फलाइंग कोर में भर्ती होकर, भारत का प्रथम विमान चालक होने का गौरव प्राप्त किया । इनका सारा परिवार इंगलैण्ड में रहता था ।[1]

जहाँ तक नागरिक विमान यात्रा की व्यवस्था का प्रश्न है तो वह दिसम्बर १९१८ ई० में प्रारम्भ हुई तथा सरकारी तौर पर पेरिस में होने वाली शान्ति कान्फ्रेन्स के सदस्यों को ले जाने के लिए हवाई यात्रा का पहली बार प्रबन्ध किया गया था, किन्तु भारत में सन् १९२० के जनवरी मास में (अंग्रेजों की कृपा से) कराँची–बम्बई के लिए एक लोक सेवा का आयोजन किया गया था । यह भारत की पहली लोक सेवा थी । भारत में इस लोक वैमानिकी का वास्तविक प्रारम्भ ३० मार्च सन् १९२९ को माना जाता है । जब लन्दन-कराँची सेवा का उद्घाटन हुआ था ।[2]

जहाँ तक आधुनिक भारत में विमानों के निर्माण का सम्बन्ध है ३० अप्रैल सन् १९४९ ई० को भारत निर्मित पहले विमान ने सफल उड़ान की । सन् १९४९ में एच० टी०–२ नाम के ट्रेनर विमान का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ । इसने अपनी पहली उड़ान १३ अगस्त सन् १९५१ ई० को की थी ।[3] फिर तो अनेक प्रकार के विमानों का निर्माण होने लगा ।

१– वही, वि० और वै०, पृ० ४९ ।

२– वही, वि० और वै०, पृ० ५३ से ५५ तक ।

३– वही, पृ० ६३ ।

अध्याय ६

भौतिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन

६. ०. भौतिक विज्ञान की आधुनिक प्रमुख उपलब्धि परमाणु विज्ञान है। प्राचीन काल में भी इस विज्ञान का समुचित विकास हुआ था। इन सन्दर्भो का एक संक्षिप्त परिचय यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

६. १. **प्राचीन एवं अर्वाचीन परमाणु विज्ञान**–पदार्थ रचना के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय दार्शनिक कणाद ने यह अनुमान किया था कि द्रव्य अति सूक्ष्म अविभाज्य कणों से मिलकर बना है, जिन्हें परमाणु कहते हैं। ये परमाणु परस्पर मिलकर बड़े कण द्वयणुक और त्र्यणुक बनाते हैं। इनका विचार था कि इस अनुमान के आधार पर प्राकृतिक घटनाओं की सबसे अधिक संतोषप्रद व्याख्या की जा सकती है।[1] आधुनिक विज्ञान के अन्तर्गत परमाणु सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् १८०८ ई०में मानचैस्टर के स्कूल शिक्षक जॉन डाल्टन ने किया। इसी सिद्धान्त के विकास[2]

१– देखिए, कणाड का वैशेषिक दर्शन, आचार्य ढुण्ढि राज शास्त्री एवं श्रीनारायण मिश्र, चतुर्थाध्याय, प्रथमाह्निकम्

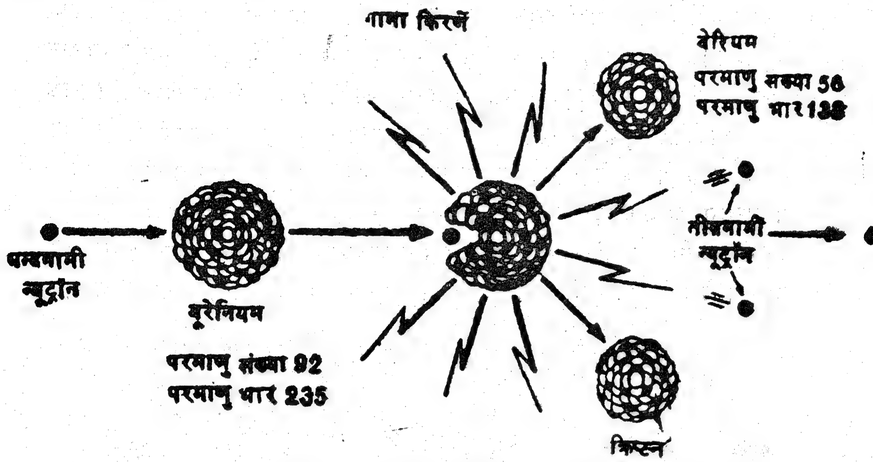
सद्कारणवन्नित्यम् १–विद्यमान कारणहीन पदार्थ (परमाणु) नित्यहै।

तस्यकार्य्यं लिंगम् २–परमाणु द्वाय सँयोग से द्वयणुक एबं द्वयणुक त्रयसंयोग से त्र्यणुक की पद्धति से उपलक्ष्यमानघटपट आदि स्थूल कार्य (अपने मूल कारणीभूत) परमाणु की अनुमति में हेतु होते हैं। पृ०–२१

विषयवस्तु द्वयणुकापि क्रमेणारब्ध स्त्रिविधो–और पार्थिव विषय रूप द्रव्य जो द्वणुक इत्यादि क्रम से परमाणु ओं से निर्मित है–पृ० १९

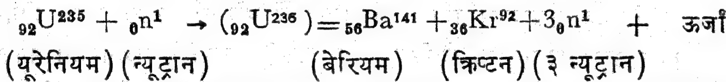
२– परमाणु के नाभकीय विखण्डन पर १९३९ में आँटोहान स्ट्रासमैन तथा मिस माइट्नर ने (यूरेनियम पर न्यूटानों द्वारा बमबारी करके) सफलता प्राप्त की थी।

की परम्परा में जर्मन वैज्ञानिकों ने परमाणु बम के निर्माण का आधार खोज



चित्र–१० परमाणु संख्या ३६ परमाणु भार ९५

जब मन्दगामी न्यूट्रान U^{235} से टकराता है तो उसके द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है तथा यूरेनियम का आइसोटोप U^{236} बन जाता है। U^{236} अत्यन्त अस्थायी होने के कारण तुरन्त ही दो खण्डों में टूट जाता हे। तथा न्यूट्रानों व ऊर्जा का उत्सर्जन करता है :



$${}_{92}U^{235} + {}_{0}n^{1} \rightarrow ({}_{92}U^{236}) = {}_{56}Ba^{141} + {}_{36}Kr^{92} + 3\,{}_{0}n^{1} \quad + \quad \text{ऊर्जा}$$

(यूरेनियम) (न्यूट्रान) (बेरियम) (क्रिप्टन) (३ न्यूट्रान)

फिशन की एक क्रिया से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा की गणना निम्न प्रकार से की जा सकती है :

न्यूट्रान का द्रव्यमान =१.००८६६५ amu

यूरेनियम नाभिक का द्रव्यमान=२३५.११७५ amu

बेरियम नाभिक का द्रव्यमान=१४०.९५७७ amu

क्रिप्टन नाभिक का द्रव्यमान=९१.९२६४ amu

आप जोड़ तथा घटाकर यह आसानी से देख सकते हैं कि एक फिशन की क्रिया में लगभग ०.२१६०७ amu द्रव्यमान ऊर्जा में बदल जाता है। क्योंकि १ amu=९३१ Mev होता है, अतः उत्पन्न ऊर्जा

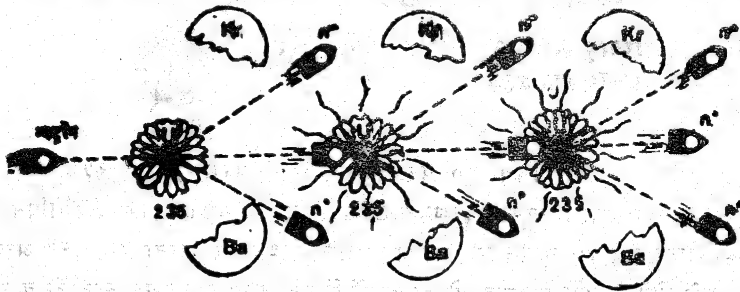
$$E = 0.21607 \times 931 = 200 \text{ Mev लगभग}$$

अतः एक क्रिया में ही लगभग २०० Mev ऊर्जा मुक्त होती है।

गणना द्वारा यह देखा जा सकता है कि १ ग्राम यूरेनियम के विखण्डन में लगभग 5.2×10^{23} Mev या 2.3×10^{4} KWH विद्युत ऊर्जा उत्पन्न हो सकती है। इतनी ऊर्जा २० टन T. N. T. (trinitrotolune) में विस्फोट करने से उत्पन्न होती है।

निकाला । तत्पश्चात् परमाणु बम के सिद्धान्त पर[1] परमाणु,[2]

१– परमाणु के केन्द्र में पाये जाने वाले नाभिक के विखण्डन या टूटने की क्रिया (फिशन) में यूरेनियम (एक धातु) के एक नाभिक के टूटने पर ३ न्यूट्रान उत्पन्न होते है। ये न्यूट्रान पास के अन्य नाभिकों पर क्रिया करते हैं जिसके विभाजन (फिशन) के फलस्वरूप अन्य न्यूट्रान उत्पन्न होते है। जो स्वयं और अधिक नाभिकों के फिशन में भाग लेकर न्यूट्रान उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार नाभिकों के फिशन की एक श्रृंखला सी बन जाती है। इसे श्रृंखला अभिक्रिया कहते है। इसमें अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है। स्पष्टीकरण के लिए चित्र ९ एवं १० तथा नीचे दिये गये समीकरण देखिए। पृ० १९७ की पाद टिप्पणी पर चित्र–१०



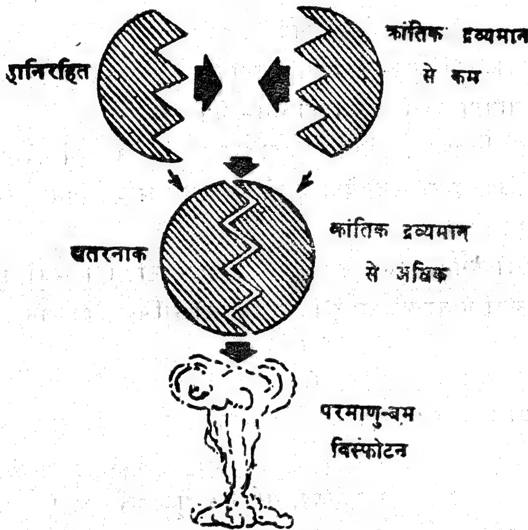
चित्र–९

यदि यह श्रृंखला अभिक्रिया नियन्त्रण में चले तो उससे प्राप्त होने वाली अपार ऊर्जा को मनुष्य के लिए कल्याणकारी कामों में लाया जा सकता है। यही नाभिकीय रिऐक्टर का सिद्धान्त है। इसके विपरीत यदि यह नियन्त्रण से बाहर हो जाए तो यही ऊर्जा अति विध्वंशकारी हो जाती है। यही परमाणु बम का सिद्धान्त है। देखिए नूतन माध्यमिक भौतिकी भाग २, कृष्णपाल सिंह, विद्या भवन, अमीनाबाद, लखनऊ, पंचम संस्करण सन् १९७८, परमाणु ऊर्जा।

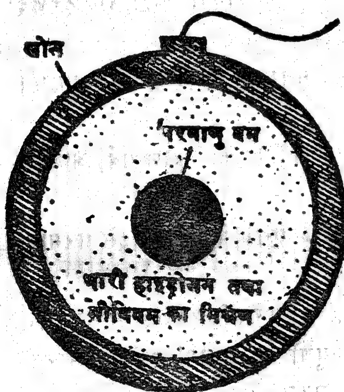
२– परमाणु बम–इस बम को बनाने के लिए यूरेनियम ९२ यू २३५ (हीरोशिमा पर डाला गया बम)। या प्लुटोनियम ९४PU २३९ (नागासाकीं पर डाला गया बम) का प्रयोग किया जाता है। इसमें शुद्ध यू २३५ के दो टुकड़े इस प्रकार लिए जाते हैं कि प्रत्येक का द्रव्यमान क्रान्तिक द्रव्यमान (यूरेनियम की वह कम से कम मात्रा जो उसके स्वतः ही विस्फोट होने के लिए आवश्यक है, लगभग ९ किलोग्राम) के आधे से कुछ अधिक हो। इन दोनों टुकड़ों को एक मजबूत कवच में इस प्रकार रखा जाता है कि अलग–अलग रहते हुए आवश्यकता पर यान्त्रिक विधि से उन्हें मिलाया जा सके। यह कवच इतना मजबूत होता है कि जब तक विखण्डन क्रिया समाप्त नहीं होती तब तक कवच फटता नहीं है, पर कवच सहित बम का वजन कई टन तक होता है।

हाइड्रोजन[1] एवं नत्रजन बम आदि विनाशकारी आग्नेयास्त्रों का निर्माण हुआ । द्वितीय

जब तक यूरेनियम के दोनों टुकड़े अलग-अलग रहते है, वे पूर्णतः सुरक्षित रहते है । परन्तु जैसे ही किसी यान्त्रिक विधि से उनको मिला दिया जाता है, वैसे ही एक भयंकर विस्फोट होता है । विस्फोटक पदार्थ (टी० एन० टी०) के विस्फोट से उत्पन्न धक्के से यूरेनियम के पिण्ड परस्पर मिल जाते है । प्रतिक्रिया प्रारम्भ करने के लिए न्यूट्रान वायुमण्डल में हर समय उपस्थित रहते हैं । अनियंत्रित श्रृंखला अभिक्रिया प्रारम्भ हो जाने पर परमाणु बम अपना प्रभाव दिखाने लगता है । देखिए चित्र ११ ।



चित्र–११



चित्र–१२

१–हाइड्रोजन बम सन् १९५२ ई० में अमेरिकन वैज्ञानिकों ने परमाणु बम से १००० गुना अधिक शक्तिशाली तथा भयानक हाइड्रोजन बम का निर्माण किया था । साधारणतया इस बम में लीथियम और भारी हाइड्रोजन का यौगिक लीथियम हाइड्राइड प्रयुक्त होता है । इसके ऊपर एक कवच जो यू २३५ का ही बना होता है, चढ़ा रहता हैं । हाइड्रोजन बम के अन्दर एक परमाणु बम भी रहता है, जो नाभकीय संलयन की क्रिया को

विश्व युद्ध के दौरान, परमाणु बम के विशानकारी दुष्परिणाम जापान के हीरोशिमा और नागासाकी शहरों के सर्वनाश में क्रमश: ६ एवं ९ अगस्त १९४५ ई० को देखा जा चुका है ।

इन बमों को अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमैन के आदेश से वायु सेना के विमान के० बी०–२९ द्वारा डाला गया था जिसके चालक कर्नल टिबेट्स थे ।

इन बम जैसे, आग्नेयास्त्रों तथा अन्य अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन रामायण[1] और महाभारत में उपलब्ध है । इनमें आग को बुझाने वाला वरुणास्त्र, वायु का वेग कुण्ठित करने वाला शैलास्त्र[2], आग्नेयास्त्र[3] एवं नारायणास्त्र,[4] ब्रह्मास्त्र[5] (आग की

प्रारम्भ करता है । विखण्डन के विपरीत यदि हल्के नाभिकों को मिलाकर एक भारी नाभिक बना लिया जाय तो *बन्धन ऊर्जा में यह अन्तर ऊर्जा के रूप में प्राप्त हो जायेगा । इस क्रिया को नाभिकीय संलयन कहते हैं ।) इस प्रकार परमाणु बम बिखण्डन, लीथियम हाइड्राइड संलयन एवं यूरेनियम का खोल विखण्डन क्रिया द्वारा ऊर्जा देता है और यह बम अधिक विनाशकारी बन जाता है । देखिए चित्र १२

बन्धन ऊर्जा *सन् १९०५ में प्रतिपादिक आइन्सटाइन के ऊर्जा सम्बन्धी सूत्र से द्रव्यमान ऊर्जा में बदल जाता है । इस ऊर्जा को नाभिक की बन्धन ऊर्जा कहते हैं ।

$$E = M C^2$$

सूत्र इ=एम सी²

इ या E=ऊर्जा, एम या M=मात्रा, सी या C=प्रकाश का वेग प्रति सेकेण्ड

१– वही, बा० रा० भाग १ बालकाण्ड, सर्ग २७, पृ० ८६–८७ ।
एवं वही, सर्ग, ५६, पृ० १३९–१४१

२– महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, संख्या एवं पूर्ण संख्या ८, जून १९५६ अध्याय १७१, पृ० १४२९, श्लोक ९–१० ।

३– वही, महाभारत, वर्ष २, सं० १ पूर्ण सं० १३, नवम्बर १९५६, उद्योग पर्व अध्याय १८०, पृ० २५१३, श्लोक १२ ।

४– वही, महाभारत, वर्ष २, सं० ७, पूर्ण सं० १९, मई १९५७, द्रोण पर्व, अध्याय १९९, पृ० ३७२४, श्लोक १५ ।

५– दिल्ली विश्व विद्यालय के भौतिक विभाग के प्रो० एस० के० त्रिखाइसे परमाणु आयुध ही मानते हैं ।
देखिए, दैनिक जागरण, साप्ताहिक परिशिष्ट, २९ फरवरी १९७७ में पर डॉ० परमानन्द का लेख 'महाभारत में परमाणु आयुधों का प्रयोग' एवं महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय १८४, श्लोक १८, पृ० २५२० ।

ज्वाला प्रकट करने वाला) आदि प्रमुख है । एक आग्नेयास्त्र ने एक अक्षौहणी[1] सेना को जलाकर नष्ट किया था ।[2] नारायणास्त्र भी शरीर को आग में झुलसाने एवं जलाने वाला था । महाभारत में नारद ने इन अनेक दिव्यास्त्रों के प्रदर्शन हेतु अर्जुन को मना किया है ।[3]

पं० मुल्कराज शर्मा 'आनन्द' ने अपनी पुस्तक[4] में लाहौर के प्रसिद्ध समाचार पत्र[5] का हवाला देते हुए लिखा है कि प्राचीन भारतीय पुस्तकों में अस्त्र-शास्त्रों का यह वर्णन इतना अधिक मिलता है कि पाठक उस समय के युद्ध विज्ञान के संबंध में विस्मित रह जाता है । पत्र में लिखा हैं कि आधुनिक परमाणु बम हमें हिन्दू लोगों के आग्नेयास्त्र का स्मरण दिलाता है जो दूर-दूर तक प्रलय मचा सकता था । हालहैड ने एक प्राचीन संस्कृत पुस्तक को, जिसमें अग्नि अस्त्रों का वर्णन दिया हुआ है, उद्धृत करते हुए लिखा है । 'पाठक यह देखकर विस्मय में डूब जायेंगे कि ऐसी प्राचीन पुस्तक में, जिसके समय का निर्धारित करना भी असंभव है, अग्नि अस्त्रों के प्रयोग का निषेध है और उनके हृदयों में वह संदेह ताजा हो जायेगा जिसे दीर्घ काल से निरर्थक कहा जा रहा है कि अलक्षेन्द्र को भारत में सचमुच इसी प्रकार के किसी अस्त्र से वास्ता पड़ा था । आग्नेयास्त्र की कई असाधारण विशेषताओं में से एक यह थी कि एक बार छूट जाने पर वह अग्नि की कई धाराओं में परिवर्तित हो जाता था जिनमें से प्रत्येक का प्रभाव वही होता था और उसकी अग्नि एक बार प्रज्वलित होने के पश्चात् शान्त नहीं की जा सकती थी ।'

ड्यूटन्स लिखता है कि सालमोनैन्स ने ब्राह्मणों की कड़क की नकल करने का यत्न किया था । उसके उल्लेख का वह संदर्भ विचारणीय है जिसमें उसने बताया है कि अलक्षेन्द्र भारत वर्ष में अपने विजय अभियान को इस कारण न बढ़ा सका कि भारतवासियों ने कुछ विचित्र अग्नि अस्त्रों का उपयोग किया था । उसके शब्द हैं 'यह अति बुद्धिमान लोग विपासा और गंगा नदी के मध्य के प्रदेश में वास करते हैं । अलक्षेन्द्र ने उनके देश में प्रवेश नहीं किया और न ही वह उसे विजय कर सकता था क्योंकि वह लोग आक्रमण कारियों का सामना करने के लिए रणक्षेत्र में

१– चतुरंगिणी सेना का एक परिमाण, १,०९,३५० पैदल, ६५,६१० घोड़े, २१, ८७० रथ और इतने ही हाथी ।

२– महाभारत (पृ० २०० सन्दर्भ ४) अध्याय २०१, पृ० ३७४०, श्लोक ५२–५३ ।

३– महाभारत, पृ० २०० सन्दर्भ २, अध्याय १७५, पृ० १४३९ से १४४१ ।

४– धनुर्धारी राम प्रथम संस्करण ।

५– ऐस्ट्रोलौजिकल मैगजीन 'दि ट्रिब्यून' ७ अक्टूबर, १९४५ का अंक ।

नहीं आते । वह पवित्र ईश्वर के प्यारे लोग अपने गृह में से ही प्रलय और विद्युत फेंक कर शत्रु को नष्ट कर देते हैं ।'

पं० मुल्कराज शर्मा 'आनन्द' आगे लिखते हैं कि यह उदाहरण प्रमाणित करते हैं कि प्राचीन हिन्दू, परमाणु शक्ति के प्रयोग की विधि और उसे भले कार्यों में उपयोग करने के ढंगों से अवश्यमेव परिचित रहे होंगे ।[1] हमें केवल हठधर्मी, प्राचीन आचार्यों की बुद्धि एवं वैज्ञानिक प्रगति पर सन्देह न करके, उनके अन्वेषणों और अनुसंधानों से, (जो सहस्रों वर्षों तक होते रहे थे) लाभ उठाने का प्रयत्न करना चाहिए । निःसन्देह जब अज्ञान से ज्ञान उत्पन्न हो सकता है तो फिर ज्ञात ज्ञान से लाभ न उठाना, विशेष ज्ञान के ज्ञान में बाधा तो है ही ।

६.२. **परमाणु बम के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन**–इस परमाणु युग में आधुनिक विज्ञान ने परमाणु[2] के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए बृहत् से लघु की अधिक शक्ति स्वीकार की है । क्योंकि समूचे तत्व से परमाणु अधिक शक्तिशाली हैं ।

मानस में परमाणु शब्द के उल्लेख[3] के साथ हमारा ध्यान कणाद ऋषि के परमाणु ज्ञान की ओर भी आकर्षित किया गया है ।

आधुनिक विज्ञान के अनुकूल लघु की महत्ता को महान स्वीकार करते हुए तुलसी ने एक चतुर सखी से कहलावाया है कि–

बोली चतुर सखी मृदु बानी ।
तेजवंत लघु गनिअ न रानी ।। १।२५५।३
कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा ।
सोषेउ सुजसु सकल संसारा ।।
रवि मंडल देखत लघु लागा ।
उदयँ तासु त्रिभुवन तम भागा ।। १।२५५।४

१– धनुर्धरी राम, भूमिका, पृ० १६–१७

२– किसी तत्व का वह छोटा से छोटा कण जो रासायनिक क्रिया में तो भाग ले सकता है किन्तु स्वतंत्र अवस्था में नहीं रह सकता, उस तत्व का परमाणु कहलाता है । आधुनिक वैज्ञानिकों ने इसे कई भागों में विभाजित कर दिया है जैसे–इलेक्ट्रान, प्रोटान आदि । एक से परमाणुओं वाले पदार्थों को तत्व कहते हैं ।

३– लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सरचंड ।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु को दंड ।। मानस ६/०

मंत्र परम लघु जासु, बस बिधि हरिहर सुर सर्ब ।
महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब ।। १।२५६
काम कुसुम धनु सायक लीन्हें ।
सकल भुवन अपनें बस कीन्हें ।। १।२५६।१

उपर्युक्त चौपाइयाँ एवं दोहा जहाँ साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की अभिव्यक्ति हैं, वहीं लघु के अस्तित्व को महान स्वीकार करने में कोई व्यवधान नहीं डालते ।

पुस्तकीय, पत्र एवं पेन जैसे छोटे बमों को छोड़कर बड़े बमों को फेंकने के लिए यान, मिसाइल या अन्य कोई साधन प्रयोग किया जाता है । मानस में धनुष रूपी साधन से, अग्नि वाण या आग्नेयास्त्र (विसिष कृसानू) छोड़ा जाता है । राम लक्ष्मण से कहते हैं–

लछिमन बान सरासन आनू ।
सोषों बारिधि बिसिख कृसानू । ५।५७।१
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा ।
यह मत लछिमन के मन भावा ।।
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला ।
उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ।। ५।५७।३

जिस प्रकार परमाणु बम में प्रयुक्त यूरेनियम या प्लूटोनियम के दोनों खण्डों के परस्पर मिलने से अनियंत्रित शृंखला प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है और १/दस लाख सेकेण्ड

विशेष ज्ञान के लिए देखिए–वही मानस पीयूष खण्ड ६, लंका काण्ड, पृ० १ से ५ तक

१८ निमेष=१ काष्ठा, २ काष्ठा=१ लव, १५ लव=१ मुहूर्त,३०मुहुर्त=१ दिन रात । यहाँ परमाणु वह काल भेद है जो वस्तु सत्ता के एक परमाणु द्वारा भोगा जाता हो अर्थात् एक परमाणु पदार्थ अपनी गति में जितना समय लेता हो वह एक परमाणु काल कहलाता है । यह काल निश्चित नहीं है और यह भेद इतना सूक्ष्म है कि अगोचर है (शब्द कल्पद्रुम के आधार पर) ।

नोट– १ जो कार्य रूप पृथ्वी आदि स्थूल पदार्थों का अन्तिम भाग है (जिसका और कोई विभा गनहीं हो सकता) तथा जो कार्यावस्था को अप्राप्त असंयुक्त एवं नित्य है, उसे परमाणु जानना चाहिए । उसके परस्पर मिलने से ही मनुष्य को भ्रमवश साकार वस्तु की प्रतीति होती है । १ । दो परमाणु मिलकर एक अणु होते हैं और तीन परमाणु एक त्रसरेणु कहा जाता है । ५ ।
–श्री भद्भागवत, स्कन्ध ३, अध्याय ११ के श्लोक १ एवं ५ के आधार पर

में पूरी होकर क्षण भर में ही लाखों डिग्री सेण्टीग्रेट तक ताप पहुँच जाता है तथा यकायक भयंकर विस्फोट भी सुनाई पड़ता है। इस विस्फोट से अन्धा कर देने वाले प्रकाश की दमक तथा अत्यधिक मात्रा में रेडियो एक्टिव पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

इस बम के विस्फोट से लगभग ७०^{१०} डि० से० ताप और लाखों वायु-मण्डलीय दाब के बराबर दाब उत्पन्न होता है। इसके प्रभाव से २–५ किलोमीटर की दूरी की लकड़ी जलकर राख हो जाती है और एक कि० मी० की दूरी का प्रत्येक मकान और मनुष्य नष्ट हो जाता है। कई किलोमीटर दूर तक ज्वलन शील पदार्थों में आग लग जाती है।

यदि इस बम को समुद्र में डाल दिया जाय तो जल उबलने लगता है और लाखों जल–जीव मरते एवं बेचैन हो उठते हैं। जल का वाष्पन एवं शोषण होता है। मानस में अग्नि बाणों के प्रभाव का चित्रण इसी सन्दर्भ में दृष्टव्य है।

मानस में जहाँ एक ओर राम के अग्नि बाणों का प्रभाव व्यष्टि एवं समष्टि पर दिखाया गया है[१], वहीं एक स्थल पर धनुष की घोर और भयंकर टंकार से राक्षसों को बहरा और व्याकुल तथा बेहोश होता भी दिखाया गया है।

प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कटोर घोर भया वहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥ ३।१८।छं०

एक अन्य स्थल[२] पर भी उक्त बात कही गई है तथा आग्नेयास्त्र से प्रकाश उत्पन्न होने का उल्लेख करते हुए गोस्वामी जी लिखते है–

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा।
पावक सापक सपदि चलावा॥
भयउ प्रकाश कतहुँ तम नाहीं।
ग्यान उदय जिमि संसय जाहीं॥ ६।४६।२

विभीषण राम के आग्नेय बाणों (आग्नेयास्त्रों) की शक्ति एवं सामर्थ्य की

१– (क) पावक सर सुबाहु पुनि मारा।
अनुज निसाचर कटकु सँघारा॥ १।२०९।३

(ख) पावक सर छाँड़ेउ रघुबीरा।
छन महुँ जरे निसाचर तीरा॥ ६।९०।२

२– प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टकोरा।
रिपु दल बधिर भयउ सुनि सोरा॥ ६।६८।१

प्रशंसा करते हुए विनम्रता पूर्वक पहले सागर से प्रार्थना करने के लिए ही आग्रह करते हैं–

कह लंकेस सुनहु रघुनायक ।
कोटि सिंधु सोषक तव सायक ।।
जद्यपि तदपि नीति असि गाई ।
बिनय करिअ सागर सन जाई ।। ५।४९।४

विभीषण के इस आग्रह को राम 'सखा कही तुम्ह नीकि उपाई' कह कर ज्यो ही स्वीकृति देते है त्यों ही-लक्ष्मण को यह सलाह अच्छी नहीं लगती है ।[1] क्योंकि वे राम के अग्नेय वाणों की शक्ति को भली प्रकार जानते थे । वे कहते हैं–

नाथ दैव कर कवन भरोसा ।
सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा ।। ५।५०।२

राम, लक्ष्मण को धीरज रखने की सलाह देकर पहले तो समुद्र की पूजा[2] करते हैं किन्तु तीन दिन की पूजा के पश्चात्[3] लक्ष्मण के आग्रह को स्वीकार करते हुए क्रोधित होकर लक्ष्मण से 'सरासन' और 'बान' माँगते हुए समुद्र को सुखा देने की बात कहते हैं[4] जो लक्ष्मण को बहुत अच्छी लगती है ।

राम अपने सर संधान से समुद्र के अन्दर वैसा ही दृश्य उपस्थित कर देते हैं जैसा परमाणु बम को समुद्र में डालने से उपस्थित होता है–

संधानेउ प्रभु बिसिख कराला ।
उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ।। ५।५७।३
मकर उरग झष गन अकुलाने ।
जरत जंतु जल निधि जब जाने ।। ५।५७।४

राम के अग्नि बाणों की जल शोषण शक्ति का वर्णन करते हुए शुक आदि

१– मंत्र न यह लछिमन मन भावा ।
राम बचन सुनि अति दुख पावा ।। ५।५०।१

२– मानस ५।५०।३

३– वही, ५।५७

४– लछिमन बान सरासन आनू ।
सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू ।। ५।५७।१
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा ।
यह मत लछिमन के मन भावा ।। ५।५७।२

दूतों ने रावण से कहा हैं 'सक सर एक सोषि सत सागर'[1] तथा वानरों की शक्ति का वर्णन करते हुए राम के बाणों की इसी शक्ति[2] की ओर इंगित किया । यही नहीं, यदि भाषा में भावों की अभिव्यक्ति की सही क्षमता का आकलन किया जाय तो अगस्त्य ऋषि द्वारा समुद्र के जल शोषण की घटना, जिसका मानसकार ने स्पष्ट रूप से संकेत किया है,[3] समुद्र में परमाणु बम के प्रभाव की दृष्टि से अतिश्योक्ति ही न रह कर समासोक्ति लगने लगती है ।

जिस आश्रम में आक्रमणकारी एवं रक्षणशील आयुधों की शिक्षा दी जाती हो उसका अधिष्ठाता, विज्ञान वेत्ता, तत्कालीन, आधुनिक विज्ञान के समान उच्च कोटि की शिक्षा का व्यवस्थापक अपनी परमाणु शक्ति के द्वारा समुद्र का शोषण कर ले या शोषित समुद्र को पुनः जलमग्न कर दे, तो इसमें कल्पना की क्या बात है ।

अगस्त्य ऋषि के द्वारा समुद्र शोषण की भाँति राम द्वारा भी समुद्र के जल को सोखने की बात हनुमान कहते हैं–

प्रभु प्रताप बड़वानल भारी ।
सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी । ६।०।१

इस जल शोषण की क्रिया की स्वकारोक्ति तुलसी दास जी ने स्वयं समुद्र से कराई है–

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई ।
उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई । ५।५८।४

इसके अतिरिक्त मेघनाद[4] एवं रावण[5] द्वारा युद्ध में किये गए प्रयोग बर बस हमें परमाणु बम और कीटाणु बम की स्मृति दिलाते हैं ।

१– मानस–५।५५।१

२– परम क्रोध मीजहिं सब हाथा ।
आसु पैन देहि रघुनाथा ॥
सोषहिं सिंधु सहित झाष ब्याला ॥
पूरहिं नत भरि कुधर बिसाला ॥ ५।५४।३

३– कहँ कुंभज कहाँ सिंधु अपारा ।
सोषेउ सुजस सकल संसारा ॥ १।२५५।४

४– नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा ।
महि ते प्रगट होहिं जलधारा ॥ ६।५१।१

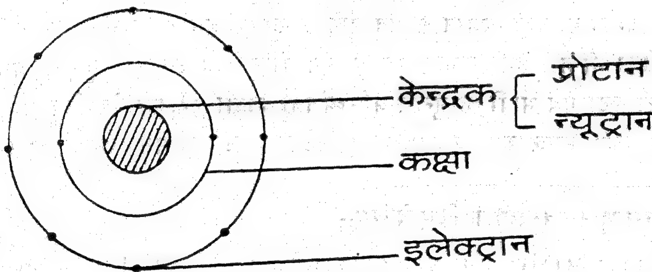
५– जब कीन्ह तेहिं पाषंड ।
भए प्रगट जंतु प्रचंड । ६।१००।छं०–१

उपर्युक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आधुनिक युग के परमाणु की सत्ता, महत्ता, उपयोगिता एवं उसका जैसा प्रभाव आज कल देखने में आता है, वैसा ही वर्णन मानस में विद्यमान है। निःसंदेह मानस में अगस्त्य ऋषि द्वारा समुद्र-जल-शोषण तथा विश्वामित्र एवं अगस्त्य जैसे विज्ञान वेत्ताओं से शिक्षा, दीक्षा एवं आर्शीवाद प्राप्त करने वाले राम के आग्नेयास्त्रों द्वारा समुद्र का जल शोषण तथा फलस्वरूप जल मार्ग को पुल निर्माण के लिए निरापद बनाना, युद्ध में अनेक शत्रुओं के मारने के लिए अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोगों के जो वर्णन विद्यमान है, वह हमारे प्राचीन वैज्ञानिक ज्ञान का ही गुणानुवाद है और साहित्य के माध्यम से अमरता प्राप्त करने में भी सफल है।

६.३. **परमाणु संरचना के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन**–आधुनिक विज्ञान यह स्वीकार करता है कि प्रत्येक परमाणु की संरचना में कई स्थाई और अस्थाई मूलकण[1] होते है। प्रत्येक परमाणु में एक केन्द्रक होता है जिसमें प्रोटॉन और न्यूटान रहते हैं। इसके चारों ओर कक्षाओं में इलेक्ट्रान वैसे ही चक्कर लगाया करते हैं, जैसे सूर्य के चारों ओर, भिन्न-भिन्न कक्षाओं में अन्य ग्रह।[2]

१– (क) स्थाई कण–इलेक्टान, प्रोटान, प्रेजिटान
एन्टि प्रोटान–न्यूट्रिनों–फोटान तथा ग्रेविटॉन।
(ख) अस्थाई कण न्यूटन एवं समस्त प्रकार के मेंसान।

२–



चित्र–१३

सन् १९३२ ई० में कॉक क्राफ्ट तथा वाल्टन नामक वैज्ञानिकों ने लीथियम (एक धातु तत्व) पर प्रोटॉन की बमबारी करा कर हीलियम (एक तत्व) प्राप्त की और यह प्रमाणित कर दिया कि प्रोटॉन की बमबारी से एक तत्व को दूसरे तत्व में बदला जा सकता है।

ठीक इसके ९ वर्ष बाद सन् १९४१ ई० में ब्रेन ब्रिज तथा शेरर ने पारे पर जिसकीपरमाणु संरचना[1] २,८,१८,३२,१८,२ है, प्रोटॉनो की बमबारी से अस्थाई सोना प्राप्त किया जिसकी परमाणु संरचना २,८,१८,३२,१८,१ होती है।

उक्त प्रयोगों के आधार पर लोहे को जिसकी परमाणु संरचना २,८,१४,२ है सोने में बदलने की संभावनाओं से अस्वीकार नहीं जा सकता है, जिसकी २,८,१८ ३२,१८,१ परमाणु संरचना होती है।

भारतीय विद्वान नागार्जुन ने अपनी पुस्तक रसरत्नाकर में ताँबे को, जिसकी परमाणु संरचना २,८,१८,१ है, स्वर्ण में बदलने की कई बिधियाँ लिखी हैं।[2] पारस पत्थर का वर्णन तो भारतीय साहित्य[3] के अतिरिक्त जन-जन की जिह्वा पर चढ़ा हुआ है जिसके बारे में ऐसी मान्यता है कि स्पर्श मात्र से लोहा सोने में बदल जाता है।

तुलसी अपनी प्राचीन साहित्यिक विरासत के माध्यम से प्राप्त ज्ञान को मानस में प्रयुक्त करते हुए सतसंगति का महत्व गाते हैं—

सठ सुधरहिं सत संगति पाई।
पारस परस कुधातु सुहाई ॥ १।२।५

निस्सन्देह उपर्युक्त चौपाई जहाँ साहित्यक दृष्टि से सुन्दर, सामाजिक दृष्टि से मार्ग दर्शक है, वहीं विज्ञान सम्मत होने के कारण हमारे प्राचीन भारतीय ज्ञान की धरोहर भी है। साहित्यकार भले ही इन पंक्तियों में उपमा, अनुप्रास आदि अलंकारों की छटा एवं भावों की सुन्दर अभिव्यंजना देखता रहे, पर वैज्ञानिक इन पंक्तियों के रहस्य को समझ कर आल्हादित हो उठेगा। उसका मन पारस की साहित्यक

१— परमाणु संरचनाओं के लिए देखिए—

Comprehensive Inorganic chemistry, By O. P. Agrawal first Edition, 1972-73 Page 16–17, Table No. 1 .2.

२— धनुर्धारी राम, भूमिका, पृ० १६-१७ से उद्धृत

३— यथा चिन्तामणि स्पृष्ट्वा लोहं कांचनतां व्रजेत। स्कन्ध पुराण ब्रह्मोत्तर खण्ड अ० १५, (पीयूष, खण्ड १, पृ० ११९, से उद्धृत)

कल्पना को सार्थक रूप देने के लिए मचल उठेगा । वह तब तक विश्राम नहीं लेगा, जब तक लोहे से सोना बनाने की प्रक्रिया को स्थाई और सरल तथा सुलभ रूप न दे दे ।

पारस मणि प्राप्त करने की वैज्ञानिक सरल प्रक्रिया, दरिद्र की ही कामना नहीं है प्रत्युत जन-जन की कामना एवं सुन्दर कल्पना है जिसके स्वप्न वह देखा करता है-

राम सप्रेम पुलकि उर लावा ।
परम रंक जनु पारस पावा ।। २।११०।१

६. ४. रेडार के परिप्रेक्ष्य में मानस की रेडाँरिक व्यवस्था का अनुशीलन–रेडार[1] देश की सीमाओं की सुरक्षा के लिए पहरेदार का काम करता है । लंका की सीमा सुरक्षा के लिए नियुक्त सुरसा तथा लंकिनी कदाचित् रेडार का ही कार्य करती हैं ।

रेडार में प्रमुख तीन अंग होते हैं। प्रेषी, संग्राही तथा निदर्शक ।[2]

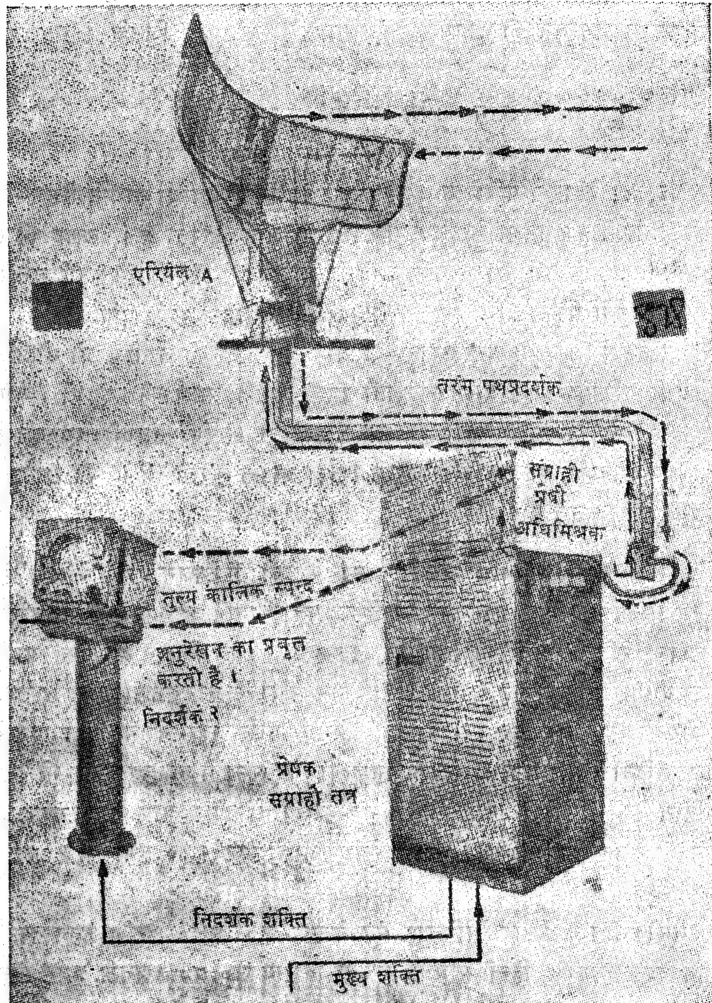
रेडार में लगे हुए यन्त्रों द्वारा रेडियो तरंगें[3] पैदा की जाती हैं जो थोड़ी-थोड़ी देर में प्रेषी एरियल द्वारा प्रसारित होती रहती हैं । वे मार्ग की वस्तुओं (वायुयान आदि) से टकराकर लौट आती है । यह लौटती हुई तरंगें संग्राही एरियल द्वारा ग्रहण होकर निदर्शक पट पर वस्तुओं के चित्र अंकित करती हैं । यह छाया चित्र इलेक्ट्रानों द्वारा बनते हैं ।[4]

१– रेडार शब्द की व्युत्पत्ति अंग्रेजी वाक्य 'रेडियो डिटेक्शन एण्ड रेन्जिग' से हुई है जिसका तात्पर्य है रेडार । वस्तुओं का पता लगाने और स्थान निर्धारण में रेडार, रेडियो तरंगों का उपयोग करता है । यह विज्ञान का एक आधुनिक उपयोगी आविष्कार है । इसके आविष्कार में राबर्ट वाट्सन वाट का उल्लेखनीय योगदान है । यह विद्युत-प्रहरी बम गिराने वाले विमानों का पता दूर से ही लगा लेता है । वायुयान, जहाज, पनडुब्बी और समुद्र में डूबे हुए जहज भी रेडार के दिव्य नेत्रों से छिपे नहीं रहते । यह वायुयानों की यात्रा को निरापद बनाने में भी बहुत उपयोगी यन्त्र है । देखिए अगले पृष्ठ २१० तथा २११ पर चित्र १४ एवं १५ ।

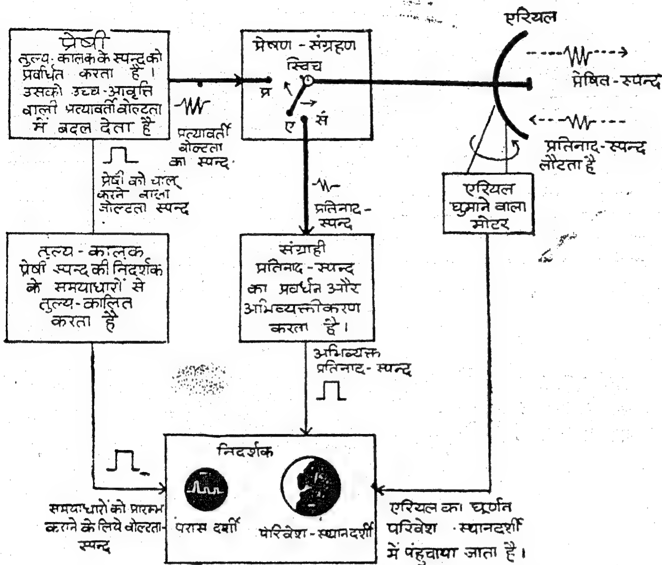
२– अवलोकनीय है, रेडार परिचय, मूल लेखक–जे० एल० हेनु ंग अनुवादक डॉ० विश्वेश्वर दयाल, हिन्दी समिति, सूचना विभाग उ० प्र० लखनऊ, प्रथम संस्करण सन् १९६३ अध्याय ४, पृ० ७६ से १०२ । तथा १४ एवं १५ ।

३– एक विशेष प्रकार की तरंगे जो एक सेकेण्ड में पृथ्वी के छः से भी अधिक चक्कर लगा लेती हैं । इनकी गति १८६२४० मील प्रति सेकेण्ड होती है । इन्हें इलेक्ट्रो मैगनिटिक वेव भी कहते हैं । तथा चित्र १४ एवं १५

४– वही, रेडार परिचय अध्याय ३, पृ० ५० से ७५ तक ।

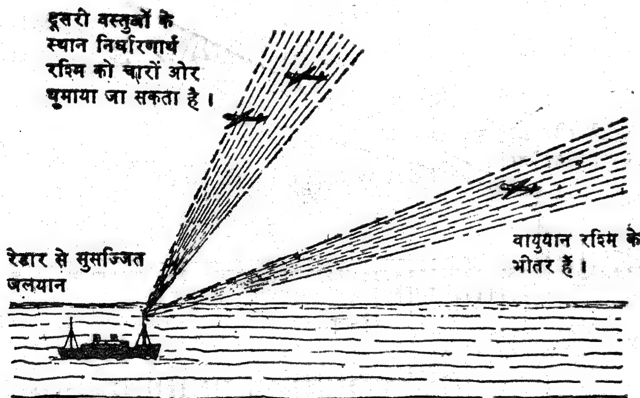


समुद्री रेडार-यन्त्र। (रेथियान मैं० कं० के सौजन्य से)
चित्र–१४



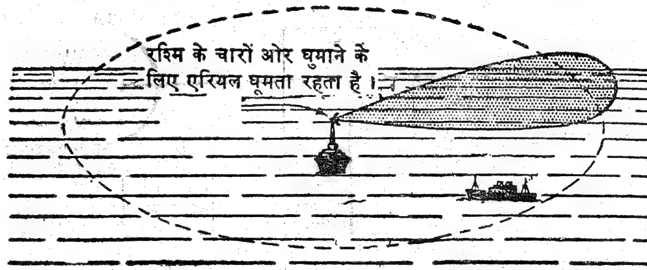
एक सरल रेडार-सेट का ब्लाक-चित्र । प्राय: सभी रेडार-सेटों में ये मूल अवयव होते हैं । इन्हें जोड़ने वाली पतली रेखाएँ तांबे के अनेक तारों वाले केवल (Cable) हैं । मोटी रेखाएँ विशेष प्रकार की माइक्रो-तरंगी संचरण-लाइनें हैं ।

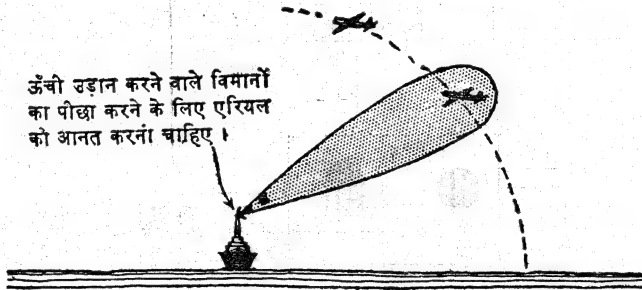
चित्र–१५



चित्र–१६

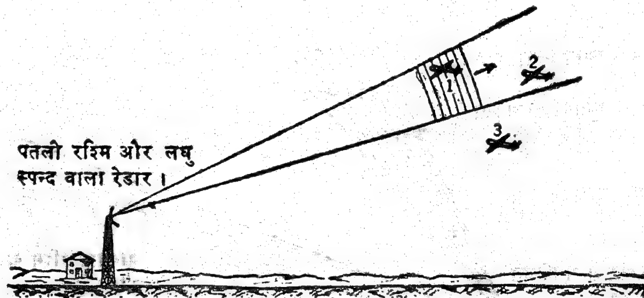
रेडार रेडियो तरंग रश्मि का आकाश में प्रेषण करता है । रश्मि के भीतर पड़ने वाली सब वस्तुएँ निदर्शन पट पर प्रकट होती है ।





चित्र–१७ एवं १८

रश्मि और एरियल । एरियल को घुमाने या झुकाने पर रश्मि आकाश में घूम जाती है ।



चित्र–१९

इस प्रकार रेडार, शत्रु पक्ष के छिपकर आने वाले वायुयानों के छाया चित्र निदर्शक पट पर अंकित कर देते हैं जो यानों की दूरी और दिशा व ऊँचाई का भी ज्ञान देते हैं। इसी चित्रांकन से शत्रु पक्ष के विमानों को या तो पकड़ लिया जाता है या नष्ट कर दिया जाता है। फिर भी कुशल चालक विमान को रेडार के परास[1] से परे करके शत्रु पक्ष की सीमाओं में प्रवेश कर अपनी कार्य सिद्धि कर लेते हैं।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर लंका की सीमा सुरक्षा व्यवस्था को, रेडारिक सुरक्षा व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में सरलता से देखा जा सकता है।

जिस प्रकार रेडार का संचालक रेडियो तरंगों को, शत्रु के विमानों की टोह लेने के लिए भेजा जाता है। उसी प्रकार रावण के अधीन देवता, विमानारूढ़ हनुमान के लंका में प्रवेश की बात जान कर सुरसा रूपी तरंगों को भेजते हैं। मानसकार इसका चित्रण इस प्रकार करते हैं–

जात पवनसुत देवन्ह देखा।
जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा ॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता।
पठइन्हि आइ कही तेंहि बाता ॥५।१।१

जिस तरह से रेडियो–तरंगे यान आदि वस्तुओं से टकराकर लौटने पर संग्राही एरियल द्वारा ग्रहण होने से निदर्शक पट पर वस्तुओं का छाया चित्र अंकित कर देती हैं, उसी प्रकार लंका की निशाचरी आकाश में उड़ने वाले जन्तुओं एवं हनुमान यान की छाया का प्रतिबिम्ब जल रूपी निदर्शन पट पर अंकित कर ग्रहण कर लेती है।

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई।
करि माया नभु के खग गहई ॥
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं।
जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं ॥५।२।१
गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई।
एहि बिधि सदा गगन चर खाई ॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा।
तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा ॥५।२।२

१– यहाँ परास शब्द का प्रयोग रेडियो तरंग-रश्मि के फैलाव की सीमा (दूरी एवं क्षमता) से लिया गया है क्योंकि रश्मि के भीतर पड़ने वाली वस्तुओं के छाया चित्र ही निदर्शक पट पर अंकित होते हैं। रेडार यन्त्र द्वारा भेजी गई रेडियो तरंगों की शक्ति और उनके फैलाव पर ही रेडार यन्त्र का परास निर्भर करता है। स्पष्टीकरण के लिए देखिए पृ० २११ एवं २१२ पर चित्र १६, १७, एवं १८ तथा १९।

हनुमान लंका की इस सीमा रक्षा व्यवस्था का कुशलता से वेधन कर शत्रु की सीमा में प्रवेश कर जाते हैं। मानसकार इसकी व्यवस्था देता है–

ताहि मारि मारुत सुत बीरा।
बारिधि पार गयउ मति धीरा ।।५।२।३

सुरसा–तरंगों के परास से बचने के लिए यान चालक हनुमान बड़ी कुशलता एवं चतुरता से काम चला लेते हैं। मानस में इसका सुन्दर चित्रण दिया गया है–

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा।
कपि तनु कीन्ह दुगन बिस्तारा ।।
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ।
तुरत पवन सुत बत्तिस भयऊ ।।५।१।४
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा।
तासु दून कपि रूप देखावा ।।
सत जोजन तेहि आनन कीन्हा।
अति लघु रूप पवन सुत लीन्हा ।।५।१।५
बदन पइठि पुनि बाहेर आवा।
मागी बिदा ताहि सिरुनावा। ।५।१।६

रेडार संचालक के प्रयत्नों को भी पूर्वोक्त प्रसंग में सरलता से देखा जा सकता है, जिसमें वह यानों को तरंग-परास में लाने का प्रयत्न करता है और विमान चालक उस परास से कुशलता पूर्वक बच निकलने में सफल हो जाता है।

फिर तो सुरसा से कहीं अधिक प्रखर, बल और बुद्धिमान उस कुशल चालक को प्रशंसात्मक आशीर्वाद प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त और शेष था ही क्या ? अपने शासनाध्यक्ष को चालक की कुशलता की सूचना देते हुए यह सूचित कर दिया जाता है कि शत्रुपक्ष का विमान देश की सीमाओं में प्रविष्ट हो गया है। इस चित्रण मानस में इस प्रकार किया गया है–

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा।
बुधि बल मरमु तोर मैं पावा ।।५।१।६
राम काजु सबु करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देह गई सो, हरषि चलेउ हनुमान ।।५।२

इसी प्रकार लंकिनी भी लंका में प्रविष्ट होते हनुमान के लघुरूप को देख लेती है। यह भी रेडारिक जैसी व्यवस्था का ही कोई अन्य विकल्प रहा है–

मसक समान रूप कपि धरी।
लंकहि चलेउ सुमिरि नर हरी ।।
नाम लंकिनी एक निसिचरी।
सो कह चलेसि मोहि निंदरी ।।५।३।१

हनुमान इससे भी बच कर लंका नगरी में प्रविष्ट हो जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह सरलता से कहा जा सकता है कि सुरसा राक्षसी एवं लंकिनी लंका की जलीय एवं स्थलीय रेडारिक जैसी सीमा सुरक्षा व्यवस्था का अनुपम उदाहरण हैं तथा मानसकार इस सन्दर्भ में कदाचित् तत्कालीन किसी अति विकसित सीमा सुरक्षा की वैज्ञानिक पद्धति की ओर संकेत करता प्रतीत होता है।

६. ५. प्रकाश सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन :-

६. ५. १. मरीचिका के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन–प्रकाश के सम्पूर्ण परावर्तन के नियमों[1] के कारण रेगिस्तान में गर्मी के समय वृक्षों के बिम्ब बालू में विपरीत दिखाई देते हैं जिसके कारण हिरणों या अन्य जीवों को बालू में पानी का भ्रम हो जाता है और वे प्यास बुझाने के लिए इन्हीं बिम्बों के पास दौड़ा करते हैं। इसे ही मृग मरीचिका या मृग तृष्णा कहते हैं।[2] इसकी व्याख्या आधुनिक विज्ञान प्रकाश के सम्पूर्ण परावर्तन[3] के सिद्धान्तों पर करता है।

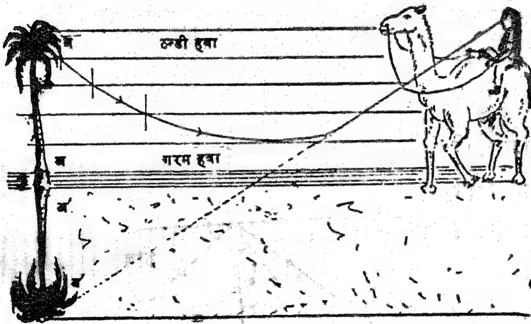
मानस में तुलसी इस मृगतृष्णा का वर्णन करते हुए लिखते हैं।

जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए।
ते कायर कलिकाल बिगोये ॥

---

१. १– सघन माध्यम से विरल माध्यम में जाने वाली प्रकाश की किरण अभिलम्ब से दूर हट जाती है।
   २– क्रान्तिक कोण का मान बढ़ जाने पर सम्पूर्ण परावर्तन हो जाता है। क्रान्तिक कोण के लिए देखिये पृ० २१६ की पाद टिप्पणी।

२. देखिए, चित्र २०, रेगिस्तान की मरीचिका।



चित्र–२०

३. यदि प्रकाश सघन माध्यम (पानी या काँच) से विरल माध्यम (हवा) में

तृषित निरखि रबि कर भव बारी ।
फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ।। १।४२।४

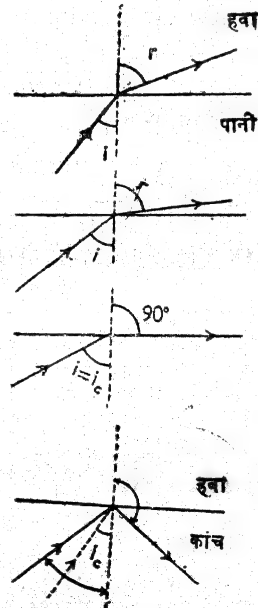
मानस का यह सन्दर्भ जहाँ एक ओर विषयोन्मुख जीव की भटक का चित्रण करता है, वहीं मृग तृष्णा के वैज्ञानिक तथ्यों का भी उद्घाटन करता है । गर्मी के दिनों में रेत के ऊपर पड़ने वाली सूर्य किरणें अपनी ऊष्णता के कारण पास की तहों को अधिक गर्म करके वायु की गर्म और ठण्डी कई तहें बना देती हैं, जो क्रमशः विरल और साधन माध्यम का काम करती हैं, फिर सम्पूर्ण परावर्तन के नियमों का अनुसरण करते हुए वृक्षों और झाड़ियों आदि के विपरीत बालू में बिम्ब दिखाई देने लगते हैं जिससे यह बिम्ब वैसे ही लगते हैं जैसे किसी तालाब में हों, इसी को मानस कार ने सूर्यकिरण से उत्पन्न जल की संज्ञा दी है ।

उपर्युक्त मृग मरीरिका के ज्ञान की आधुनिक बैज्ञानिक जानकारी और तुलसी द्वारा मानस में दी गयी जानकारी में कोई भेद नहीं है । यों तुलसी ने उसे प्राचीन ज्ञान से लिया है ।

मानस में मृग तृष्णा के अन्यान्य सन्दर्भों[1] में भी जलबिम्ब की ओर संकेत किया गया है ।

जाता है और आपाती कोण (i) क्रान्तिक कोण (ic) से अधिक हो जाय तो प्रकाश की किरणें उसी माध्यम में लौट आती हैं । इसे सम्पूर्ण परावर्नन कहते हैं । देखिये चित्र २१ एवं २२ ।

क्रान्तिक कोण—वह आपाती कोण (i) है जिसके लिए वर्तन कोण (r) ठीक ९०° का हो और प्रकाश सघन माध्यम से विरल माध्यम में जा रहा हो ।



१– सुधा समुद्र समीप बिहाई ।
मृगजलु निरखि मरहु कतधाई ।। १।२४५।३

६. ५. २. **मानस का वैज्ञानिक विचार विमर्श**–गोस्वामी तुलसीदास ने वैज्ञानिक विचार विमर्श का सन्दर्भ प्रस्तुत कर तत्कालीन समाज की वैज्ञानिक तथ्यों के प्रति जिज्ञासा एवं जागरुकता का भी परिचय दिया है।

राम, चन्द्रमा के कालेपन पर अपने साथियों से विचार प्रकट करने की पहल करते हैं।[1] राम के प्रथम शरणागत सखा एवं राजा सुग्रीव जो उत्तर देते हैं वह पूर्णतया आधुनिक वैज्ञानिक खोजों के अनुकूल हैं–

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई ।
ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई ॥ ६।११।३

यह भले ही राम के प्रश्न का सटीक उत्तर न हो, किन्तु अन्य सन्दर्भ[2] की अपने आप में स्पष्ट वैज्ञानिक व्याख्या अवश्य करता है।

सुग्रीव के उत्तर में स्पष्ट कहा गया है कि चन्द्रमा में भूमि की छाया पड़ने के कारण ही चन्द्रमा में श्यामता है। आज का विज्ञान भी इस बात की सबल पुष्टि करता है कि प्रकाश सीधी रेखाओं या तरंगों में चल कर ग्रहण के समय चन्द्रमा पर पृथ्वी की और पृथ्वी पर चन्द्रमा की छाया डालता है।

इसी प्रकार समतल दर्पण में, परावर्तन के नियमों के आधार पर जो काल्पनिक प्रतिबिम्ब बनता है उसे हाथों से नहीं पकड़ा जा सकता है। इसी वैज्ञानिक तथ्य को उद्घाटित करते हुए तुलसी लिखते हैं–

ज्यों मुखु मुकुरु मुकुरु निज पानी ।
गहि न जाइ अस अद्भुत बानी ॥ २।२९३।२

६. ५. ३. तुलसी ने मानस में ज्वार-भाटे तथा भूकम्प आदि का साहित्यिक वर्णन भी वैज्ञानिक ज्ञान की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है, जिससे साहित्य के उदाहरण उपमा, उत्प्रेक्षा मात्र कोरी कल्पना का विषय न बनकर, वैज्ञानिक ज्ञान से पुष्ट तथा पोषित सिद्ध हुए हैं।

सज्जन सुकृत सिंधु सम कोई ।
देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई ॥ १।७।७

तृषा जाइ बरु मृग जल पाना ।
बरु जामहिं सस सीस बिषाना ॥ ७।१२१।९

१– कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई ।
कहहु काह निज निज मति भाई ॥ ६।११।२

२– मारेउ राहु ससिहि कह कोई ।
उरमहँ परी स्यामता सोई ॥ ६।११।३

राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान ।
बढ़्यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान ।। ७।३ (ग)
कंप न भूमि न मरुत बिसेषा ।
अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा ।। ६।१३।१

६. ६. **आइन्स्टाइन के सापेक्षवाद के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन**–बीसवीं शताब्दी के विश्वविख्यात वैज्ञानिक ऐलबर्ट आइन्स्टाइन ने १९०५ ई० में आपेक्षिकता-सिद्धान्त[1] का प्रतिपादन किया था जिसको १९२१ में अमेरिका के प्रिंसटन में चार व्याख्यानों के रूप में पढ़ा गया और सन् १९२२ में पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया । आइन्स्टाइन द्वारा इस प्रकाशन का १९५० ई० में संशोधन किया गया ।

इस सिद्धान्त के आधार पर उन घटनाओं की सरलता से व्याख्या की जा सकती है, जिसके कारण चलती रेल पर स्थित हमें स्थिर पेड़-पौधे गतिमान और गतिमान रेल हमें स्थिर दिखाई देती है । स्थिर सूर्य गतिमान और गतिमान पृथ्वी[2] स्थिर आभासित होती है ।

१– प्रमुख सिद्धान्त–(अ) दिक् और काल निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष होते हैं । यदि दो घटनाएँ किसी प्रेक्षक की दृष्टि से समक्षणिक हों, तो इस सिद्धान्त के अनुसार वे इस प्रेक्षक की अपेक्षा गतिमान किसी अन्य प्रेक्षक की दृष्टि से समक्षणिक नहीं मालूम होंगी । इसका अर्थ यह है कि यद्यपि अब तक काल निरपेक्ष समझा जाता था तथापि वास्तव में वह भी निरपेक्ष नहीं है । यदि कोई दो प्रेक्षक अन्योन्य सापेक्ष गतिमान हों, तो दोनों के लिए समय का माप एक सा नहीं हो सकता । इसे काल का प्रसार कहते हैं । इसी तरह लम्बाई की माप में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया । अब किसी वस्तु की लम्बाई नियत नहीं समझी जा सकती । ज्यों-ज्यों उस वस्तु का वेग बढ़ता जाता है, उसकी लम्बाई घटती जाती है । इसे फिट्ज जेरेल्ड का आकुंचन कहते हैं ।

(ब) ऊर्जा तथा द्रव्य विभिन्न सत्ताएँ न होकर एक ही सत्ता के दो विभिन्नरूप हैं ।
–आपेक्षिता का अभिप्राय मूल लेखक–डॉ० ऐलबर्ट आइन्स्टाइन अनुवादक डॉ० देवीदास रघुनाथ भवालकर तथा डॉ० निहाल करण सेठी, सूचना विभाग उ० प्र०, प्रथम संस्करण १९६०, पृ० ३ ।

२– आर्य भट्ट जब २३ वर्ष के थे तभी उनको यह ज्ञात हो गया था कि पृथ्वी अचल नहीं चल है । उन्होंने इसकी व्याख्या नौका एवं तट का उदाहरण रख कर की थी ।
–आर्यभट्टीय (दैनिक 'आज' साप्ताहिक विशेषांक, रविवार ४ मई १९७५ पर ज्योतिषाचार्य बलराम शास्त्री का लेख 'प्रथम भारतीय उपग्रह का नाम आर्य-भट्ट क्यों' से उद्धृत ।)

तुलसी ने मानस में इसी प्रकार की दो घटनाओं का उल्लेख किया है–

प्रथम घटना में कहा गया है कि नौका पर चढ़े व्यक्ति को संसार गतिमान दिखाई देता है और दूसरी घटना में बताया गया है कि आज एक ही स्थान पर चारो दिशाओं को मुख करते हुए चच्चे, जब तेजी से घूमते हैं तो उन्हें घर आदि घूमते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

उक्त दोनों घटनाओं को आधुनिक सापेक्षवाद के सिद्धान्त के सन्दर्भ में सरलता से समझा जा सकता है।

जल पर चलती हुई नाव पृथ्वी के सापेक्ष गतिमान है किन्तु नाव पर सवार व्यक्ति का वेग नाव के सापेक्ष शून्य, किन्तु पृथ्वी के सापेक्ष गतिमान होता है। इसी लिए नौका पर सवार व्यक्ति को पृथ्वी पर स्थिर वस्तुएँ गतिमान दिखाई देती हैं और व्यक्ति अपने को स्थिर समझता है। तुलसी के शब्दों में यह सत्य यहाँ अव-लोकनीय है–

नौका रूढ़ चलत जग देखा।
अचल मोहबस आपुहि लेखा॥ ७।७२।३

इसी प्रकार बच्चे जब अपने शारीरिक अक्ष के चारों ओर तेजी से घूमते हैं तो वे अपने आस पास के स्थिर घरों के सापेक्ष गतिमान होते हैं। अतः उन्हें घर आदि जो पृथ्वी के सापेक्ष स्थिर हैं, उन्हें घूमते हुए दिखाई देते हैं। तुलसी इस सत्य का उद्घाटन इस प्रकार करते हैं–

बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी।
कहहिं परस्पर मिथ्याबादी॥ ७।७२।३

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मानस में कतिपय सन्दर्भ ऐसे भी हैं जिनको सापेक्षबाद के परिप्रेक्ष्य में सरलता से देखा जा सकता है और इसी सिद्धान्त के आधार पर नारद[1] आदि के दीर्घायु होने का रहस्य भी जाना जा सकता है।

१– नारद सदा सर्वदा त्रिलोकों का भ्रमण करते थे। वे नक्षत्रों की भी यात्रा किया करते थे। ऐसा लगता है कि उनके पास राकेट परिचालित कोई तीव्र गामी विमान था जिसके कारण वे ऐन मौकों पर घटना स्थलों पर उपस्थित हो जाते थे।

नारद, काग भुशुंडि, अगस्त्य आदि दीर्घायु पुरुष कहे गये हैं। इनके दीर्घायु का रहस्य आइंस्टाइन के सापेक्षवाद में मिलता है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रकाश की गति से कुछ कम वेग से चलने वाले नक्षत्र यान में समय की प्रवाह गति पृथ्वी पर समय की प्रवाह गति की अपेक्षा धीमी होती है। दूसरे

६. ७. मानस के सेतु निर्माण प्रसंग में वैज्ञानिक सन्दर्भ की सम्भावना–मानस के सेतु निर्माण सन्दर्भ सेतु की उपयोगिता के प्रारम्भ होते हैं–

अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं ।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जांहि ।। १।१३

राजा जनक, दशरथ को वर यात्रा में आते हुए जान कर नदियों पर पुल बँधवाते हैं ।[1]

जब राम को यह ज्ञात हो जाता है कि नल और नील सेतु निर्माण की कला में दक्ष एवं प्रवीण शिल्पी (अभियन्ता) हैं[2] तो वह अपने मन्त्रियों को बुलाकर सेतु निर्माण प्रारम्भ करा देते हैं ।

शब्दों में पृथ्वी की अपेक्षा अति तीव्रगति यान में समय धीरे धीरे गुजरता है । यदि नक्षत्र यान की गति प्रकाश के वेग की ९९% हो तो पृथ्वी पर गुजरा १०० वर्ष नक्षत्र यान में गुजरे मात्र १४.१ वर्ष के बराबर होगा । इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं ।

मान लीजिए २० वर्ष आयु के दो तरुण हैं एक पृथ्वी पर रहता है दूसरा उपर्युक्त यान में सवार होकर अंतरिक्ष भ्रमण करता है । सौ वर्ष बाद पृथ्वी पर रहने वाले व्यक्ति की अवस्था १२० वर्ष होगी किन्तु नक्षत्र यात्री की केवल २०+१४.१=३४.१ वर्ष होगी । वह तरुण क्यों बना रहा, इसे निम्न-लिखित सूत्र से निर्धारित किया जा सकता है–

$$\frac{\text{स न}}{\text{स पृ}}=\sqrt{\text{१}-\left(\frac{\text{ग न}}{\text{ग प्र}}\right)^{\text{२}}}$$

जिसमें–स न=नक्षत्र यान में गुजरा समय ।
स पृ=पृथ्वी पर बीता समय ।
ग न=नक्षत्र यान की गति ।
ग प्र=प्रकाश की गति=१८६००० मील प्रति सेकेण्ड अथवा $\text{३}\times\text{१०}^{\text{८}}$ मीटर प्रति सेकेण्ड ।

आश्चर्य नहीं कि तीव्रगामी यानों में बराबर यात्रा करने वाले नारद युवा बने रहे । यही उनकी दीर्घायु का रहस्य हो ।

–धर्मयुग, २७ मई १९७३, पृ० ९ पर डॉ० खड्गसिंह वाल्दिया का लेख । 'क्या सचमुच देवता पृथ्वी पर उतरे थे' से उद्धृत ।

१– आवत जानि भानुकुल केतू ।
सरितन्हि जनक बँधाए सेतू ।। २।३०३।३

२– नाथ नील नल कपि द्वौ भाई ।
लरकाईं रिषि आसिष पाई ।।

सिंधु वचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ ।
अब बिलंबु केहि काम, करहु सेतु उतरै कटकु ॥ ६।सोरठा–१

सम्पूर्ण राम दल नल-नील के कुशल निर्देशन में काम करता है और समुद्र में सेतु का निर्माण हो जाता है,[1] जिससे उनकी यशो कीर्ति सर्वत्र फैल जाती है–

बाँधा सेतु नील नल नागर ।
राम कृपाँ जसु भयउ उजागर ॥ ६।२।४

मानस में सेतु निर्माण प्रक्रिया का विवरण नहीं दिया गया है किन्तु वानरों द्वारा पत्थर लाकर नल नील को देना तथा उनका समुद्र में स्थिर रखना कदाचित् आधुनिक प्रोब्ड कैण्टीलिवर सिद्धान्त[2] की ओर संकेत करता है। यह सुदृढ़ एवं सुन्दर पुल जहाँ एक ओर राम को स्मित[3] करता है, वही रावण[4] एवं मन्दोदरी[5] को विस्मित कर देता है।

६. ८. अन्य भौतिक नियमों के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन–

६. ८. १. जब दो वस्तुएँ एक दूसरे पर रखी जाती हैं और वे दबाव के साथ एक दूसरे के विपरीत चलाई जाती है तो आपस में घर्षण के कारण ऊष्मा उत्पन्न होती है। मानस भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि करता है–

अति संघरषन जौं कर कोई ।
अनल प्रगट चंदन ते होई ॥ ७।११०।८

६. ८. २. तुलसी मानस में अपने बारूद युगीन काल के, गोला आदि चलने की क्रिया के वर्णन कर, तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगति के चित्रण के प्रति जागरूक रहे

तिन्हके परस किएँ गिरि भारे ।
तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥ ५।५९।१

१– मानस ६।०।१ से ५ तक तथा ६।१ एवं ६।१।१

२– (क) कैण्टी लीवर–वह सिद्धान्त जिसमें एक खम्भे पर पुल के चाप का भार बहन कराते हुए आगे बढ़ते हैं।

(ख) वह सिद्धान्त जिसमें एक खम्भे पर पुल के चाप का भार वहन कराते हुए एवं आवश्यकतानुसार खम्भा बनाकर कैण्टीलीवर सिद्धान्त से आगे बढ़ते हैं। इसे प्रोब्डकैण्टीलीवर कहते हैं।

३– देखि सेतु अति सुंदर रचना ।
बिहसि कृपा निधि बोले बचना ॥ ६।१।१ तथा ६।३।१

४– मानस ६।४।५ एवं ६।५

५– मंदोदरी सुन्यो प्रभु आयो ।
कौतुकहीं पायोधि बँधायो ॥ ६।५।१

हैं । वे तोपों की घनघोर गर्जना का वर्णन करते हुए लिखते हैं–

ढाहे महीधर सिखर कोटिन्हँ बिबिध बिधि गोला चले ।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले ।। ६।४८।छं–१

६. ८. ३. मानस में कुछ पंक्तियाँ ऐसी भी विद्यमान हैं जिनकी तुलना आर्किमडीज के कथन[1] से सरलता से की जा सकती है । देखिए, लक्ष्मण राम से कहते हैं–

जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं ।
कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ।। १।२५२।२

अंगद रावण से कहते हैं–

अस रिसि होति दसउ मुख तोरौं ।
लंका गहि समुद्र महँ बोरौं ।। ६।३३।१

६. ८. ४. मानस का लक्ष्मण रेखा का प्रसंग आधुनिक युग की विद्युत प्रवाह सीमा के सन्दर्भ में लिया जा सकता है जिसका लाँघना घातक होता है तथा कोई जीव उस सीमा में प्रवेश नहीं पा सकता–

रामानुज लघु रेख खचाई ।
सोउ नहिनाघेउ असि मनुसाई ।। ६।३५।१

६. ८. ५. प्राचीन भारतीय, नौ-निर्माण कला में सिद्ध हस्त थे वे बड़े-बड़े जल जहाजों का निर्माण करते थे ।[2] मानस में पोत,[3] बेरा,[4] जलजान[5] जहाज[6] बोहित[7] का वर्णन हमारे प्राचीन जल जहाजों के निर्माण की ओर संकेत करता है जिसे आधुनिक जल जहाजों की निर्माण कला के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है ।

१– २८७–२१२ बी० सी० का महान वैज्ञानिक तथा गणितज्ञ, जिन्होंने उत्तोलक के नियम, अपना सिद्धान्त तथा पाई का मान ज्ञात किया था । इनका कहना था कि–
Give me a place, where I can stand, I will move the Earth.
'आप मुझे स्थान दें जहाँ मैं खड़ा हो सकूँ, मैं पृथ्वी को घुमा दूँगा ।'

२– वही, कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक में गंगासागर मिश्र का लेख–'भारतीय नौ निर्माण कला' पृ० ७३३–७३६ ।

३– मानस, ७।१क

४– वही, २।२५६।२, ७।७।४, ७।४३।४

५– वही, १।२८क, २।२७६।३, ५।१३।१, ५।६०

६– वही, १।२६१, २।८५।२, २।१५३।३, २।२२०, २।२४८।१

७– १।१४ङ, २।२५६।२, ६।२।४

मानस में समय-समय पर होने वाली आकाशवाणी[1] का साम्य आधुनिक आकाशवाणी (रेडियो)से दर्शाया जा सकता है । तथा जयन्त पर राम के ब्रह्मबाण[2]-प्रहार को आधुनिक मिसाइल[3]-प्रहार के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।

इस प्रकार आधुनिक भौतिक विज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों एवं आविष्कारों के सन्दर्भ मानस के सम्बन्धित प्रसंगों में अवलोकनीय हैं जो तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगति के द्योतक एवं वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य के सूचक हैं ।

१– १।७३।४, १।१७२।३, १।१८६ आदि ।

२– प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा ।
चला भाजि बायस भय पावा ।। ३।१।१

३– यह युद्ध में शत्रु पक्ष के लड़ाकू यानों को मार गिराने के काम में लाया जाने वाला आधुनिक यन्त्र है जो विमानों को उनके पीछे दौड़कर नष्ट कर देता है ।

अध्याय ७

मानस का रसायन विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन

भाग १

७.०. रसायन का ज्ञान सभ्य जातियों को बहुत पुराने समय से है। प्राचीन भारत वासियों को धातु कर्म, औषधि तथा रंग निर्माण और किण्वन का समुचित ज्ञान था। आर्यों का सोम रस, द्रविणों की ताड़ी प्राचीन भारत में किण्वन के ज्ञान का और दिल्ली का लौह स्तम्भ धातु संबंधी ज्ञान का ज्वलंत प्रमाण हैं। सैद्धान्तिक रसायन में भी आर्य अछूते नहीं रहे। कणाद का परमाणु सिद्धान्त इसका प्रमाण है। सुश्रुत, चरक, वाग्भट्ट, वृन्द और चक्रपाणि द्वारा लिखे ग्रन्थों से उस काल के आयुर्वेद या औषधि विज्ञान और पारा, चाँदी, सोना, ताँबा, जिंक, सीसा, टिन आदि धातुओं के यौगिकी के बनाने की क्रियाओं का विस्तृत परिचय मिलता है। रसायन में बौद्ध रसायनज्ञ नागार्जुन[1] का नाम तो विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

रसायन का ज्ञान प्राचीन मिश्र और अरब बासियों को भी काफी था। अम्लराज का ज्ञान अरब के गेबर को था। यूनान में थेल्स, हेराक्लिटस, अनाकसा गोरस आदि ने भी सैद्धान्तिक रसायन पर कार्य किया था।

रसायन के विकास का आधुनिक काल ४०० वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। पैरा सेल्सस और फान हेलमाँण्ट ने १६ वीं शताब्दी तक ज्ञात कीमियागीरी अर्थात प्राचीन रसायन के ज्ञान को संचित करके सर्व प्रथम वैज्ञानिक रूप देने का प्रयत्न किया। प्रीस्टले, शीले और लेवासिये ने कीमियागीरी को रसायन में बदल दिया।

१– प्राचीन भारत में रसायन का विकास ले० डॉ० सत्य प्रकाश, सूचना विभाग उ० प्र०, प्र० सं० १९६०, पृ० ३०९ से ३२०

७. १. पदार्थ की अविनाशिता के नियम के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन- रसायन के इस नियम के अनुसार द्रव्य अविनाशी है। द्रव्य[1] को न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न नष्ट। इसका केवल रूप बदला जा सकता है।[2] जैसे लकड़ी को जलाने पर वह नष्ट नहीं होती वरन् कोयला, राख, और गैस के रूप में अपना रूप बदल लेती है। आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधाताओं द्वारा अनुवेषित उपर्युक्त नियम, तुलसी की निम्न अर्द्धालियों में संकेतित है-

ईस्वर अंस जीव अबिनासी ।
चेतन अमल सहज सुखरासी ॥ ७।११६।१

ईश्वर अंश जीव, द्रव्य से परे नहीं है और उसे यहाँ अविनाशी कहा गया है।

ईश्वर का अंश केवल जीव ही नहीं है।

तुलसी जड़ और चेतन (निर्जीव और सजीव) में कोई भेद नहीं मानते हैं-

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि ।
बंदउँ सबके पद कमल, सदा जोरि जुग पानि ॥ १।७ (ग)

अखिल विश्व की क्रियाशीलता का विवरण देते हुए गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं-

अखिल बिस्व यह मोर उपाया ।
सब पर मोहि बराबर दाया ॥ ७।८६।४

१- द्रव्य-वह है जिसमें संहति (मात्रा) हो और जो स्थान घेरे। इसका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा होता है।

२- आइंस्टाइन के विशेष सापेक्षिक सिद्धान्त और आधुनिक वैज्ञानिक खोजों से यह सिद्ध हो गया है कि द्रव्य को ऊर्जा में बदला जा सकता है। यह परिवर्तन निम्नलिखित समीकरण के अनुसार होता है-

इ=एम सी² अथवा $E=MC^2$

इ=ऊर्जा

एम=द्रव्य की संहति

सी=प्रकाश का वेग =९९०००,०००,० फुट प्रति सेकेण्ड

अथवा ६६९६०००,०० मील प्रति घण्टा ।

इसलिए यदि संहति के परिवर्तन से उत्पन्न हुई ऊर्जा भी गणना में ले आई जाय तो उस समुदाय के लिए ऊर्जा और द्रव्य का योग सदा स्थिर रहेगा। इस नियम को अब द्रव्य ऊर्जा की अविनाशिता का नियम कहते हैं। केवल द्रव्य की अविनाशिता का नियम अब पूरी तरह सत्य नहीं रह गया है।

मम माया संभव संसारा ।
जीव चराचर बिबिधि प्रकारा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए ।
सबते अधिक मनुज मोहि भाए ॥ ७।८५।२

उपर्युक्त चौपाइयों पर यदि ध्यान से विचार करें तो हम देखते हैं कि तुलसी सम्पूर्ण विश्व के निर्माण में जिस राम, ईश्वर या ब्रह्म या माया की अदृश्य शक्ति की ओर संकेत करते हैं, उसे आधुनिक विज्ञान में क्वार्क[1] कहा जा सकता है जो अदृश्य एवं द्रव्य के निर्माण का मूलाधार है ।

इस प्रकार तुलसी सजीवों और निर्जीवों में भेद न मानते हुए द्रव्य कोटि की वैज्ञानिक व्याख्या कर जाते हैं । वह द्रव्य के ही अविनाशत्व का वर्णन नहीं करते बल्कि अदृश्य शक्ति को भी पदार्थ की ही तरह अविनाशी मानते हैं जिसे वह पदार्थों की रचना का सर्व व्यापी मूल तत्व कहते हैं ।

व्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी ।
सत चेतन घन आनँद रासी ॥ १।२२।३

वह इसी अदृश्य शक्ति (ब्रह्म) के साथ राम का तदात्म करते हुए दोनों को अविनाशी कहते हैं–

राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी ।
सर्ब रहित सब उर पुर बासी ॥ १।११९।३

फिर तुलसी इन्हीं अविनासियों की देवताओं से स्तुति करवाते हैं–

जय जय अबिनाशी सब घट बासी व्यापक परमानंदा ।
१।१८५ छं० २ एवं ३–४

तथा

सब सम रूप ब्रह्म अबिनासी ।
सदा एक रस सहज उदासी ॥ ६।१०९।३

१–कवार्क–वह छोटा से छोटा कण या तरंग जो अदृश्य है जिन्हें भौतिक जगत का अंतिम कण माना गया है । वैज्ञानिकों की धारणा है कि द्रव्य व ऊर्जा, ऊर्जा व चेतना के बीच कवार्क ही सीमारेखा बनाता है । ये ही द्रव्य तथा ऊर्जा के मौलिक सूक्ष्म तम रूप हैं ।
देखिए–दैनिक जागरण, कानपुर, ३१ मई १९७८, पृ० ४ पर विज्ञान भिक्षु का 'विज्ञान वार्ता' लेख ।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सृष्टि के द्रव्य एवं उनका निर्माता (अदृश्य शक्ति) दोनों ही, आधुनिक वैज्ञानिक पदार्थ एवं कवार्क की ही तरह अविनाशी है।

७. २. **औषधि रसायन के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन**–मानस में औषधि रसायन का सीधे कहीं उल्लेख नहीं है, पर औषधियों का वर्णन तत्कालीन औषधि–रसायन की ओर संकेत अवश्य करता है क्योंकि औषधियों का इस रसायन से घनिष्ठ संबंध है।

७. ३. **युद्ध रसायन के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन**–मानस में जिन अग्नेयास्त्रों (अग्नि बाण आदि) की चर्चा की गई है उनके निर्माण में रसायन विज्ञान का योगदान निश्चित रहा है।

७. ४. **धातु रसायन के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन**–मानस में अनेक धातुओं जैसे लोहा, सोना आदि का वर्णन किया गया है। पुष्पक का निर्माण भी बिना धातु रसायन के ज्ञान के संभव नहीं था। अस्तु यह संकेत सरलता से ग्रहण किया जा सकता है कि मानस में रामायण कालीन धातु विज्ञान का ज्ञान, धातुओं से निर्मित अस्त्र–शस्त्रों, विमानों, सोना, लोहा आदि धातुओं के उल्लेख के माध्यम से संरक्षित है।

७. ५. **किण्वन एवं आसवन के परिप्रेक्ष्य में मानस का अनुशीलन**–मानस में सुरा प्रेमी देवताओं का वर्णन है। रावण भी कुंभकरण को मदिरा मंगाता है[1] और कुंभकरण इसका पान कर युद्ध में जाता है।[2]

जब मदिरा का वर्णन विद्यमान हैं तो उसके निर्माण में प्रयुक्त किण्वन[3] और आसवन[4] की रसायनिक क्रियाओं के ज्ञान से इनकार नहीं किया जा सकता।

१– रावन मागेउ कोटि घट पद अरु महिष अनेक। ६/६३

२– महिष खाइ करि मदिरा पाना।
गर्जा बज्राघात समाना॥ ६।६३।१

३– किण्वन–यह अनाक्सी श्वसन के समान होता है। आक्सीजन के अभाव तथा जाइमेज एन्जाइम की उपस्थित में ग्लूकोज जैसे कार्वोहाइड्रेट का इथिल अल्कोहल एवं कार्बन डाइआक्साइड जैसे सरल यौगिकों में टूटने की क्रिया को किण्वन कहते हैं।

४– किसी द्रव्य को गर्म करके उसको वाष्प में बदलने और वाष्प को ठण्डा करके द्रवित करने की विधि को आसवन कहते हैं।

भाग--२

उपसंहार

मानस के आद्योपान्त परिशीलनोपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इसमें प्रयुक्त 'बिग्यान' और 'बिग्यानी' शब्द जहाँ एक ओर ब्रह्म ज्ञान, आध्यात्म ज्ञान, अनुभव तथा तत्व ज्ञान और इनके वेत्ता के अर्थ को वहन कहते हैं, वहीं दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान और वैज्ञानिक के अर्थ को सशक्तता से ध्वनित करते हैं।

आधुनिक विज्ञान के उद्देश्य पर विचार करते हुए यदि एक ही वाक्य में कहा जाय कि इसका उद्देश्य नानात्व में एकत्व की प्रतीति है तो मानसकार की भी प्रकारान्तर से यही उद्घोषित ध्वनि प्रतिलक्षित होती हैं।

'जीव अनेक एक श्रीकंता।' ७।७७।४

जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राम मय जानि' १।७

जो चेतन कहँ जड़ करहि, जड़हि करइ चैतन्य। ७।११९(ख)

साहित्य और विज्ञान में स्पष्ट भिन्नताएँ होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि विज्ञान साहित्य को अमरत्व प्रदान करने की दिशा में अग्रसर रहता है और साहित्य विज्ञान को प्रेरणायें देते हुए उसे जनमानस में स्थान प्रदान करता है। अतः उन्हें अन्योन्याश्रित कहा जा सकता है, भिन्न-भिन्न नहीं। ठीक वैसे ही जैसे धन एवं ऋण आवेश भिन्न-भिन्न होते हुए भी अन्योन्याश्रित हैं, अन्यथा पदार्थ की सत्ता एवं महत्ता ही नहीं हो।

यही नहीं मानस में वैज्ञानिक तत्वों एवं उपलब्धियों के चित्रण के साथ-साथ अनुभव, निरीक्षण एवं परीक्षण आधृत वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्त भी परिव्याप्त है जो समाज के वैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन करने में पूर्ण रूपेण समर्थ है। निम्नांकित अर्द्धालियों में सार्वभौमिक, सार्वकालिक चिरन्तन सामाजिक सत्य का उद्घाटन द्रष्टव्य है—

जब जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी। १।१२०।३
× ×
तब तब प्रभु धरि बिबिधि सरीरा।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा॥ १।१२०।४

इसी प्रकार–

समरथ कहुँ नहिं दोषु गुसाईं ।
रबि पावक सुरसरि की नाईं ।। १।६८।४

तथा–

नहि कोउ अस जनमा जग माँहीं ।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ।। १।५९।४

इस प्रकार मानस में वैज्ञानिक दृष्टि कोण तथा वैज्ञानिक तत्वों की अभिव्यक्ति स्पष्ट प्रतिलक्षित है ।

यद्यपि मानस का सब कुछ, सब को, सब कालों में ग्राह्य नहीं हो सकता फिर भी उसमें व्यक्त काल जयी तत्वों की प्रचुरता, वैज्ञानिक तत्व, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा वैज्ञानिक उपलब्धियों का चित्रण उसे विश्व की अन्य काव्य कृतियों से श्रेष्ठ सिद्ध करता है। इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए डॉ० प्रभुदयालु अग्निहोत्री ने लिखा है–' यह सत्य है कि मानस का सब कुछ सबको ग्राह्य नहीं हो सकता, क्योंकि किसी भी कृति का सब कुछ सब को और सदा ग्राह्य नहीं होता न हो सकता है। हर संस्कृति और समाज की आस्थायें कालानुसार बदलती हैं । इसीलिए हर महान से महान कृति में कुछ अंश युगीन होते हैं और कुछ कालजयी। मानस में ऐसे कालजयी तत्वों की जो देश, धर्म और आग्रहों की परिधि लाँघ कर हरकाल और हर देश के मानव के मन का स्पर्श कर सके, इतनी अधिक प्रचुरता है कि विश्व की कोई अन्य काव्यकृति उसके समकक्ष नहीं खड़ी हो पाती।'[१]

मानस में व्यक्त चिरन्तन सत्य को तुलसी विज्ञान के सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक सत्य के समीप पहुंचा देते हैं। यही कारण है कि तुलसी की वैज्ञानिक संभावनाएँ काल को अतिक्रमण कर आज उपलब्धियाँ बनती जा रही हैं।

भारतीय संस्कृति के प्रेरक शिक्षा स्थल आश्रम विभिन्न ज्ञान विज्ञान की शिक्षा के केन्द्र थे, जहाँ गुरुकुल प्रणाली पर आधृत सामान्य ज्ञान से लेकर उच्च स्तरीय शैक्षिक ज्ञान दिया जाता था। ये आश्रम अपने अधिष्ठाता गुरु के नाम पर विशेष ज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे, जैसे श्रृंगी ऋषि का आश्रम चिकित्सकीय ज्ञान के लिए तथा विश्वामित्र, भरद्वाज एवं अगस्त्य के आश्रय उच्च सैनिक शिक्षा के लिए। राम और लक्ष्मण, इनमें से कई एक आश्रमों की शिक्षा से लाभान्वित हुये थे।

मानस में वर्णित विभिन्न जातियाँ जैसे बानर, ऋक्ष, गृध्र, राक्षस एवं यक्ष आदि तत्कालीन मानव वंशीय जातियाँ हैं, भले ही तुलसी की भावुकता ने लोक

१– राम चरित मानस : एक विश्लेषण,– पृ० ७

मानस पर जमी आस्था को सुरक्षित रखते हुए, कहीं-कहीं उनका चित्रण बन्दरों और गीधों के रूप में कर दिया हो।

तुलसी ने नर से नारायण के रूप को अधिक महत्व देते हुए राम के नर और हरि रूप में समन्वय स्थापित किया है जिसे पदार्थ और उसके गुणों के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु विज्ञान उन्हें नर ही स्वीकार करता है।

मानस में अनेक स्थलों[1] पर व्यक्त भाग्यवाद की भावना को मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है जैसा कि डॉ० व्रजबासी लाल श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक[2] में शोक शमन हेतु भाग्यवाद के मानवीय विधान को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान कर उसके महत्व को स्वीकार किया है। उन्होंने लिखा है–

असफलता, निराशा, शोक, आदि की अति मार्मिक अनुभूति के समय मानव नाड़ी संस्थान विश्रृंखलित होने लगता है। साधारण मनोभावों को सहने की परि-मिति शक्ति नाड़ी संस्थान में होती है। अतएव शोक एवं संताप की अत्यांतिक दशा नाड़ी संस्थान के लिए असह्य हो जाती है। ऐसे अवसर पर यदि कोई सुगम प्रवाह नहीं मिलता तो प्रायः घातक परिणाम दृष्टिगोचर हो सकते हैं। इस दृष्टि से भाग्यवाद मानव स्वभाव एवं मानव प्रकृति पर आधारित एक सफल प्रयत्न है जिसके द्वारा शोक शमन संभव हो जाता है।,

मानस की संरक्षित शव संरक्षण कला, पुत्रेष्टि यज्ञ, बला एवं अतिबला विद्यायें तथा उसमें व्यक्त अनेक भाव आधुनिक पोषण, जीव विकास, कोशिका विज्ञान और डॉ० खुराना की नवीन गवेषणाओं के परिप्रेक्ष्य में सरलता से देखे जा सकते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि उपर्युक्त नाना प्राचीन शास्त्रों का संरक्षित ज्ञान मानस में सुरक्षित है तथा उसी का पूर्ण विकास आधुनिक नव जैविक अनुसंधानों में मिलता है।

यह निर्विवाद है कि मानसकार चिकित्सकीय पद्धति में कोई वृद्धि नहीं कर सके हैं अथवा कोई नया आयाम प्रस्तुत नहीं किया जा सका है, फिर भी प्राचीन शास्त्र एवं विद्या को, संरक्षित एवं सुरक्षित रूप में आगामी संस्कृति प्रवाह को अक्षुण्ण रूप में सौंप देने का कृतित्व कम स्पृहणीय नहीं है, जिसे आधुनिक चिकित्सा पद्धति के संदर्भ में देखा जा सकता है।

मानस में मेघ निर्माण, प्रक्रिया, उनके प्रकार, रंग ऊँचाई, वर्षा, कृत्रिम वर्षा, संघनित वाष्प के विविध रूप, तड़ित-गर्जन, मौसम एवं ऋतुओं का विशद वर्णन हमारे प्राचीन ज्ञान के संरक्षण के साथ-साथ आधुनिक जलवायु विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में

१– मानस १।९६।३, १।१५ ख

२– करुण रस, पृ० २३।

तुलनीय हो गया है ।

मानस में वर्णित विमान और वैमानिकी का विशद वर्णन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि प्राचीन भारतीय इस कला से पूर्ण परिचित थे और इस दिशा में उनकी गति बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी, जिसकी तुलना कुछ क्षेत्रों में आधुनिक वैमानिकी अभी तक नहीं कर सकी है ।

मानस में वर्णित अग्नि वाणों के प्रभाव, लोहे से सोना बनाने की उक्तियाँ, लंका की सुरक्षा व्यवस्था, सेतु निर्माण प्रसंग एवं अन्य वैज्ञानिक सन्दर्भों की सम्भावनाओं का आकलन इस बात का प्रतीक है कि प्राचीनकाल में भारतीय, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे थे, जिसके मानस में सुरक्षित संकेत आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलित होकर आज चुनौती दे रहे हैं ।

मानस में द्रव्य की अविनाशिता एवं अन्य रासायनिक ज्ञान के संकेत भी हमारे प्राचीन रसायनिक विरासत की ओर संकेत करते हैं ।

इस प्रकार मानस में जैविक, भौतिक रासायनिक एवं जलवायु विज्ञान आदि संबंधी ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है तथा उसे आज की वैज्ञानिक प्रगति के साथ मानक (लैंडमार्क) की भाँति जोड़ा जा सकता है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय वाङ्मय में विद्यमान अनेकानेक वैज्ञानिक तथ्यों की भाँति मानस की भी अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हैं तथा जो वैज्ञानिक तत्व एवं सिद्धान्त समुपलब्ध हैं वे तुलसी के विशद एवं गहन अध्ययन के संदर्भ में स्वान्तः सुखाय होते हुए भी सर्वजनिक सुलभता के आधार पर बहुजन हिताय, सरल, सहज, सरस भी हैं । गोस्वामी तुलसीदास ने 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' एवं कुछ अन्य ग्रंथों से आकलित ज्ञान द्वारा हृदय एवं बुद्धि ग्राह्य और विशदीकृत किन्तु सूक्ष्मातिसूक्ष्म वैज्ञानिक तथ्यों को अज्ञानी तथा विकृत जनमानस की मनस्चेतना की आधिव्याधियों को दूर करने के लिए औषधि के रूप में अपनाया है । यह सूक्ष्म वैज्ञानिक तथ्य एवं दृष्टिकोण रूपी बटबीज, उचित जलवायु में प्रस्फुटित होकर बटवृक्ष की विशालता प्राप्त करना चाहते हैं जहाँ तापित, शापित, परिश्रान्त कलान्त अधुनातम वैज्ञानिक विश्राम ले सकें तथा इस बारूद युग की रचना कोआधुनिक परमाणु युग की नवीन कही जाने वाली गवेषणाओं के परिप्रेक्ष्य में देख जा सकें ।

अन्त में यह कहना असंगत न होगा कि अभी तक मानस अनुशीलन साहित्य में मानस का आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन एतद्पूर्व नहीं हुआ है । शोधकर्ता ने मानस के इस महत्पूर्ण बिषय को अपनी लघुमति से प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया है । आशा है कि विद्वान इस नवजात पौध को विकसित, पल्लवित, पुष्पित और फलित होने का आशीर्वाद प्रदान करने का कष्ट करेंगे ।

—:—

परिशिष्ट २

मानस में वास्तु कला

मानस के सूने प्रदेश को भावों से और लोक को मूर्त रूपों से भरना यही कलात्मक सृष्टि है। कल्पना के लोक में नये-नये भावों की सृष्टि करना राष्ट्रीय चिन्तन का उत्थान पक्ष है। उसी जगत में पुराणकारों ने बहुमुखी गाथाओं के भव्य प्रासाद खड़े किये, साहित्यकारों ने नवीन आदर्श और चरित के रूपक बाँधे और इतिहास में भी साहित्य का सत्य मूर्तिमान हुआ।

श्री रामचरित मानस में¹ धनुष यज्ञ के पश्चात् विवाह की तैयारी के समय

१– बहुरि महाजन सकल बोलाए।
आइ सबन्हि सादर सिरु नाए।।
हाट बाट मंदिर सुरबासा।
नगरु सँवारहु चारिहुँ पासा ।।१।२८६।२
हरषि चले निज निज गृह आए।
पुनि परिचारक बोलि पठाए।।
रचहु बिचित्र बितान बनाई।
सिर धरि बचन चले सचुपाई ।।१।२८६।३
पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना।
जे बितान बिधि कुशल सुजाना।।
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा।
बिरचे कनक कदलि के खंभा ।।१।२८६।४
हरित मनिन्ह के पत्र फल, पदुमपराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति, मन बिरंचि कर भूल ।।१।२८७
बेनु हरित मनि मय सब कीन्हें।
सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे।।
कनक ललित अहिबेलि बचाई।

जनकपुर में वितान निर्माण का वर्णन समकालीन वास्तु कला की पारिभाषिक शब्दावली द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

हीरा, पन्ना, लाल, चिरौजा आदि रत्नों की पच्चीकारी के द्वारा बेलों के भांति-भाँति के बन्धों का निर्माण तुलसीदास की समकालीन वास्तुकला की एक विशेषता थी। कवि ने उसका एक सुन्दर रूप हमारे सामने खड़ा किया है। चीरि, कोरि, पचि, ये शब्द उत्कीर्ण करने की विविध शैलियों को सूचित करते हैं। पच्चीकारी का काम तो उस युग में सर्वत्र होने लगा था। खंभों पर देव प्रतिमाओं को गढ़कर काटना, (कार्विंग इन रिलीफ) प्राचीन भारतीय शिल्प की एक महत्व पूर्ण विशेषता थी। पत्तेदार अहिबेल या नाग बेल भी प्रायः तत्कालीन खंभे और फलकों पर पायी जाती हैं। 'चौक' शब्द पत्थरों की रचना में भांति-भांति की आकृतियों के लिये प्रयुक्त हुआ है। दक्षिणी घरों में रंगीली (रंगवल्ली) बनाने में आकृतियाँ या चित्र बनाये जाते हैं उन्हीं के लिए उत्तर में चौक पूरना शब्द व्यवहृत होता है।[1]

इसी प्रकार लंका वर्णन में भी हमें तत्कालीन वास्तु कला के दर्शन होते हैं।[2]

लखि नहिं परइ सरपन सुहाई ॥१।२८७।१
तेहि के रचि पचि बंध बनाए।
बिच बिच मुकुता-दाम सुहाए ॥
मानिक मरकत कुलिसपिरोजा ।
चीरि कोरि पचि रचे सरोजा ॥१।२८७।२
किए भृंग बहु रंग बिहंगा।
गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा ॥
सुर प्रतिमा खंभनि गढ़ि काढ़ीं।
मंगल द्रब्य लिएँ सब ठाढ़ीं ॥१।२८७।३
चौकें भाँति अनेक पुराई ।
सिंधुर मनिमय सहज सुहाई ॥१।२८७।४
सौरभ पल्लव सुभग सुठि, किए नीलमनि कोरि ॥
हेम बौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोरि ॥१।२८८

१– साहित्यिक निबन्ध संग्रह, भारतीय कला का अनुशीलन, डॉ० बासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० १०९ से १११ तक।

२– गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी ॥
बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी ॥
सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा ।
कनक रचित मनि भवन अपारा ॥१।१७७।३

उत्तरकाण्ड में अवधपुरी का वर्णन करते हुए मानसकार ने तत्कालीन भवन निर्माण कला के प्रति अपनी रुचि प्रदर्शित की है। सुन्दर एवं भव्य अट्टालिकाओं का वर्णन, कोट, कंगूरा, गच (फर्श) एवं गवाक्षों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।[1]

जनकपुरी के यज्ञशाला निर्माण[2] आदि अन्यान्य[3] वर्णनो में वास्तु कला के विविध प्रसंग अवलोकनीय हैं।

—

भोगावति जसि अहिकुल बासा।
अमरावति जस सक्र निवासा॥
तिन्हतें अधिक रम्य अति बंका॥
जग बिख्यात नाम तेहि लंका॥१।१७७।४
खाई सिंधु गभीर अति, चारिहुँ दिसि फिरि आव।
कनककीट मनि खचित दृढ़, बरनि न जाइ बनाव॥१।१७८ (क)
हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ, जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुल बल, दल समेत बस सोइ॥१।१७८ ख

१– मानस ७।२६।२ से ७।२७ तक।
२– मानस १।२२३ से २२४ तक।
३– मानस १।२१२ से १।२२१ तक।

परिशिष्ट ३

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

(क) संस्कृत

१.	–	ऋग्वेद
२.	श्रीमत्सायणाचार्य (भाष्यकार)	ऋग्वेद संहिता
३.	–	अथर्ववेद
४.	भरद्वाज	यन्त्र सर्वस्व
५.	,,	अंशबोधिनी
६.	हनुमान प्रसाद पोद्दार (टी०)	बाल्मीकीय रामायण भाग १ एवं २
७.	,, (सम्पा०)	महाभारत
८.	जय दयाल गोयल (टी०)	श्रीमद्भगवत गीता
९.	श्री रूपनारायण पाण्डेय (टी०)	श्रीमद्भागवत
१०.	आचार्य रविषेण	पद्मपुराण
११.	महर्षि वेदव्यास	ब्रह्माण्ड पुराण
१२.	–	लिंग पुराण
१३.	–	स्कन्ध पुराण
१४.	–	मत्स्य पुराण
१५.	–	कूर्म पुराण
१६.	–	शतरुद्र संहिता
१७.	–	अगस्त्य संहिता
१८.	–	बृहतसंहिता
१९.	–	आध्यात्म रामायण
२०.	कालिदास	रघुवंश
२१.	,,	अभिज्ञान शाकुन्तलम्
२२.	,,	मेघदूत
२३.	भवभूति	महावीर चरित

२४: राजशेखर — काव्य मीमांसा
२५. ढुण्ढिराज शास्त्री (व्या०) — कणाद का वैशेशिक दर्शन
२६. टी० गणपति शास्त्री — समरांगण सूत्रधार
२७. डा० गोरखनाथ — चरक संहिता

(ख) हिन्दी

१. डॉ० अनिल कुमार तिवारी — जलवायु विज्ञान के मूल तत्व
२. डॉ० अम्बा प्रसाद सुमन — रामचरित मानस वाग्वैभव
३. डॉ० आनन्द प्रकाश सिन्हा — सृष्टिक्रम एवं विकास वाद
४. ,, — वैदिक विचार धारा एवं विज्ञान
५. डॉ० आनन्द भूषण — विज्ञान शिक्षण
६. अमृत लाल नागर — आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि भगवती-चरण वर्मा
७. अत्रि देव अलंकार — आयुर्वेद का बृहत् इतिहास
८. अंजनी नन्दन शरण — मानस-पीयूष खण्ड १, २, ३, ४, ५, ६, ७
९. डॉ० कामिल बुल्के — रामकथा (उत्पत्ति और विकास)
१०. करपात्री — मार्क्सवाद और रामराज्य
११. कान्ति सक्सेना — वायुयान
१२. डॉ० कृपा शंकर गौड़ — भौतिक भूगोल के सिद्धान्त
१३. डॉ० केशव प्रसाद सिंह — तुलसी सन्दर्भ और दृष्टि
१४. डॉ० गुलाब राय — सिद्धान्त और अध्ययन
१५. चमन लाल गुप्त — विमान और वैमानिकी
१६. तुलसीदास — श्री रामचरित मानस (टी०ह०प० पोद्दार)
१७. ,, — गीतावली
१८. द्वारकानाथ तिवारी — हिन्दू धर्म (स्वामी विवेकानन्द)
१९. दिनेश चन्द्र सेन — बंगाली रामायण
२०. डॉ० देबीदास रघुनाथ भवालकर — अपेक्षिता का अभिप्राय
२१. डॉ० प्रभु दयालु अग्निहोत्री — रामचरित मानस एक विश्लेषण
२२. डॉ० प्रकाश मित्र शास्त्री — महर्षि भरद्वाज प्रणीत यन्त्र सर्वस्व के वैमानिक प्रकरण का विवेचनात्मक अध्ययन अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध
२३. पंचानन डे — अकार्बनिक रसायन
२४. प्र० सं० बद्रीनारायण तिवारी एवं सम्पादक मदन मोहन शर्मा — मानस मोती

२५. बाबूलाल गर्ग	तुलसी परिशीलन (स्मृति ग्रंथ)
२६. डॉ० बालकृष्ण	वेदों में विमान
२७. डॉ० बिमल चरण लाहा	प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल
२८. डॉ० विश्वेश्वर दयाल	रेडार परिचय
२९. डॉ० व्रजबासीलाल श्रीवास्तव	करुण रस
३०. डॉ० भगवती सिंह	तुलसी की काव्य कला
३१. ,,	तुलसी मानस रत्नाकर
३२. डॉ० भगीरथ मिश्र	काव्य शास्त्र
३३. डॉ० भोलानाथ तिवारी	शब्दों का अध्ययन
३४. ,,	भाषा विज्ञान
३५. मदसूदन 'झा'	इन्द्र विजय
३६. प्रो० मीरा बातल	भौतिक भूगोल
३७. मुलकराज शर्मा 'आनन्द'	धनुर्धारी राम
३८. डॉ० रामकुमार यर्मा	साहित्य शास्त्र
३९. डॉ० रमानाथ त्रिपाठी	रामचरित मानस और पूर्वांचलीय रामकाव्य
४०. डॉ० रघुनन्दन शर्मा	वैदिक सम्पत्ति
४१. डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल	वाल्मीकि और तुलसी (साहित्यिक मूल्यांकन)
४२. डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी	तुलसी
४३. डॉ० रांगेय राघव	तुलसी का कथा शिल्प
४४. आ० रामचन्द्र शुक्ल	चिन्तामणि भाग १
४५. रामनरेश त्रिपाठी	स्वप्न (खण्डकाव्य)
४६. रामानन्द शर्मा	मानस की महिलाएँ
४७. रामदीन पाण्डेय	प्राचीन भारत की साग्रामिकता
४८. रामगोविन्द तिवारी	हिन्दी ऋग्वेद
४९. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	साहित्यिक निबन्ध संग्रह
५०. विद्यानन्द विदेह	रामचरित
५१. डॉ० वागीशदत्त पाण्डेय	मानस सन्दर्भ कोष
५२. ,,	हनुमान की उत्पत्ति कथा
५३. डॉ० शान्ति कुमार नानू राम व्यास	रामायण कालीन संस्कृति रामायण कालीन समाज
५४. डॉ० सत्य प्रकाश	प्राचीन भारत में रसायन का विकास
५५. डॉ० सुखवीर सिंह	रामचरित मानस की पाश्चात्य समीक्षा
५६. सुदर्शन सिंह	श्रीराम चरित मानस से जरठ जटायु

५७. डॉ० शिवबालक शुक्ल — उद्धव शतक भाष्य
५८. शिवानन्द सहाय — तुलसीदास
५९. सन्त श्याम जी परासर — रामचरित मानस चतुश्शती
६०. सत्यव्रत साम श्रमी — तृयी चतुष्टय
६१. सात वलेकर — बालकाण्ड
६२. स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक — बृहद विमान शास्त्र
६३. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी — विचार प्रवाह
६४. डॉ० हीरालाल शुक्ल — लंका को खोज
६५. हरि प्रसाद — रामायण परिचर्या
६६. हनुमान प्रसाद पोद्दार — ईश्वर की सत्ता और महत्ता
६७. श्रीकृष्ण लाल — मानस दर्शन
६८. प्रो० व्रजभूषण शर्मा आदि (सम्पादक) — काव्य संकलन

(ग) अंग्रेजी

१. डॉ० अविनाश चन्द्रदास — ऋग्वेदिक इण्डिया
२. बी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार — साउथ इण्डिया इन दि रामायन
३. बेसिल क्लार्क — हिस्ट्री आफ दि एयरशिप्स
४. सी० वी० वैद्य — दि रिडिल आफ दि रामायन
५. सी० वान फूरर हाइमेन दार्फ — दि रेसिस आफ दि विसन हिल्स
६. दि क्वीन चार्लोटस — टैक्सट बुक आफ आब्सटेट्रिक्स
७. डेनियल ओ डीम्मास्च — एयर प्लेन एरोडायनेमिक्स
८. हेरिस — हैण्ड बुक आफ न्वाइस कन्ट्रोल
९. हैन्स मे — रीकान्स्ट्रक्टिव एण्ड रिपरेटिव सर्जरी
१०. एच० बी० स्टैलार्ड — आई सर्जरी
११. जीन मैक्लेओड — डैविडसंस प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिस आफ मैडीशन
१२. जे० एल० इमरे एण्ड ए० जी० मार्सल — हैण्ड बुक आफ मोरटुवरी टेक्नीसियंस
१३. जे० एन० कारपेण्टर — दि थियोलाजी आफ तुलसीदास
१४. जहाँगीरदार — कम्परेटिव फिलालाजी आफ इण्डो आर्यन लैंग्वेजेज
१५. एल० एम० निकोलाई — फण्डामेन्टलस आफ एयर क्राफ्ट डिजाइन
१६. मैकसमूलर — बायोग्रेफिकल एस्से
१७. मैक्डोनाल्ड, लन्दन एण्ड कम्पनी — दि एयर क्रैफ्ट आफ दि वर्ल्ड

१८. एन० के० विद्याधर	एचीव्स आफ आप्थैलमोलाजी
१९. ओ० पी० अग्रवाल	कम्पेहेन्सिव इन आरगैनिक कैमिस्ट्री
२०. रोजर बैकन	सीक्रेट्स आफ आर्ट एण्ड नेचर
२१. रेलीविन्स	इण्टरकोर्स बैटबीन इण्डिया एण्ड दि वेस्टर्न वर्ल्ड
२२. स्टैनले डैविडसन	दि प्रिन्सिपल्स आफ मेडीशिन
२३. शास	टेक्सट बुक आफ गायनकोलाजी
२४. ह्वीलर विल्लाक्सन	सब्लीमिटी आफ दि वेदाज
	हिन्दू सुपीरियारटी, इण्डियन कलचर भाग ५, सरस्वती भवन स्टडीज भाग ५, दि मदर लैण्ड, एस्ट्रोलाजिकल मैगजीन

(घ) कोश

१. डॉ० श्याम सुन्दरदास	हिन्दी शब्द सागर
२. रामचन्द्र वर्मा	मानक हिन्दी कोष
३. बद्रीप्रसाद अग्रबाल	मानस शब्द सागर
४. –	हिन्दी विश्व कोष खण्ड ६, २४
५. सिद्धेश्वर प्रसाद शास्त्री	भारत वर्षीय प्राचीन चरितकोष
६. कृष्ण बल्लभ द्विवेदी	हिन्दी विश्व भारतीय खण्ड ५
७. डॉ० सूर्यकान्त	तुलसी रामायण शब्द सूची
८. कालिका प्रसाद	बृहत हिन्दी कोश
९. डॉ० भोलानाथ तिवारी	तुलसी शब्द सागर
१०. राणा प्रसाद शर्मा	पौराणिक कोश
११. हनुमान प्रसाद पोद्दार	महाभारत की नामानुक्रमणिका

१२. डॉ० फिलिपबैकाक कोव वेब्स्टर्स थर्ड, न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी, आफ इगलिश लैंग्वेज

१३. फंक एण्ड वेगंल्स, न्यू स्टैण्डर्ड डिकशनरी आफ इंगलिश लैंग्वेज

१४. दि इंसाइकलोपीडिया ब्रिटैनिका

१५. दि कोलम्बिया इसांइक्लोपीडिया

(च) पत्र, पत्रिकायें एवं अन्य

दैनिक जागरण, आज, कानपुर विश्वविद्यालय पत्रिका, कल्याण, विज्ञान प्रगति, धर्मयुग, कादम्बिनी, मुक्ता, नवनीत, जाह्नवी, मानस समाचार, डॉ० जनार्दन दत्त शुक्ल का अध्यक्षीय भाषण, नारायण अभिनन्दन ग्रन्थ, महाराष्ट्रीय कृत समालोचना, हिन्दी अनुशीलन–धीरेन्द्र वर्मा ।

आभार प्रदर्शन

का अवशेष

डॉ० के० एम० लोढ़ा, डॉ० भागीरथ मिश्र, डॉ० राजपत दीक्षित, डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल, डॉ० भोला शंकर व्यास, डाँ० रमानाथ त्रिपाठी डॉ० ब्रजलाल वर्मा, डॉ० रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी, डॉ० रामस्वरूप खरे, डॉ० दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव, डॉ० रामाश्रय वर्मा, डॉ० सुरेन्द्र प्रसाद तिवारी।

सुप्रसिद्ध नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र, मानस मर्मज्ञ पं० रामकिंकर जी उपाध्याय, श्री चन्द्रसेन अग्रबाल, श्री सत्यदेव शर्मा, 'विज्ञान भिक्षु', श्री एच० एन० निगम, श्रीमती सुशीला मिश्रा एवं स्व० राजनारायण मिश्र, माननीय वीरेन्द्र बहादुर सिंह चन्देल, नन्दलाल सिंह तथा राधेश्याम पाण्डेय, निरंजन कुमार काबरा।

डॉ० एस० सी० राय सिंहानी, उमेश चन्द्र, राममूर्ति गुप्त, अभियन्ता महाबीर प्रसाद, प्रकाश चन्द्र सचान एवं ब्रजनन्दन लाल, डॉ० राजकुमार एवं डॉ० सुरेन्द्र कुमार सचान।

इन महानुभावों के अतिरिक्त निम्नलिखित संस्थाओं उनके संचालकों, अध्यक्षों एवं कर्मचारियों के प्रति भी आभार प्रदर्शन करता हूँ—

राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता, केन्द्रीय ग्रन्थालय, इन्जीनियरिंग विभाग पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी विद्यापीठ एवं संस्कृत विश्व विद्यालय, मानस मन्दिर वाराणसी के ग्रन्थालय, अलीगढ़ वि०वि०, कानपुर के आई०आई० टी० मेडिकल कालेज, गयाप्रसाद एवं मारवाड़ी पुस्तकालय, डी० वी० कालेज उरई तथा स्व० रामस्वरूप ग्रा० उ० स्ना० म० वि० पुखरायाँ के ग्रन्थालय।

मानस संगम के प्रकाशन

आचार्य रामानुज मूल्य : चार रुपये
श्री सुशील कुमार सिंह

रामकथा के नये आयाम (निबन्ध संग्रह)
श्री शम्भूनाथ, आइ.ए.एस. मूल्य : नौ रुपये

अस अद्‌भुत बानी : सं० श्रीनारायण चतुर्वेदी
(हिन्दी-साहित्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित)
मूल्य : दस रुपये

मानस मोती (सूक्तियाँ) (द्वितीय संस्करण)
सं० श्री मदन मोहन शर्मा मूल्य : तीन रुपये

मानस पंचामृत (निबन्ध संग्रह)
सं० श्री विष्णु त्रिपाठी मूल्य : चार रुपये

रामकथा और मुस्लिम साहित्यकार (द्वि०सं०)
सं० श्री बद्रीनारायण तिवारी मू० : बारह रुपये
(उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा पुरस्कृत)

तुलसी के राम (निबन्ध संग्रह)
सं०श्री बद्रीनारायण तिवारी मूल्य : आठ रुपये
(हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित)

राघव राग
श्री उमाकांत मालवीय मूल्य : छः रुपये

लाओस में रामकथा
श्रीमती कमला रत्नम् मूल्य : अठारह रुपये

तुलसी दल मूल्य : सात रुपये
राष्ट्रकवि श्री सोहनलाल द्विवेदी

गोस्वामी तुलसीदास समाज के पथ प्रदर्शक
सं० श्री बद्रीनारायण तिवारी मूल्य : १५ रुपये

तुलसी स्तवन
सं० ललित मोहन अवस्थी मूल्य : पन्द्रह रुपये

तुलसी उपवन
सं०श्री बद्रीनारायण तिवारी मूल्य : तीन रुपये

मानस रघुवंश मूल्य : दस रुपये
न्यायमूर्ति श्री शिवनाथ मिश्र

मानस संगम—स्मारिकाएं
(सन् १९७० से १९८३ तक)

विभीषण मूल्य : पाँच रुपये
(रूप घनाक्षरी का प्रथम खण्ड काव्य)
डॉ गणेशदत्त सारस्वत

मानस और विज्ञान मूल्य : साठ रुपये
डॉ० रामलखन सचान

—: प्राप्ति स्थान :—

आराधना ब्रदर्स
१२४/१५२ सी. ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर

साहित्य निकेतन
श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर—१

साहित्य भवन
परेड, कानपुर—१

बद्रीनारायण तिवारी

ए० वी० ब्रदर्स
मेस्टन रोड, कानपुर—१

डॉ० रामलखन सचान
९/११७, पुखरायाँ, कानपुर (देहात)

करेण्ट बुक डिपो
माल रोड, कानपुर—१

यूनिवर्सल बुक स्टाल
माल रोड, परेड, आई० आई० टी०,